हिन्दी में उपलब्ध दुनिया का बेहतरीन साहित्य

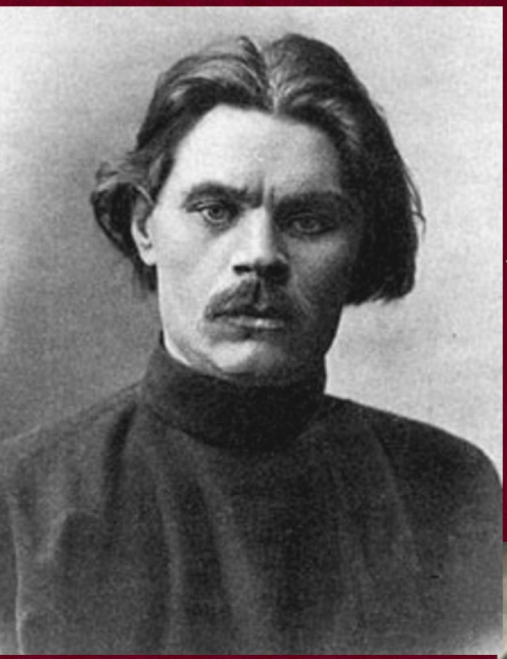

महान साहित्यकार मक्सिम गोर्की की 20 रचनाएँ

प्रस्तुति

https://www.fb.com/unitingworkingclass/

परिचय

मक्सिम गोर्की (28 मार्च 1868 – 18 जून 1936) को पूरी दुनिया में महान लेखक और समाजवादी यथार्थवाद के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। रूस में जारशाही के दौरान 1907 में हुई असफल क्रान्ति से लेकर 1917 में हुई अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति और उसके बाद के समाजवादी निर्माण तक के लम्बे दौर में मक्सिम गोर्की ने अपनी कहानियों, नाटकों, लेखों और उपन्यासों के माध्यम से हर क़दम पर जनता को अपनी परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी। वह अपने समय में दबी-कुचली जनता के आत्मिक जीवन के भावों की आवाज बनकर उभरे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अक्टूबर क्रान्ति के बाद लगभग 40 वर्षों के दौरान गोर्की अपनी कलम से रूसी साहित्य और जनता में बदलाव के लिये एक नई ऊर्जा का संचार करते रहे। साथ ही उनका सारा सृजन भी जनता के जीवन और संघर्षों से करीब से जुड़ा रहा।

इस संकलन में हम मक्सिम गोर्की की बीस रचनाएं पेश कर रहे हैं। आशा है आपको पसन्द आयेंगी।

धन्यवाद

इंकलाबी सलाम के साथ

प्रस्तुति - Uniting Working Class

फेसबुक पेज - https://www.facebook.com/unitingworkingclass/

व्हाटसएप्प नम्बर - 9892808704

अनुक्रमणिका

परिचय

1. एक सच्चा सर्वहारा लेखक -मक्सिम गोर्की – 6
2. मक्सिम गोर्की – एक साहित्यिक परिचय – 9

कहानियां

1. मकर चुद्रा – 15
2. नमक की दलदलों में – 34
3. दादा आर्खिप और ल्योंका – 50
4. नीली आंखों वाली स्त्री – 80
5. सेमागा कैसे पकड़ा गया – 97
6. एक पाठक – 107
7. करोड़पति कैसे होते हैं – 129
8. 'हिम्मत न हारना, मेरे बच्चो!' – 140
9. बाज़ का गीत – 147
10. कोलुशा – 153
11. जियोवान्नी समाजवादी कैसे बना – 157
12. पारमा के बच्चे – 165
13. एक पतझड़ – 169
14. कॉमरेड: एक कहानी – 180
15. उसका प्रेमी – 187
16. छब्बीस आदमी और एक लड़की – 194

कविता

1. तूफानी पितरेल पक्षी का गीत – 209

मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'माँ' के तीन विख्यात अंश

1. "ऐसा होता है सच्चाई का असर" – 213
2. कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के लिए इंसानों को कुचलने के जितने साधन हैं, हम उसके हर रूप के खिलाफ लड़ेंगे – 219
3. सच्चाई को ख़ून की नदियों में भी नहीं डुबोया जा सकता – 222

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविता, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत, हर रविवार पुस्तकों की पीडीएफ
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ व यूनिकोड फॉर्मेट में

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें - 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

परिचय
एक सच्चा सर्वहारा लेखक -मक्सिम गोर्की

नमिता

दुनिया में ऐसे लेखकों की कमी नहीं, जिन्हें पढ़ाई-लिखाई का मौक़ा मिला, पुस्तकालय मिला, शान्त वातावरण मिला, जिसमें उन्होंने अपनी लेखनी की धार तेज़ की। लेकिन बिरले ही ऐसे लोग होंगे जो समाज के रसातल से उठकर आम-जन के सच्चे लेखक बने। मक्सिम गोर्की ऐसे ही लेखक थे।

28 मार्च 1868 को रूस के वोल्गा नदी के किनारे एक बस्ती में मक्सिम गोर्की का जन्म हुआ। सात वर्ष की उम्र में ही अनाथ हो जाने वाले गोर्की को बहुत जल्दी ही इस सच्चाई का साक्षात्कार हुआ कि ज़िन्दगी एक जद्दोजहद का नाम है। समाज के सबसे ग़रीब लोगों की गन्दी बस्तियों में पल-बढ़कर वह सयाने हुए। बचपन से ही पेट भरने के लिए उन्होंने पावरोटी बनाने के कारख़ाने, नमक बनाने के कारख़ाने (नमकसार) में काम करने से लेकर गोदी मज़दूर, रसोइया, अर्दली, कुली, माली, सड़क कूटने वाले मज़दूर तक का काम किया। समाज के मेहनत करने वाले लोगों, ग़रीब आवारा लोगों, गन्दी बस्तियों के निवासियों के बीच जीते हुए उन्होंने दुनिया की सबसे बड़ी किताब – ज़िन्दगी की किताब से तालीम हासिल की। उन्होंने स्कूल का मुँह तक नहीं देखा था, लेकिन पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे कमरतोड़ मेहनत के बाद भी उन्होंने किसी न किसी को अपना गुरु बनाकर ज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय तक उन्होंने महान रूसी लेखक व्लादीमिर कोरोलेंको से लेखन कला सीखी और बहुत जल्दी ही रूस के एक बड़े लेखक बन गये।

पुराने रूसी समाज की कूपमण्डूकता, निरंकुशता और सम्पत्ति सम्बन्धों की निर्ममता ने युवा लेखक अलेक्सेई मक्सिमोविच को इतनी तल्ख़ी से भर दिया था कि उन्होंने अपना नाम "गोर्की" रख लिया, जिसका अर्थ है तल्ख़ या कड़वाहट से भरा। लेकिन उनकी तल्ख़ी दिशाहीन नहीं थी। प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार मिखाईल शोलोखोव ने उनके बारे में लिखा है – "गोर्की उन लोगों को प्यार करते थे, जो मानव जाति के उज्ज्वल भविष्य के लिए संघर्ष करते थे और अपनी प्रचण्ड प्रकृति की पूरी शक्ति से शोषकों, दुकानदारों

और निम्न पूँजीपतियों से नफ़रत करते थे, जो प्रान्तीय रूस के निश्चल दलदल में ऊँघते रहते थे...उनकी पुस्तकों ने रूसी सर्वहारा को ज़ारशाही के ख़िलाफ़ लड़ना सिखाया।"

गोर्की के शुरुआती उपन्यासों 'फ़ोमा गोर्देयेव' और 'वे तीन' के केन्द्रीय चरित्र फ़ोमा और इल्या लुनेव ऐसे व्यक्ति हैं, जो निजी सम्पत्ति पर आधारित समाज के तौर-तरीक़ों को स्वीकारने से इंकार कर देते हैं। लेकिन उनके वास्तविक नायक बीसवीं सदी के आरम्भ में सामने आते हैं, जब रूसी समाज करवट बदल रहा था। 'माँ' उपन्यास ने क्रान्तिकारी सर्वहारा के रूप में साहित्य को एक नया नायक दिया।

गोर्की की बहुत-सी कृतियों में क्रान्तिकारी गतिविधियों का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं है लेकिन आबादी के सबसे निचले तलों में भी गोर्की विचारों के उफान को, छिपी हुई मानवीय शक्तियों को खोज निकालते हैं। उनके आत्मकथात्मक उपन्यासत्रयी का केन्द्रीय पात्र अपने असंख्य अनुभवों के दौरान इन्हीं उफनते विचारों और छिपी हुई शक्तियों का संचय करता है। उसका चरित्र रूसी यथार्थ में जड़ जमायी हुई बुराइयों तथा सोचने के आम तौर पर व्याप्त ढर्रे के विरुद्ध बग़ावती तेवर अपनाकर विकसित होता है।

गोर्की के समकालीन तोलस्तोय, चेख़व, शोलोख़ोव, सभी उनकी प्रतिभा के उत्कट प्रशंसक थे। रोम्याँ रोलाँ और एच. जी. वेल्स ने भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। यूरोप और अमेरिका के उन लेखकों ने भी उनकी प्रतिभा का लोहा माना था और उनकी प्रशंसा की थी, जो मार्क्सवादी नहीं थे। रोम्याँ रोलाँ ने स्वीकार किया था कि गोर्की मानवता की अमूल्य धरोहर हैं।

गोर्की ने अपने जीवन और लेखन से सिद्ध कर दिया कि दर्शन और साहित्य विश्वविद्यालयों, कॉलेजों में पढ़े-लिखे विद्वानों की बपौती नहीं है बल्कि सच्चा साहित्य आम जनता के जीवन और लड़ाई में शामिल होकर ही लिखा जा सकता है। उन्होंने अपने अनुभव से यह जाना कि अपढ़, अज्ञानी कहे जाने वाले लोग ही पूरी दुनिया के वैभव के असली हक़दार हैं। आज एक बार फिर साहित्य आम जन से दूर होकर महफ़िलों, गोष्ठियों यहाँ तक कि सिर्फ़ लिखने वालों तक सीमित होकर रह गया है। आज लेखक एक बार फिर समाज से विमुख होकर साहित्य को आम लोगों की ज़िन्दगी की चौहद्दी से बाहर कर रहा है।

पिछले लगभग 15 वर्षों के भीतर जो पीढ़ी समझदार होकर विश्व साहित्य

में दिलचस्पी लेने लायक हुई है वह गोर्की के कृतित्व की क्लासिकी गहराई और उनकी महानता से लगभग अपरिचित है। मक्सिम गोर्की का विराट रचना संसार था, लेकिन पूरी दुनिया के साहित्य प्रेमियों का एक बड़ा हिस्सा आज भी उससे अनजान है। उनके कई महान उपन्यास, कहानियाँ, विचारोत्तेजक निबन्ध तो अंग्रेज़ी में भी उपलब्ध नहीं हैं। इस मायने में हिन्दी के पाठक गोर्की के साहित्य से और भी अधिक वंचित रहे हैं। हिन्दी में तो गोर्की के साहित्य का बहुत छोटा हिस्सा ही लोगों के सामने आ सका है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'एक फ़ालतू आदमी का जीवन' और 'मत्वेई कोझेम्याकिन का जीवन' आज तक हिन्दी में अनूदित नहीं हुए हैं। उनका बहुश्रुत चार खण्डों वाला अन्तिम विराट उपन्यास 'क्लिम सामगिन की ज़िन्दगी' का तो अंग्रेज़ी में भी अनुवाद नहीं हुआ है।

इधर आम तौर पर साहित्य में जिन चीज़ों का बाज़ार निर्मित हुआ है उसमें गोर्की, शोलोख़ोव जैसे लेखकों का साहित्य वैसे भी समाज-बहिष्कृत है। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं से अनभिज्ञता और वैचारिक पूर्वाग्रहों के चलते गोर्की की कालजयी महानता से आज नये पाठक लगभग अपरिचित हैं। इस अनमोल विरासत को पाठकों को उपलब्ध कराने की चुनौती को स्वीकारना होगा। यह हमारे साहित्य और समाज दोनों को नयी ऊष्मा से भर देगा।

बिगुल, मार्च 2009

मक्सिम गोर्की – एक साहित्यिक परिचय

राजकुमार

मक्सिम गोर्की (28 मार्च 1868 – 18 जून 1936) को पूरी दुनिया में महान लेखक और समाजवादी यथार्थवाद के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। रूस में जारशाही के दौरान 1907 में हुई असफल क्रान्ति से लेकर 1917 में हुई अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति और उसके बाद के समाजवादी निर्माण तक के लम्बे दौर में मक्सिम गोर्की ने अपनी कहानियों, नाटकों, लेखों और उपन्यासों के माध्यम से हर क़दम पर जनता को अपनी परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी। वह अपने समय में दबी-कुचली जनता के आत्मिक जीवन के भावों की आवाज बनकर उभरे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अक्टूबर क्रान्ति के बाद लगभग 40 वर्षों के दौरान गोर्की अपनी कलम से रूसी साहित्य और जनता में बदलाव के लिये एक नई ऊर्जा का संचार करते रहे। साथ ही उनका सारा सृजन भी जनता के जीवन और संघर्षों से करीब से जुड़ा रहा।

समाज के दबे कुचले वर्गों से बचपन से ही जीवन्त सम्पर्क में रहने वाले गोर्की के लेखन को उनके जीवन और उस समय के रूसी समाज के परिप्रेक्ष्यन में रखकर देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनके साहित्यिक सृजन का स्रोत क्या था। गोर्की के माता-पिता बचपन में नहीं रहे थे और उनका बचपन अपनी नानी के यहाँ बीता जहाँ उन्हें एक रूसी मध्यवर्गीय पारिवारिक माहौल मिला। नानी की मृत्यु के बाद सम्पत्ति को लेकर परिवार में लड़ाई-झगड़े होने लगे जिसके बाद गोर्की ने 13 साल की उम्र में घर छोड़ दिया और कई जगह काम बदलते हुये रूस के कई हिस्सों में घूमते रहे। इस दौरान उन्हें समाज को और करीब से देखने का मौका मिला और वह कई प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आये। इस तरह गोर्की बचपन से ही एक मजदूर के रूप में पले-बढ़े और घर में काम से लेकर बेकरी के कारखानों, जहाजों और खेतों तक कई काम करते उनका बचपन मेहनत और संघर्ष करते हुये बीता।

आने वाले समय में बचपन के यह अनुभव ही उनके साहित्यिक रचनाओं का

आधार बने और वह जनता के मुक्ति संघर्ष का हिस्सा बनकर उभरे। अपने पूरे साहित्यिक सृजन में गोर्की ने रूसी जीवन की कड़वी सच्चाई का यथार्थवादी चित्रण किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण से नहीं किया है, बल्कि वह उन परिस्थितियों को बदलने के लिये एक प्रेरणास्रोत की तरह पाठक के सामने प्रकट होते हैं। गोर्की के शब्दों में, "सत्य दया से अधिक महत्व रखता है। और आज मैं अपनी नहीं, वरन् दम घोंटनेवाले उस भयंकर वातावरण की कहानी लिखने बैठा हूँ, जिसमें साधारण रूसी जनता रहा करती थी और आज भी रहती है।" "पुरानी दुनिया अवश्य ही जानलेवा रोग से ग्रस्त है और हमें उस संसार से शीघ्रातिशीघ्र पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये ताकि उसकी विषैली हवा कहीं हमें न लग जाये।"

बचपन में समय-समय पर गोर्की का परिचय उस समय के रूस में जारशाही निरंकुशता एवं दमन उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करने वाले क्रान्तिकारियों से होता रहा, जिनके जीवन का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा, "उन अनगिनत लोगों में से पहले व्यक्ति से मेरी मित्रता का अन्त हुआ, जो देश के सवर्श्रेष्ठ सपूत होते हुए भी अपने ही वतन में अजनबी से हैं.."। इन लोगों के सम्पर्क ने गोर्की को किताबों से परिचित कराया। गोर्की की जीवन परिस्थितियों ने उन्हें किसी स्कूल या विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं दिया, लेकिन उन्होंने स्वाध्याय और जनता से जुड़े रहकर प्राप्त अनुभव को अपनी शिक्षा का केन्द्र बनाया। गोर्की के शब्दों में, "मैं अपनी उपमा मधुमक्खी के छत्ते से दे सकता हूँ, जिसमें देश के अगणित साधारण प्राणियों ने अपने ज्ञान और दर्शन का मधु लाकर संचित किया है। सबों की बहुमूल्य देन से मेरे चरित्र का विकास हुआ। अक्सर देने वाले ने गन्दा और कड़वा मधु दिया, फिर भी था तो वह ज्ञान-मधु ही।"

गोर्की अपने बचपन में ही जारशाही काल में रूसी जनता की ग़रीबी और उत्पीड़न को देख चुके थे और इस सच्चाई से अवगत हो चुके थे कि किस तरह उस समाज में एक बड़े हिस्से को दबे-कुचले तबकों के रूप में रहने और जानवरों की तरह जीवन व्यतीत करने के लिये मजबूर किया गया था, "मैं उनके बीच अपने आप को जलते अँगारों में डाल दिये गये जलते लोहे के टुकड़े की तरह महसूस करता था – हर रोज मुझे अनेक तीखे अनुभव प्राप्त होते। मानव अपनी सम्पूर्ण नग्नता के साथ सामने आता था – स्वार्थ और लोभ का पुतला बनकर। जीवन के प्रति उनका क्रोध, दुनिया की हर चीज के प्रति उनका उपहासजनक शत्रुता का भाव और साथ ही अपने प्रति उनका फक्कड़पन -"

अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में ही गोर्की का परिचय तोलस्तोय और चेखव जैसे रूस के महान यथार्थवादी लेखकों से हुआ। गोर्की शुरुआती दिनों से ही क्रान्तिकारी आन्दोलनों से जुड़े रहे। बाद में कम्युनिस्ट पार्टी बोल्शेविक में शामिल होकर जनता के संघर्षों में काफ़ी करीब से जुड़ गये और इसी दौरान उन्होंने पार्टी में शामिल मज़दूरों और क्रान्तिकारियों के जीवन और संघर्ष पर आधारित अपना विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'माँ' (1906) लिखा जिसके बारे में लेनिन ने कहा था कि इसे पढ़कर उन सभी मजदूरों को क्रान्ति के उद्देश्यों को समझने में मदद मिलेगी जो स्वतःस्फूर्त ढंग से आन्दोलन में शामिल हो गये हैं।

आज भी, जबकि पूरी दुनिया के मजदूर आन्दोलन ठहराव के शिकार हैं और प्रगति पर प्रतिरोध की स्थिति हावी है, ऐसे में गोर्की के उपन्यास और कहानियाँ पूरी दुनिया की जनता के संघर्षों के लिये अत्यन्त प्रासंगिक हैं। आज भी उनकी रचनायें पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता को एक समतावादी समाज के निर्माण के लिये उठ खड़े होने और परिस्थितियों को बदल डालने के लिये संघर्ष करने, एक क्रन्तिकारी इच्छाशक्ति पैदा करने और सर्वहारा वर्ग चेतना को विकसित करने की प्रेरणा देती हैं। गोर्की का साहित्य हमारे मन में वर्तमान समाज में जनता की बदहाल परिस्थितियों के प्रति नफ़रत ही नहीं बल्कि उन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने और उन्हें बदलने की इच्छा भी पैदा करता है।

गोर्की अपने उपन्यास 'माँ' में एक मज़दूर के शब्दों में विचार प्रकट करते हुए कहते हैं, "क्या हम सिर्फ़ यह सोचते हैं कि हमारा पेट भरा रहे? बिल्कुल नहीं" "हमें उन लोगों को जो हमारी गर्दन पर सवार हैं और हमारी आँखों पर पट्टियाँ बाँधे हुए हैं यह जता देना चाहिए कि हम सब कुछ देखते हैं। हम न तो बेवकूफ़ हैं और न जानवर कि पेट भरने के अलावा और किसी बात की हमें चिन्ता ही न हो। हम इंसानों का सा जीवन बिताना चाहते हैं! हमें यह साबित कर देना चाहिए कि उन्होंने हमारे ऊपर ख़ून पसीना एक करने का जो जीवन थोप रखा है, वह हमें बुद्धि में उनसे बढ़कर होने से रोक नहीं सकता!"

गोर्की ने रूस की दलित उत्पीड़ित जनता का जीवन जितने क़रीब से देखा था उतने ही स्पष्ट रूप से उसको अपने साहित्य में चित्रित किया और व्यापक जनसमुदाय को शिक्षित करने में एक अत्यन्त ऐतिहासिक भूमिका निभाई। अपनी आत्मकथा में गोर्की ने लिखा है, "दुनिया में अन्य कोई चीज़ आदमी को इतने भयानक रूप से पंगु नहीं बनाती जितना कि सहना और परिस्थितियों की

बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना।" गोर्की ने अपनी कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और लेखों के माध्यम से समाज को सिर्फ़ चित्रित ही नहीं किया बल्कि उन्हें एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया, "क्या यह ज़रूरी है कि इस हद तक घिनौनी बातों का वर्णन किया जाये? हाँ, यह ज़रूरी है! यह इसलिये ज़रूरी है श्रीमान कि आप धोखे में न रहें, कहीं यह न समझने लगें कि इस तरह की बातें केवल बीते जमाने में हुआ करती थीं! आज भी आप मनगढ़न्त और काल्पनिक भयानकताओं में रस लेते हैं, सुन्दर ढंग से लिखी भयानक कहानियाँ और किस्से पढ़ने में आपको आनन्द आता है। रोंगटे खड़े कर देने वाली कल्पनाओं से आपके हृदय को सनसनाने और गुनगुनाने से आप ज़रा भी परहेज़ नहीं करते। लेकिन मैं सच्ची भयानकताओं से परिचित हूँ, आए-दिन के जीवन की भयानकताओं से, और यह मेरा अवंचनीय अधिकार है कि उनका वर्णन करके आपके हृदयों को कुरेदूं, उनमें चुभन पैदा करूँ ताकि आपको ठीक-ठीक पता चल जाये कि किस दुनिया में और किस तरह का जीवन आप बिताते हैं।" "कमीना और गन्दगी से भरा घिनौना जीवन है यह जो हम सब बिताते हैं।" "मैं मानव-जाति से प्रेम करता हूँ और चाहता हूँ कि उसे किसी भी तरह के दुःख न पहुँचाऊँ, परन्तु इसके लिये न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिये और न ही चमकीले शब्द-जाल और ख़ूबसूरत झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिये! ज़रूरी है कि हेम जीवन की ओर मुँह करें और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उड़ेल दें।"

एक भौतिकवादी होने के नाते गोर्की मनुष्यों के स्वभाव के लिये परिस्थितियों को ज़िम्मेदार मानते थे और इसलिए वह जीवन की भौतिक परिस्थितियों को बदलने पर जोर देते थे, "रूसी अपनी ग़रीबी और नीरसता के कारण ऐसा करते हैं। व्यथा और रंज उनके मनबहलाव के साधन हैं।" "जब जीवन की धारा एकरस बहती है तो बिपत्ति भी मन बहलाने का साधन बन जाती है। घर में आग लग जाना भी नवीनता का रस प्रदान करता है।"

गोर्की अपने समय के वर्तमान जीवन की आलोचना के साथ ही वर्ग समाज में प्रतिस्पर्धा की होड़ में होने वाले मनुष्यों के व्यक्तिगत विघटन की कड़ी आलोचना करते थे और उनका मानना था कि जब तक मेहनत करने वालों की मेहनत को कुछ परजीवी हड़पते रहेंगे तब तक समाज में शान्ति नहीं हो सकती, "समूचे वातावरण में एक-दूसरे को भक्षण करने की एक अराजक

प्रक्रिया निरन्तर लागू है; सभी मनुष्य एक दूसरे के दुश्मन हैं; अपना-अपना पेट भरने की इस गन्दी लड़ाई में भाग लेने वाला हर आदमी सिर्फ़ अपनी ही सोचता है और अपने चारो ओर सन्देह की दृष्टि से देखता है, ताकि पड़ोसी कहीं उसका गला न धर दबोचें। थकाने वाली इस पाशविक लड़ाई के भँवर में फँसकर बुद्धि की श्रेष्ठतम शक्तियाँ दूसरों से अपनी रक्षा करने में ही नष्ट हो जाती हैं, मानव अनुभव की वह उपलब्धि जिसे "मैं" कहते हैं, एक अँधेरा तहखाना बन जाती है जिसके अन्दर अनुभव को और अधिक समृद्ध न करने और पुराने अनुभव को तहखाने की दम घोंटनेवाली कोठरियों में बन्द रखने की क्षुद्र प्रवृत्तियाँ हावी रहती हैं। भरे पेट के अलावा आदमी को और क्या चाहिए? इस लक्ष्य को पाने के लिए मनुष्य अपने उच्चादर्शों से फिसलकर गिर गया है और ज़ख्मी होकर आँखें फाड़े, पीड़ा से चीखता और कराहता नीचे पड़ा है।"

जनता के मुक्तिसंघर्ष में पूरा विश्वास रखने वाले और एक क्रान्तिकारी के रूप में उस संघर्ष में शामिल रहते हुये जीवन के प्रति गोर्की का दृष्टिकोण आशावाद और जनता में दृढ़ विश्वास से भरा हुआ था, "हमारे जीवन की यही विलक्षणता नहीं है कि वह बर्बरता और पाशविकता की मोटी तह में लिपटा हुआ है, बल्कि यह कि इस तह के नीचे से आलोकमय, सबल, सृजनात्मक और भलाई की शक्तियाँ विजयी होकर बाहर आ रही हैं और यह दृढ़ आशा पैदा कर रही हैं कि वह दिन दूर नहीं, जब हमारे देश की जनता के जीवन में सौन्दर्य एवं आलोकपूर्ण मानवता का सूर्य उगेगा और अवश्य उगेगा।"

गोर्की का पूरा जीवन और उनका साहित्यिक कार्य पूरी दुनिया के मज़दूरों के लिये एक प्रेरणास्रोत है, और अन्याय के विरुद्ध कदम-कदम पर हमें संघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित करता है। उनका मानना था, "पूँजीवादी समाज में कुल मिलाकर मनुष्य अपने अद्भुत सामर्थ्य को निरर्थक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये बर्बाद करता है। अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये उसे गली में हाथों बल चलना पड़ता है, द्रुतगति के ऐसे रिकार्ड स्थापित करने पड़ते हैं जिनका कुछ कम या कुछ भी व्यावहारिक मूल्य नहीं होता, एक ही वक्त में बीसियों के साथ शतरंज के मैच खेलने, अद्भुत कलाबाज़ियाँ खाने और काव्य-रचना के झूठे चमत्कार प्रदर्शित करने पड़ते हैं, और साधारणतया हर प्रकार की ऐसी बेसिरपैर की हरकतें करनी पड़ती हैं जिनसे उकताये तथा ऊबे हुए लोगों को पुलकित किया जा सके।- – – -"

अक्टूबर क्रान्ति के बाद सोवियत यूनियन में गोर्की अपने अन्तिम दिनों तक

समाजवादी खेमे के अनेक युवा लेखकों का जोश के साथ नेतृत्व कर रहे थे। "अग्नि-दीक्षा" उपन्यास के लेखक निकोलाई ओस्त्रेव्स्की ने 1936 में गोर्की के बारे में लिखा है, "हमारी टुकड़ी का कमाण्डर ऊँचे कद का, सफ़ेद बालों वाला कमाण्डर – प्रसिद्ध और सम्मानप्राप्त, अपनी कला में सिद्धहस्त अपनी मूँछों पर हाथ फेरते हुए, धीरे से बड़े गंभीर लहजे में कहता है: "इन घिसटनेवालों का क्या करूँ? पीछे कहीं बैठे नाश्ता कर रहे होंगे" – अगले दस्ते से कहीं 50 मील पीछे होंगे। उनकी पाकशाला पीछे कहीं दलदल में धँस गई है। मेरे बालों को ये लज्जित कर रहे हैं।" यह मज़ाक है ज़रूर, मगर एक कड़वा मज़ाक, इसमें सचाई कम नहीं।"

अन्त में गोर्की के ही शब्दों में, "मेरे लिये मानव से परे विचारों का कोई अस्तित्व नहीं है। मेरे नज़दीक मानव तथा एकमात्र मानव ही सभी वस्तुओं और सभी विचारों का निर्माता है। चमत्कार वही करता है और वही प्रकृति की सभी भावी शक्तियों का स्वामी है। हमारे इस संसार में जो कुछ अति सुन्दर है उनका निर्माण मानव श्रम, और उसके कुशल हाथों ने किया है। हमारे सभी भाव और विचार श्रम की प्रक्रिया में उत्पन्न होते हैं और यह ऐसी बात है, जिसकी कला, विज्ञान तथा प्रविधिका इतिहास पुष्टि करता है। विचार तथ्य के पीछे चलता है। मैं मानव को इसलिये प्रणाम करता हूँ कि इस संसार में कोई ऐसी चीज नहीं दिखाई देती जो उसके विवेक, उसकी कल्पनाशक्ति, उसके अनुमान का साकार रूप न हो।

"यदि "पावन" वस्तु की चर्चा आवश्यक ही है, तो वह है अपने आप से मानव का असन्तोष, उसकी यह आकाँक्षा कि वह जैसा है उससे बेहतर बने। ज़िन्दगी की सारी गन्दगी के प्रति जिसे उसने स्वयं जन्म दिया है, उसकी घृणा को मैं पवित्र मानता हूँ। ईष्या, धनलिप्सा, अपराध, रोग, युद्ध तथा संसार में लोगों के बीच शत्रुता का अन्त करने की उसकी इच्छा और उसके श्रम को पवित्र मानता हूँ।"

मज़दूर बिगुल, मार्च 2013

कहानी - मकर चुद्रा

समुद्र की ठण्डी नम हवा साहिल पर लहरों के छितराने के उदास संगीत और सूखी झाड़ियों की सरसराहट के साथ घास के सुविस्तृत मैदानों के ऊपर से गुज़र रही थी। रह-रहकर हवा का झोंका आता और हमारे पड़ाव की अग्नि में चुरमुर हुए पीले पत्तों की आहुति डाल देता, जिससे लपटें लपलपा उठतीं, और तब शरद्-रात्रि का अँधेरा काँपकर भय से पीछे हट जाता, बायीं ओर सीमाहीन स्तेपी और दाहिनी ओर सीमाहीन समुद्र की एक झलक दिखायी देती और सामने की दिशा में एक वृद्ध जिप्सी मकर चुद्रा का आकार उभर आता, जो पचास एक डग दूर अपने कैम्प के घोड़ों की निगरानी कर रहा था।

ठण्डी हवा के झोंकों ने उसके कौकशी कोट के पल्लों को उघार दिया था और उसकी बालदार नंगी छाती पर बेरहमी से थपेड़े मार रहे थे, लेकिन वह इस सबसे बेख़बर मेरी ओर मुँह किये सौम्य और सशक्त मुद्रा में लेटा हुआ, अपने भीमाकार पाइप से बराबर कश खींचता, अपनी नाक और मुँह से धुएँ के बादल छोड़ रहा था। उसकी एकटक दृष्टि मेरे सिर पर से होती हुई सुविस्तृत स्तेपी के निस्स्तब्ध अन्धकार पर जमी थी, और वह हवा के कुत्सित थपेड़ों से अपने आपको बचाने का ज़रा भी प्रयत्न न करते हुए बिना रुके बतिया रहा था –

"सो तुम दुनिया की धूल छानते घूमते हो, क्यों? बहुत ख़ूब! बहुत अच्छा रास्ता पकड़ा है तुमने, मेरे नन्हे बाज़! एकमात्र सही तरीक़ा। दुनिया में घूम-घूमकर चीज़ें देखो, जब ख़ूब मन भर जाये तो पड़े रहो और सदा के लिए आँखें मूँद लो!"

उसकी "एकमात्र सही तरीक़ा" वाली बात मुझे जँची नहीं। मेरी आपत्ति सुन सवालिया अन्दाज़ में बोला –

"जीवन? साथी मानव? – इस सबके लिए दुबला होने की क्या ज़रूरत है? क्या तुम्हारा अपना जीवन नहीं है? और जहाँ वसूल लेते हैं, जो बुद्धू हैं, वे टापते रह जाते हैं। लेकिन यह सब हर कोई अपने आप ही सीखता है।

"अजीब चीज़ हैं ये लोग-बाग भी – उनका सारा रेवड़ एक ही जगह जमा होगा, घिचपिच, एक-दूसरे को कुचलते हुए, जबकि इतनी जगह यहाँ मौजूद है कि समेटे न सिमटे," हाथ के सपाटे से मैदान की ओर इशारा करते हुए वह कहता गया, "और सबके सब काम में जुते रहते हैं। किसलिए? यह कोई नहीं जानता। जब कभी मैं किसी आदमी को खेत जोतते देखता हूँ तो मन ही मन सोचता हूँ – यह देखो, वह अपनी शक्ति और अपना पसीना बूँद-बूँद करके धरती में खपाये दे रहा है, केवल इसीलिए न कि अन्त में इसी धरती में उसे सोना और गल-सड़कर ख़त्म हो जाना है। जितना निपट मूर्ख वह पैदा हुआ था, वैसा ही मर जायेगा। कुछ भी अपने पीछे नहीं छोड़ जायेगा। अपने खेतों के सिवा और कुछ भी तो वह नहीं देख पाता।

"क्या इसीलिए उसने जन्म लिया था कि धरती को खोदता रहे और ख़ुद अपने लिए एक क़ब्र तक खोदने का प्रबन्ध किये बिना इस दुनिया से कूच कर जाये? क्या उसने कभी आज़ादी का स्वाद चखा कि वह कैसी होती है? क्या उसने कभी इन मैदानी विस्तारों की ओर नज़र उठाकर देखा? समुद्र के मर्मर-संगीत को सुनकर उसके हृदय का कमल क्या कभी खिला? वह एक ग़ुलाम है – और अपने जन्म के दिन से लेकर मृत्यु के दिन तक ग़ुलाम रहता है। इसके लिए क्या वह कुछ कर सकता है? नहीं, कुछ नहीं, सिवा इसके कि अपने गले में फन्दा डालकर लटक जाये – अगर उसमें इतनी भी समझ हो तो!

"अब रही मेरी बात, अट्ठावन साल की उम्र में इतना कुछ मैंने देखा है कि अगर उसे काग़ज़ पर उतारा जाये तो वह, जैसा थैला तुम लिये हो न, वैसे हज़ार थैलों में भी नहीं आयेगा। भला तुम नाम तो लो किसी ऐसी जगह का, जो मैंने न देखी हो। नहीं, तुम ऐसी एक भी जगह का नाम नहीं ले सकते। नाम लेना तो दूर, मैं ऐसी-ऐसी जगह गया हूँ जिनके बारे में तुमने कभी सुना तक न होगा। केवल यही तरीक़ा है जीवन बिताने का – आज यहाँ तो कल वहाँ। बस, घूमते रहो। किसी भी जगह ज़्यादा दिनों तक नहीं टिको – और कोई टिके भी क्यों? तुम्हीं देखो, दिन और रात किस प्रकार सदा चलते और एक-दूसरे का पीछा करते हुए धरती का चक्कर लगाते रहते हैं। ठीक वैसे ही, अगर तुम जीने की अपनी उमंग गँवाना नहीं चाहते हो तो, तुम्हें अपने विचारों को हाँकते रहना है।

यह निश्चित समझो, जीवन का उल्लास वहीं समाप्त हो जाता है जहाँ आदमी जीवन के बारे में अत्यधिक सोचने लगता है। मैं भी कभी ऐसा ही करता था। सच, मेरे नन्हे बाज़, मैं भी इस मर्ज़ का शिकार रह चुका हूँ।

"यह उन दिनों की बात है, जब मैं गालीसिया की जेल में था। 'आख़िर मैंने जन्म ही क्यों लिया?' त्रस्त होकर मैं सोचता। जेल में बन्द होना भी कितनी बड़ी मुसीबत है – सच, बहुत ही भारी मुसीबत! हर बार, जब भी मैं खिड़की से बाहर खेतों की ओर देखता, तो ऐसा मालूम होता, जैसे कोई शैतान मेरे हृदय को नोच रहा हो। कौन कह सकता है कि आख़िर मैंने जन्म क्यों लिया? कोई नहीं! और अपने आपसे ऐसा सवाल कभी करना भी नहीं चाहिए। जियो और जीवित रहने के लिए अपने भाग्य को सराहो। धरती पर घूमो और जो कुछ देखा जा सकता है वह सब देखो। तब दुख तुम पर कभी हावी नहीं होगा। ओह, एक बार तो अपनी पेटी का फन्दा गले में डालकर मैं झूल ही गया होता!

"एक बार एक आदमी से मेरी ख़ूब झड़प हुई। वह कड़ा आदमी था और रूसी था, तुम्हारी ही भाँति। कहने लगा – 'जैसे मन में आये, वैसे ही आदमी को नहीं जीना है, बल्कि ख़ुदा की किताब में जैसे लिखा है, वैसे चलना है। अगर आदमी ख़ुदा का कहना मानकर चलता है,' वह बोला – 'तो ख़ुदा उसकी हर मुराद पूरी करता है।' वह ख़ुद चिथड़े पहने था। मैंने कहा – 'ख़ुदा से एक नया सूट क्यों नहीं माँग लेते?' इस पर वह बुरी तरह बिगड़ खड़ा हुआ और गालियाँ देते हुए मुझे भगा दिया। लेकिन, कुछ ही क्षण पहले, वह उपदेश झाड़ रहा था कि मानव को अपने पड़ोसियों से प्रेम करना चाहिए, उनके प्रति उसके हृदय में क्षमा होनी चाहिए। लेकिन अगर मैंने उसे नाराज़ कर दिया था, तो उसने मुझे क्यों नहीं क्षमा किया? देखा, ऐसे होते हैं तुम्हारे ये उपदेशक! लोगों को तो सीख देते हैं कि कम खाओ, जबकि अपना दोज़ख़ वे दिन में दस बार भरते हैं।"

उसने आग में थूका और चुपचाप अपने पाइप को फिर से ताज़ा करने लगा। हवा धीमे स्वर में कराह रही थी, अँधेरे में घोड़े हिनहिना रहे थे और जिप्सियों के कैम्प से एक गीत के कोमल अनुराग भरे स्वर वातावरण में तैर रहे थे। यह मकर की सुन्दर लड़की नोन्का थी जो गा रही थी। कण्ठ की गहराई से निकली उसकी आवाज़ मैं पहचानता था, जिसमें –

चाहे वह कोई गीत गा रही हो अथवा केवल दुआ-सलाम के शब्द मुँह से निकाल रही हो – हमेशा एक असन्तोष और आदेश का पुट मिला रहता था। तपे ताँबे-से उसके चेहरे पर रानी ऐसी अहम्मन्यता का भाव चस्पा हो गया था और उसकी काली आँखों की परछाइयों में उसके अपने असीम सौन्दर्य की चेतना और अपने से भिन्न हर चीज़ के प्रति घृणा की एक भावना थिरकती रहती थी।

मकर ने अपना पाइप मेरे हाथ में थमा दिया।

"यह लो, पियो। वह ख़ूब गाती है, क्यों, अच्छा गाती है न? क्या तुम चाहोगे उस जैसी कोई कुँवारी कन्या तुमसे प्रेम करने लगे? नहीं? बहुत ठीक। स्त्रियों पर कभी भरोसा नहीं रखना और उनसे दूर ही रहना। लड़कियों को पुरुष का मुँह चूमने में जितना आनन्द आता है, उतना मुझे अपना पाइप पीने में भी नहीं आता। लेकिन एक बार भी जहाँ तुमने किसी लड़की का मुँह चूमा कि समझ लो, तुम्हारी आज़ादी सदा के लिए ख़त्म हो गयी। ऐसे अदृश्य बन्धनों में वह तुम्हें जकड़ लेगी, जो तोड़े नहीं टूटेंगे, और तुम हृदय और आत्मा से उसके पाँव की धूल बनकर रह जाओगे। यह एकदम सच बात है। लड़कियों से ख़बरदार रहना। झूठ तो सदा उनके होंठों पर नाचता रहता है। वे क़समें खायेंगी कि तुम पर ही वे सबसे ज़्यादा जान देती हैं, लेकिन अगर कहीं तुमने ज़रा भी उन्हें नाराज़ कर दिया तो पहली बार में ही तुम्हारा हृदय नोच डालेंगी। मैं यों ही कुछ नहीं कहता। मैंने बहुत कुछ देखा-जाना है। अगर तुम चाहो तो एक सच्ची कहानी तुम्हें सुनाऊँ। इसे तुम अपने हृदय में गाँठ बाँध कर रखना। अगर तुमने ऐसा किया तो जीवन-भर पक्षियों की भाँति आज़ाद रहोगे।

"बहुत दिनों की बात है। जोबार – लोइको जोबार – नाम का एक युवक जिप्सी था। भय उसे छू तक नहीं गया था और हंगरी और बोहेमिया और स्लावोनिया और समुद्र के इर्द-गिर्द सभी देशों में दूर-दूर तक उसकी ख्याति फैली थी। उन इलाक़ों में एक भी गाँव ऐसा नहीं था, जिसमें चार या पाँच लोग जोबार की जान के दुश्मन न हों, लेकिन उसका कभी एक बाल तक बाँका नहीं हुआ। अगर कोई घोड़ा उसकी नज़र में चढ़ जाता तो फौजियों की पलटन भी उसे न रोक पाती और वह उसकी पीठ पर सवार हो हवा हो जाता। क्या वह किसी से डरता था? नहीं! डर से जोबार का कोई वास्ता नहीं था। वह ख़ुद शैतान और उसके समूचे दल-बल को

– अगर वह उस पर धावा बोलता तो – छुरे की धार पर उतारकर रख देता या फिर कम से कम इतना तो निश्चित ही समझो कि वह उन्हें ख़ूब आड़े हाथों लेता और जमकर उनकी मरम्मत करता।

"जिप्सियों का कोई कैम्प ऐसा नहीं था जो जोबार को न जानता हो या जिसने उसके बारे में नहीं सुना हो। केवल एक ही चीज़ से उसे प्यार था – घोड़े से, सो भी अधिक दिनों के लिए नहीं। जब वह उस पर सवारी गाँठते-गाँठते उकता जाता तो उसे बेच डालता और उससे मिला धन, जो भी हाथ फैलाता, उसे ही दे डालता। उसे किसी चीज़ का मोह नहीं था। अगर किसी को ज़रूरत होती तो वह अपना हृदय तक चीरकर दे देता। सच, वह ऐसा ही आदमी था।

"उस समय, जिसका कि मैं जिक्र कर रहा हूँ – कोई दस वर्ष पहले – हमारा काफ़िला बुकोविना में घूम रहा था। बसन्त के दिन थे। एक रात हम आदमियों की एक टुकड़ी जमा थी – उसमें एक सैनिक दानिलो था, जो कोशूत की कमान में लड़ चुका था, और वृद्ध नूर, दानिलो की लड़की राद्दा तथा अन्य कई थे।

"क्या तुमने मेरी नोन्का को देखा है? वह सौन्दर्य की रानी है। लेकिन राद्दा से उसकी तुलना करना उसे आसमान पर चढ़ाना होगा। राद्दा इतनी सुन्दर थी कि बयान से बाहर। शायद वायलिन का संगीत उसके सौन्दर्य को व्यक्त कर सके। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब कि वायलिन-वादक अपनी आत्मा को पूर्णरूपेण उसमें उड़ेलकर रख दे।

"राद्दा के प्रेम में न जाने कितने लोग घुल-घुलकर ख़त्म हो गये। एक बार मोराविया के एक धनिक वृद्ध ने उसे देखा और स्तब्ध रह गया। वह अपने घोड़े पर बैठा बस उसे ताकता ही रहा। उसका समूचा बदन इस तरह हिल रहा था मानो उसे जूड़ी आ गयी हो। वह इतना सजा-धजा था कि लगता था जैसे शैतान जश्न मनाने निकला हो। उसका उक्रइनी कोट जरी के काम से अटा था, बग़ल से लटकती उसकी तलवार बहुमूल्य रत्नों से जड़ी थी, जिनसे घोड़े के ज़रा-सा भी हिलने पर बिजली की भाँति चमक निकलती थी, नीले रंग की उसकी मख़मली टोपी ऐसी मालूम होती थी मानो नीले आकाश का एक टुकड़ा नीचे उतरकर उसके सिर पर आ बिराजा हो। बहुत ही बड़ा आदमी था वह खूसट। बस, घोड़े पर बैठा राद्दा को देखता रहा, देखता रहा। अन्त में उससे बोला – 'एक

चुम्बन के लिए सोने की यह थैली न्योछावर कर दूँगा!' राद्दा ने अपना मुँह फेर लिया, और बस। खूसट धनिक ने अब अपना स्वर बदला – 'अगर मैंने तुम्हारा अपमान किया हो तो माफ़ी चाहता हूँ। लेकिन कम से कम एक मुस्कुराहट तो तुम मुझे दे ही सकती हो।' और यह कहते हुए उसने अपनी थैली उसके पाँवों के पास फेंक दी। थैली काफ़ी भारी थी। लेकिन उसने, मानो अनजान में ही पाँव से ठुकराकर उसे धूल में धकेल दिया, इस तरह जैसे उसने उसे देखा तक न हो।

"उफ़, पूरी फ़ितना है!" उसने भभकारा भरा और घोड़े के पुट्ठे पर चाबुक फटकार सड़क पर धूल का बादल उड़ाता चला गया।

"अगले दिन वह फिर आया। 'इसका बाप कौन है?' उसने पूछा, इतनी तेज़ आवाज़ में कि समूचा कैम्प गूँज उठा। दानिलो आगे बढ़ आया। 'अपनी लड़की मुझे बेच दो। मुँह-माँगे दाम दूँगा।' दानिलों ने जवाब दिया – 'बेचने का काम तो बड़े लोग करते हैं – सूअरों से लेकर उनकी अपनी आत्मा तक, चाहे जो ख़रीद लो। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं कोशूत की कमान में लड़ चुका हूँ और बेचने का धन्धा नहीं करता।' धनिक ख़ूब गरजा और अपनी तलवार पर उसका हाथ जा पहुँचा। लेकिन तभी किसी ने एक जलते हुई छेपटी घोड़े के कान से छुआ दी – जानवर बिदका और मय अपने मालिक के हवा हो गया। हमने भी अपना डण्डा-डेरा उठाया और सड़क की राह ली। जब हमें सड़क पर चलते पूरे दो दिन हो गये तो एकाएक हमने उसे अपने पीछे आते हुए देखा। 'अरे! सुनो तो,' वह चिल्लाकर बोला – 'मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि मेरी नीयत में बदी नहीं है। मैं इस लड़की को अपनी बीवी बनाना चाहता हूँ। मेरी हर चीज़ में तुम्हारा हिस्सा होगा, और यह तुम जानते ही हो कि मैं बहुत धनी हूँ।' उसका अंग-अंग तमतमा रहा था और वह इस तरह हिल रहा था जैसे हवा में सूखी घास की पत्तियाँ।

"उसने जो कुछ कहा था, उस पर हमने विचार किया।

"'बोल बेटी – दानिलो' अपनी दाढ़ी के भीतर से बुदबुदाया – 'तेरी मन्शा क्या है?'

"राद्दा ने जवाब दिया –

"'अगर बाज़ की संगिनी ख़ुद अपनी मर्ज़ी से किसी कौवे के घोंसले को आबाद करने चली जाये तो तुम्हें कैसा लगेगा?'

"दानिलो हँसा, और उसी प्रकार हम सब भी हँस पड़े।

"'ख़ूब जवाब दिया, बेटी! कुछ सुना, श्रीमान? आपकी दाल यहाँ ग़लती नज़र नहीं आती। अच्छा हो, काबुक में रहने वाली किसी कबूतरी पर डोरे डालो, वह सहज ही पकड़ में आ जायेगी।' और हम अपने रास्ते पर आगे बढ़ चले।

"इस पर उस धनी ने अपनी टोपी सिर से खींचकर ज़मीन पर पटक दी और इतनी तेज़ गति से नौ दो ग्यारह हो गया कि उसके घोड़ों की टापों से धरती हिल उठी। देखा, मेरे नन्हे बाज़, ऐसी थी वह राद्दा।

"इसके बाद एक रात, जब कि हम कैम्प में बैठे थे, एकाएक मैदानों की ओर से संगीत की आवाज़ आती सुनायी दी। अद्‌भुत संगीत था वह। ऐसा कि रगों में रक्त थिरकने लगा, और ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी अज्ञात लोक की ओर वह हमें खींचे लिये जा रहा हो। एक ऐसी प्रचण्ड आकांक्षा से उसने हमें भर दिया कि उसके बाद जैसे जीवन का चरम सुख हमें मिल जायेगा और फिर जीने की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी, और अगर जीवित रहे भी तो हम समूचे विश्व के स्वामी बनकर जीवित रहेंगे।

"तभी अन्धकार में से एक घोड़ा प्रकट हुआ, और इस घोड़े पर एक आदमी बैठा हुआ चिकारा बजा रहा था। हमारे कैम्प की अग्नि के पास आकर वह रुक गया, चिकारा बजाना उसने बन्द कर दिया और मुस्कुराता हुआ हमारी ओर देखने लगा।

"'अरे जोबार, तुम हो!' दानिलो ने उछाह से चिल्लाकर कहा।

"हाँ, तो वह लोइको जोबार था। उसकी मूँछों के छोर उसके कन्धों को छूते हुए उसके घुँघराले बालों के साथ घुल-मिल गये थे। उसकी आँखें दो उजले तारों की भाँति चमक रही थीं, और उसकी मुस्कान में तो जैसे सूरज की धूप खिली थी। वह और उसका घोड़ा – ऐसा मालूम होता था मानो – एक ही धातु-खण्ड से काटकर बनाये गये हों। सामने ही वह मौजूद था – अलाव की रोशनी में रक्त की भाँति लाल, जब हँसता था तो उसके दाँत चमक उठते थे। सच, मुझसे अभागा कोई न होता अगर मेरे हृदय में उतना ही प्यार न जगता, जितना कि मैं ख़ुद अपने को प्यार करता हूँ, लेकिन वह था कि उसने एक भी शब्द मुझसे नहीं कहा या कहिए कि मेरे अस्तित्व तक की ओर उसने ध्यान नहीं दिया।

"देखा, मेरे नन्हे बाज़, इस दुनिया में ऐसे लोग भी हैं। उसने तुम्हारी आँखों में देखा नहीं कि तुम, मय अपनी आत्मा के, उसके ग़ुलाम हो गये और, बजाय इसके कि तुम इस पर लज्जा का अनुभव करो, तुम एक गर्व से भर जाते हो। लगता है जैसे उसकी मौजूदगी ने तुम्हें ऊँचा उठा दिया हो। ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है। शायद यह अच्छा भी है। अगर दुनिया में अच्छी चीज़ों की भरमार होती, तो उनकी अच्छों में गिनती न होती। लेकिन अब आगे की बात सुनो।

"राद्दा ने उससे कहा – 'जोबार, तुम बहुत अच्छा चिकारा बजाते हो। इतनी सुरीली आवाज़ वाला चिकारा तुम्हें किसने बनाकर दिया है? वह हँसा। बोला – 'ख़ुद मैंने बनाया है, और लकड़ी से नहीं, उस युवती के हृदय से मैंने इसका निर्माण किया है, जिसे मैं जी-जान से प्यार करता था – इसके तार उसके हृदय के स्वर हैं। अब भी कभी-कभी इससे – मेरे इस चिकारे से – झूठे स्वर निकलते हैं, लेकिन कमानी को अपने इशारे के अनुसार झुकाना मैं जान गया हूँ।'

"पुरुष हमेशा इस बात का प्रयत्न करता है कि अपने प्रति चाह जगाकर लड़की की आँखों को धुँधला बनाये रखे। ऐसा करके उसके नेत्र-बाणों से वह अपने हृदय की रक्षा करता है। और जोबार ने भी ऐसा ही किया। लेकिन वह यह नहीं जानता था कि इस बार किससे उसका पाला पड़ा है। राद्दा ने उससे मुँह फेर लिया और जमुहाई लेते हुए कहा – 'मैंने तो सुना था कि जोबार समझदार और चतुर है। एकदम ग़लत!' और यह कहकर वह दूर चली गयी।

"'तुम्हारे दाँत बड़े पैने हैं, सुन्दर लड़की!' जोबार ने कहा और घोड़े से उतरते समय उसकी आँखें चमक उठीं – 'साथियो, अच्छी तरह से तो हो। सोचा, तुमसे मिलता चलूँ। सो चला आया।'

"'अच्छा हुआ जो तुम चले आये,' दानिलो ने जवाब दिया – 'हमें इसकी ख़ुशी है।'

"हम एक-दूसरे के गले लगे, कुछ देर बातचीत की और फिर सोने चले गये – ख़ूब गहरी नींद सोये। सुबह जब उठे तो देखा कि जोबार के सिर पर पट्टी बँधी है। यह क्यों? मालूम हुआ कि रात को सोते समय घोड़े की लात उसके सिर में लग गयी।

"वाह, लेकिन हम जानते थे कि वह कौन-सा घोड़ा है जिसने उसे

घायल किया है। और हम मन ही मन मुस्कुराये, और दानिलो भी मुस्कुराया। तो क्या जोबार भी राद्दा से मात खाकर रहेगा? नहीं, बिल्कुल नहीं। ख़ूबसूरती में चाहे वह जितनी बड़ी-चढ़ी हो, लेकिन आत्मा उसकी छोटी है और दुनिया-भर के सोने से लद जाने पर भी छोटी ही बनी रहेगी।

"हाँ, तो हम उसी जगह पर पड़ाव डाले रहे। सभी कुछ मज़े से चल रहा था, और लोइको जोबार भी हमारे साथ ही टिका हुआ था। वह बहुत अच्छा साथी था – बड़े-बूढ़ों की भाँति समझदार, सभी बातों की जानकारी रखने वाला और पढ़ा-लिखा – रूसी और मगयार दोनों ही भाषाएँ वह पढ़ और लिख सकता था। और उसकी बातें – रात बीत जाये फिर भी जी न ऊबे। और जब वह चिकारा बजाता था – सच, मैं अपनी जान की बाजी हारने को तैयार हूँ अगर कोई उसकी टक्कर का दूसरा बजाने वाला खोज लाये। वह कमानी का जैसे ही तारों से स्पर्श करता तो लगता, जैसे हृदय खिंचकर बाहर निकल आयेगा। वह कमानी को फिर तारों पर खींचता-हृदय की एक-एक शिराएँ पुलकित हो सुनने लगतीं, रोम-रोम में एक तनाव-सा छा जाता, और वह उसी प्रकार बजाता और मुस्कुराता रहता। हास्य और रुदन के भाव हृदय में उमड़ते-घुमड़ते और एक साथ फूट पड़ना चाहते। कभी ऐसा मालूम होता, मानो कोई जार-जार रो रहा है और मदद की याचना कर रहा है। तब लगता, जैसे हृदय को चाकू से कुरेदा जा रहा है। कभी मालूम होता कि घास के सुविस्तृत मैदान आकाश को अपने जीवन की कथा सुना रहे हैं – ऐसी कथा, जो उदासी में डूबी है। कभी लगता कि कोई युवती अपने प्रेमी को विदा करते समय विलाप कर रही है। फिर मालूम होता कि उसका प्रेमी घास के मैदानों से उसे पुकार रहा है। इसके बाद, आकाश से उल्कापात की भाँति, आह्लादपूर्ण और अपने साथ बहा ले जाने वाला स्वर सुनायी पड़ता, और लगता, जैसे आकाश में सूर्य तक उसे सुनकर थिरकने लगा है। ऐसा चिकारा बजाता था वह मेरे नन्हे बाज़!

"उस संगीत के स्वर रोम-रोम में समा जाते थे, और लगता था जैसे हमारा अब कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा है। अगर उस समय जोबार चिल्लाकर कहता – 'साथियो, अपने चाकू निकाल लो!' तो हममें से प्रत्येक अपना चाकू निकाल लेता, और जिसकी ओर वह इशारा करता, उसी पर टूट पड़ता। चाहता तो वह हममें से किसी को भी अपनी कनकी

उँगली के चारों ओर लपेट लेता। हम सब उसे बेहद प्यार करते थे। एक राद्दा ही ऐसी थी, जो उससे कोई वास्ता नहीं रखती थी। यों अपने आपमें वैसे ही यह कुछ कम बुरी बात नहीं थी, लेकिन इसके अलावा वह उसका मज़ाक़ भी उड़ाती थी। वह उसके हृदय में घाव करती थी और बुरी तरह घाव करती थी। वह अपने दाँत भींच लेता, अपनी मूँछों के बाल खींचता, उसकी आँखें कुएँ से भी ज़्यादा गहरी हो जातीं और कभी-कभी उनमें एक ऐसी बिजली-सी कौंधती कि हृदय सहमकर रह जाता। रात को वह दूर घास के मैदानों की गहराइयों में चला जाता और उसका चिकारा सुबह होने तक विलाप करता रहता – अपनी खोई हुई आज़ादी पर सिर धुनता। और हम, पड़े-पड़े, उसके इस विलाप को सुनते और मन ही मन सोचते – 'हे भगवान, यह क्या होने वाला है?' और हम जानते थे कि जब दो पत्थर एक-दूसरे की ओर लुढ़कते हैं तो उनके रास्ते में जो भी आता है, उसे कुचल डालते हैं। यह थी उस समय की स्थिति।

"एक रात अलाव के पास बैठे देर रात तक हम अपने मामलों पर बातचीत करते रहे और जब बातें करते-करते थक चले तो दानिलो जोबार की ओर घूम गया और बोला – 'जोबार, कोई ऐसा गीत सुनाओ, जिससे हमारे दिल ख़ुशी का अनुभव कर सकें।' जोबार ने एक नज़र राद्दा पर डाली, जो कुछ ही दूर धरती पर पड़ी आसमान की ओर देख रही थी। और उसने अपनी कमान को चिकारे के तारों पर से खींचा। चिकारे में से गीत के स्वर प्रकट हुए, इस तरह, मानो कमान चिकारे के तारों को नहीं, वस्तुतः किसी युवती के हृदय के तारों को छेड़ रही हो। और उसने गाया –

अइहो, अइहो! मेरे हृदय में प्रेम न समाये,
स्तेपी सागर की भाँति हिलोरे खाये,
और हमारे घोड़े एकदम निर्भय
हम दोनों को हवा की भाँति उड़ा ले जायें!

"राद्दा ने अपना सिर उसकी ओर घुमा लिया, कुहनी के बल उठी और उसके मुँह की ओर खिलखिलाकर हँसने लगी। जोबार का चेहरा तमतमाकर लाल हो गया।

अइहो, अइहो! मेरे सच्चे जीवन-साथी
निकट अँधियारी का अब अन्त,

छाई रात की परछाइयाँ अभी मैदानो पर घास के,
लेकिन इससे क्या, नापेंगे हम आकाश की ऊँचाइयों को!
दिन के स्वागत के लिए तेज़ करो घोड़ों को अपने,
जो थिरक रहा है अब सुविस्तृत मैदानों में,
लेकिन देखो, चन्द्रमा सुन्दरी को निहार
भटक न जाना तुम, और रह न जाये स्वागत रवि-किरणों का!

"कितना बढ़िया गाया! आजकल इस तरह के गीत दुर्लभ हो गये हैं। लेकिन राद्दा दबे स्वर में फुसफुसा उठी –

"'तुम्हारी जगह मैं होती तो कभी इस तरह आकाश में घोड़े न दौड़ाती। अगर सिर के बल जोहड़ में आ गिरे तो तुम्हारी ये सुन्दर मूँछें ख़राब हो जायेंगी।'

"जोबार ने गुस्से में भरकर उसकी ओर देखा, लेकिन कहा कुछ नहीं। उसने अपने आपको क़ाबू से बाहर नहीं जाने दिया और गाना जारी रखा –

अइहो, अइहो! रवि-किरणें गर आकर
देखेंगी – हम दोनों को नींद में डूबा,
होगे लज्जा से मुँह लाल हमारे,
गर नहीं उठे, और रहे हम लम्बी ताने!

"'कितना शानदार गीत है!' दानिलो ने कहा – 'इससे अच्छा गीत अपने जीवन में पहले कभी नहीं सुना, अगर मैं ग़लत कहता हूँ तो शैतान मुझे आदमी से पाइप बना डाले।'

"वृद्ध नूर अपने गल-मुच्छों को सहलाकर अपने कन्धों को बिचका रहा था, जोबार के साहसपूर्ण गीत ने हम सभी के दिल खिला दिए थे। लेकिन राद्दा को वह पसन्द नहीं आया। कहने लगी –

"'ऐसे ही एक बार बाज़ की आवाज़ की नक़ल में एक मच्छर को भनभनाते मैंने सुना था!'

"ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसने हम सबके सिरों पर बर्फ़ का पानी उँड़ेल दिया हो। दानिलो बड़बड़ा उठा – 'कोड़े का मुँह देखे शायद बहुत दिन हो गये हैं, राद्दा!" लेकिन जोबार ने, जिसका चेहरा धरती की भाँति काला पड़ गया था, अपनी टोपी उतारकर नीचे फेंक दी और बोला –

"'ठहरो, दानिलो! गरमाये हुए घोड़े के लिए इस्पाती लगाम की ज़रूरत

होती है। अपनी लड़की की शादी तुम मेरे साथ कर दो!'

"'क्या बात कही है तुमने,' दानिलो मुस्कुराया – 'ले लो, अगर तुम ले सको।'

"'अच्छी बात है,' जोबार ने कहा और फिर राद्दा की ओर मुड़ते हुए बोला – 'अब ज़रा अपने हवाई घोड़े से नीचे उतर आओ, लड़की, और सुनो जो मैं कहता हूँ। अपने जीवन में अनेक – हाँ अनेक – लड़कियों से मेरा पाला पड़ा, लेकिन उनमें से एक भी तुम्हारी तरह मेरे हृदय को अपने कब्जे में नहीं कर सकीं। आह, राद्दा, तुमने मेरी आत्मा को बन्दी बना लिया है। इसमें किसी का बस नहीं, जो होना है सो होकर रहेगा – और इस दुनिया में ऐसा घोड़ा कोई नहीं है जो मानव को खुद उससे दूर कहीं ले जा सके। खुदा और स्वयं अपनी आत्मा की साक्षी तथा तुम्हारे पिता और इन सब लोगों की मौजूदगी में मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाता हूँ लेकिन एक बात चेताये देता हूँ कि मेरी आज़ादी में आड़े आने की कोशिश न करना, मैं आज़ादी-पसन्द आदमी हूँ और हमेशा वैसे ही रहूँगा, जैसे मेरा जी चाहेगा।'

"दाँतों को कसकर दाबे और अपनी आँखों को धधकाये वह उसके पास जा पहुँचा। हमने उसे राद्दा की ओर हाथ बढ़ाते हुए देखा और सोचा, 'आख़िर राद्दा ने सुविस्तृत मैदानों के इस बनैले घोड़े के मुँह में लगाम डाल ही दी।' लेकिन तभी, एकाएक, जोबार की बाहें फैल गयीं और उसका सिर धरती से जा टकराया।

"यह क्या हो गया? ऐसा मालूम होता था, जैसे गोली ने उसका सीना छलनी कर दिया हो। लेकिन यह तो राद्दा का चाबुक था, जिसने उसकी टाँगों में फन्दा डाल झटका देकर उसे गिरा दिया था।

"और वह अब फिर, पहले की भाँति, निश्चल लेट गयी। उसके होंठों पर उपेक्षापूर्ण मुस्कुराहट खेल रही थी। हम सब, सकते की हालत में, यह देख रहे थे कि अब क्या होता है। जोबार उठकर बैठ गया और अपने हाथों में उसने अपना सिर पकड़ लिया, मानो उसे डर हो कि कहीं वह टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर न जाये। फिर वह चुपचाप उठा और, एक बार भी किसी की ओर देखे बिना, मैदानों की ओर चल दिया। नूर ने फुसफुसाकर मुझसे कहा – 'अच्छा हो तुम इस पर नज़र रखो।' सो मैं भी उसके पीछे-पीछे रात के अँधेरे में मैदानों में रेंगता हुआ चला। ज़रा

ख़याल तो करो, मेरे नन्हे बाज़।'

मकर ने अपने पाइप के कटोरे में से राख झाड़-खुरचकर बाहर फेंक दी और उसे फिर भरने लगा। मैंने कोट के पल्ले खींचकर उसे अपने बदन के इर्द-गिर्द कसकर सटा लिया और धरती पर लेट गया। इस तरह धूप तथा हवा से ताँबा बना उसका वृद्ध चेहरा और भी अच्छी तरह दिखायी देता था। वह मन ही मन कुछ बड़बड़ा रहा था और अपनी बात को बल प्रदान करने के लिए गम्भीरता के साथ अपना सिर भी हिलाता जाता था। उसकी भूरी मूँछों में बल पड़ रहे थे और हवा उसके बालों को छेड़ रही थी। उसे देखकर मुझे एक पुराने ओक वृक्ष की याद हो आयी, जिस पर बिजली आ गिरी थी, लेकिन जो अभी भी मज़बूत और शक्तिशाली था और अपनी इस शक्ति के गर्व में सिर ऊँचा किये खड़ा था। समुद्र की लहरें अभी भी रेत के कानों में कुछ गुनगुना रही थीं और हवा उनकी इस ध्वनि को घास के मैदानों में फैला रही थी। नोन्का ने गाना बन्द कर दिया था। आकाश में बादल घिर आये थे और शरद की रात्रि का अन्धकार और भी ज़्यादा घना हो उठा था।

"लोइको जोबार के डग बड़ी मुश्किल से उठ रहे थे। काफ़ी प्रयास के बाद वह एक के बाद दूसरा डग उठाता था। उसकी गरदन झुकी थी और बाहें चाबुक की डोरियों की भाँति बेजान-सी झूल रही थीं। एक पतली-सी धारा के तट पर पहुँच वह एक पत्थर पर बैठ गया और एक कराह भरी। उसकी कराह की आवाज़ से मेरा हृदय व्यथित हो उठा, लेकिन मैं उसके निकट नहीं गया। शब्दों से क्या मानव का दुख हल्का होता है? नहीं, उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं। यही तो मुसीबत है। उसे वहाँ बैठे-बैठे एक घण्टा बीत गया, फिर दूसरा और इसके बाद तीसरा। बिना हिले-डुले, वह बस बैठा ही रहा।

"सहसा राद्दा पर मेरी नज़र पड़ी। वह कैम्प की ओर से तेज़ी से हमारी दिशा में बढ़ रही थी।

"मेरी ख़ुशी का वारपार नहीं रहा। 'बहुत ख़ूब, राद्दा, तुम बहादुर लड़की हो!' मैंने सोचा। वह चुपचाप, बिना किसी आहट के, जोबार के पास जाकर खड़ी हो गयी। उसने अपने हाथ उसके कन्धों पर रख दिए। वह चौंक उठा, अपने हाथों को उसने मुक्त किया और सिर उठाकर देखा। अगले ही क्षण वह अपने पाँवों पर खड़ा हो गया और अपने चाकू को

उसने निकाल लिया। 'हे भगवान, क्या वह उसे मार डालेगा?' – मैंने सोचा और उछलकर मदद के लिए पुकारना ही चाहता था कि तभी मैंने सुना – "इसे फेंक दो, नहीं तो मैं तुम्हारा सिर उड़ा दूँगी।'

"मैंने देखा कि राद्दा के हाथ में पिस्तौल है और वह लोइको के सिर का निशाना साधे है। लड़की क्या थी, शैतान की खाला थी। 'अच्छा है,' मैंने सोचा – 'कम से कम ताक़त में दोनों बराबर हैं। पता नहीं, अब क्या होगा?'

"'मैं तुम्हें मारने नहीं, बल्कि तुमसे सुलह करने आयी थी,' पिस्तौल को अपनी पेटी में खोंसते हुए राद्दा ने कहा – 'अपना चाकू दूर फेंक दो। उसने चाकू दूर फेंक दिया और उबलती हुई नज़र से उसकी ओर देखने लगा। क्या दृश्य था वह भी! चोट खाये जंगली पशुओं की भाँति दोनों एक-दूसरे पर नज़र गड़ाये थे, दोनों ही इतने सुन्दर और बहादुर थे। और रुपहले चाँद तथा मेरे सिवा और कोई भी उन्हें नहीं देख रहा था।

"'सुनो, जोबार, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ,' राद्दा ने कहा। वह केवल कन्धे बिचकाकर रह गया – उस आदमी की भाँति, जिसके हाथ और पाँव बँधे हों।

"'अनेक आदमियों से मेरा वास्ता पड़ा है, लेकिन तुम उन सबसे बहादुर और सुन्दर हो। अगर मैं ज़रा भी इशारा करती तो उनमें से हरेक अपनी मूँछें मुड़ाने के लिए तैयार हो जाता, मेरे पाँव की धूल तक चाटने में ज़रा भी आनाकानी न करता। लेकिन मैं ऐसा करती ही क्यों? बहादुर उनमें एक नहीं था और मेरे साथ रहकर उन्हें स्त्रैण बनते ज़रा भी देर न लगती। जिप्सियों में बहादुर बहुत ही कम रह गये हैं, जोबार, बहुत ही कम। अब तक किसी से भी मैं प्यार नहीं कर सकी। लेकिन, जोबार, तुम्हें मैं प्यार करती हूँ। और आज़ादी भी मुझे उतनी ही प्यारी है। नहीं, अपनी आज़ादी को मैं तुमसे भी ज़्यादा प्यार करती हूँ। लेकिन मैं अब तुम्हारे बिना उसी तरह जीवित नहीं रह सकती, जिस तरह कि तुम मेरे बिना जीवित नहीं रह सकते। और मैं चाहती हूँ कि तुम मेरे बनो – शरीर और आत्मा दोनों से मेरे। सुन रहे हो न?'

"जोबार छोटी-सी हँसी हँसा। फिर बोला – 'सुन रहा हूँ। तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लग रही हैं। कहे जाओ!'

"'मुझे इतना ही और कहना है, जोबार, कि तुम चाहे जो करो, मैं तुम्हें

अपनी गिरफ़्त से न जाने दूँगी। तुम निश्चय ही मेरे बनकर रहोगे। और इसलिए अधिक समय गँवाने से कोई लाभ नहीं। मेरे चुम्बन और आलिंगन तुम्हारी बाट जोह रहे हैं, और अपने चुम्बनों में समूचा प्राण उँड़ेलकर रख दूँगी, जोबार। उनके माधुर्य के सामने तुम अपना सारा पिछला वीरतापूर्ण जीवन भूल जाओगे। तुम्हारे छलछलाते हुए आह्लादपूर्ण गीत, जिन्हें जिप्सी इतने चाव से सुनते हैं और जो इस सुविस्तृत मैदान में गूँजते हैं, उन्हें भूलकर अब तुम केवल मेरे लिए – राद्दा के लिए – प्रेम के कोमल गीत गाओगे। अब और ज़्यादा समय न गँवाओ। कहने का मतलब यह कि कल से तुम उसी लगन से मेरी सेवा करोगे, जिस लगन से एक युवक अपने पुराने साथी की सेवा करता है। और समूचे कैम्प की मौजूदगी में तुम मेरे क़दमों के आगे झुकोगे और मेरे दाहिने हाथ का चुम्बन करोगे, केवल तभी मैं तुम्हारी पत्नी बन सकूँगी।'

"हाँ तो इस लड़की के – शैतान की इस खाला के – मन का भेद अब खुला। ऐसी बात न पहले कभी देखी थी, न सुनी थी। बड़े-बूढ़ों से यह ज़रूर सुना था कि मोन्टेनेग्रिन लोगों में, प्राचीन काल में, इस तरह की कथा प्रचलित थी, लेकिन जिप्सियों में ऐसी प्रथा का चलन कभी नहीं था। तुम्हीं बताओ, मेरे युवक दोस्त, इससे अधिक औघड़पन की बात भला और क्या होगी? पूरे एक साल तक दिमाग़ को कुरेदने के बाद भी तुम ऐसी बात नहीं सोच सकोगे।

"जोबार को जैसे किसी ने लोहे से दाग दिया...तिलमिलाहट भरी उसकी चीख़ – एक ऐसे आदमी की चीख़, जिसके हृदय में किसी ने छुरा भोंक दिया हो – समूचे मैदान में गूँज गयी। राद्दा काँपी, लेकिन उसने अपने भावों को प्रकट नहीं होने दिया।

"'अच्छा तो कल तक के लिए विदा और कल तुम वह सब करोगे जो मैंने तुमसे कहा है। क्यों, सुन रहे हो न, जोबार?'

"'हाँ, सुन रहा हूँ। जो कहती हो, करूँगा,' जोबार ने कराहते हुए कहा और अपनी बाहें उसकी ओर बढ़ा दीं, लेकिन वह चली गयी, नज़र घुमाकर उसने उसकी ओर देखा तक नहीं, और वह आँधी से टूटे रुख की भाँति उखड़कर धरती पर जा गिरा, बुरी तरह सुबकियाँ लेता और बिलबिलाता हुआ।

"यह सब, बुरा हो उसका, कमबख़्त राद्दा की करतूत थी। मैं उसे सँभाले

नहीं सँभाल सका।

"आख़िर यह वेदना किसलिए?...क्यों लोगों को इतना कुछ सहना पड़ता है? कौन ऐसा शैतान है, जो उस आदमी की कराहों को सुनकर ख़ुश होगा, जिसका हृदय टूक-टूक हो गया हो? आह, कौन है, जो इस भारी गुत्थी को सुलझा सके?

"कैम्प में लौटकर, जो कुछ हुआ था, वह सब मैंने बड़े-बूढ़ों से कह दिया। हमने मामले पर विचार कर तय किया कि अभी देखा जाये, आगे क्या होता है। और जो कुछ हुआ, वह यह है। साँझ को सदा की भाँति जब हम अलाव के इर्द-गिर्द जमा हुए तो जोबार भी हमारे साथ आ बैठा। वह उदासी में डूबा था। उस एक ही रात में वह झटक गया था और उसकी आँखें गढ़ों में धँसी थीं। वह उन्हें – अपनी आँखों को – ज़मीन में गड़ाये था। एक बार भी उसने उन्हें ऊपर नहीं उठाया और उसी मुद्रा में बोला –

"'साथियो, स्थिति अब इस प्रकार है। सारी रात मैं अपने हृदय को टटोलता रहा और मैंने देखा कि जिस आज़ादी-पसन्द जीवन को मैं अब तक बिताता रहा हूँ, उसके लिए मेरे हृदय में अब कोई जगह नहीं है। उसके हर कोने में राद्दा ने दख़ल कर लिया है। वही राद्दा, जो सुन्दर है शाही मुस्कान जिसके होंठों पर खेलती रहती है। वह अपनी आज़ादी को मुझसे भी ज़्यादा प्यार करती है, लेकिन मैं अपनी आज़ादी से अधिक उसे प्यार करता हूँ और इसलिए मैंने तय कर लिया है कि राद्दा के आदेश के आगे घुटने टेक दूँ कि सब लोग देखें कि किस प्रकार उसके सौन्दर्य ने मुझे – लोहे के उस जोबार को – अपना ग़ुलाम बना लिया है, जो उससे भेंट होने से पहले तक स्त्रियों से ऐसे खेलता था, जैसे बिल्ली चूहे से खेलती है। अब वह मेरी पत्नी बन जायेगी, अपने चुम्बन और प्यार-दुलार मुझ पर न्योछावर करेगी, मैं इतना अभिभूत हो उठूँगा कि तुम्हें अपने गीत सुनाने की आकांक्षा मेरे मन में बाक़ी नहीं रहेगी और अपनी आज़ादी का अभाव मेरे मन में ज़रा भी कसक नहीं पैदा करेगा। क्यों, ऐसा ही होगा न, राद्दा?'

"यह कहने के बाद उसने अपनी आँखें उठायी और राद्दा पर अपनी प्रचण्ड दृष्टि जमा दी। राद्दा ने बिना कुछ बोले अपनी गरदन हिलायी और अपने सामने की धरती की ओर इशारा किया। हमारी समझ से बाहर था

कि इतना उलट-फेर कैसे हो गया। हमारे मन में यह तक हुआ कि यहाँ से उठकर कहीं दूर चले जायें, जिससे लोइको जोबार को एक छोकरी के – चाहे वह खुद राद्दा ही क्यों न हो – पाँवों पर गिरते न देखना पड़े। हमें लगा जैसे यह एक लज्जा की – एक गहरे दुख की – बात हो।

"'हाँ तो अब?' राद्दा ने जोबार से चिल्लाकर कहा।

"'ऐसी जल्दी क्या है? काफ़ी समय मौजूद है – इतना अधिक कि तुम मुझसे उकता जाओ,' जोबार हँसा और उसकी इस हँसी में ठण्डे लोहे ऐसी झंकार थी।

"'हाँ तो, साथियो, सारी स्थिति तुम्हारे सामने है। मुझे अब और क्या करना है? मेरे लिए अब केवल यही देखना बाक़ी है कि राद्दा का हृदय क्या सचमुच इतना हठीला है कि वह हम सबको ऐसा सोचने के लिए मजबूर कर सके। माफ़ करना, मैं इसकी परीक्षा लूँगा।'

"और इससे पहले कि हम कुछ भाँप पाते कि उसका इरादा क्या है, हमने देखा कि राद्दा धरती पर पड़ी है और जोबार का चाकू मूठ तक उसकी छाती में धँसा हुआ है। हमें जैसे काठ मार गया।

"लेकिन राद्दा ने चाकू को खींचकर बाहर निकाला और उसे एक ओर फेंक दिया, अपने काले बालों की एक लट से घाव को ढँका और मुस्कुराते हुए सुस्पष्ट और ज़ोरदार आवाज़ में बोली –

"'अच्छा तो विदा, जोबार। मैं जानती थी कि तुम ऐसा करोगे।' और इन शब्दों के साथ उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

"देखा तुमने, मेरे युवक दोस्त, कि वह कैसी लड़की थी? एकदम शैतान की खाला, ऐसी कि ढूँढ़े न मिले। ओ मेरे भगवान!

"अब मैं तेरे पाँवों की धूल लूँगा, मेरी गर्वीली रानी,' जोबार ने कहा और उसकी तेज़ आवाज़ सुविस्तृत मैदानों में गूँज उठी। फिर, धरती पर गिरकर, मृत राद्दा के पाँवों से उसने अपने होंठ सटा दिए और इसी प्रकार निश्चल पड़ा रहा। हमने अपने सिर नंगे कर लिए और मौन खड़े रहे।

"ऐसे क्षणों में क्या कुछ कहा जा सकता है? नहीं, कुछ नहीं। नूर बड़बड़ाया – 'इसकी मुश्कें कस लो।' लेकिन लोइको को बाँधने के लिए किसी के हाथ नहीं बढ़े। ऐसा एक भी माई का लाल नहीं था, और नूर यह जानता था। सो वह मुड़ा और वहाँ से खिसक गया। दानिलो ने वह चाकू उठाया, जिसे राद्दा ने दूर फेंक दिया था, और कुछ क्षण एकटक

उसे देखता रहा। उसके गलमुच्छे बल खा रहे थे। चाकू के धारदार और टेढ़े फलके पर राद्दा के ख़ून के चिह्न अभी भी मौजूद थे। चाकू हाथ में लिए दानिलो जोबार के पास पहुँचा और उसे उसकी पीठ में – हृदय के निकट भोंक दिया। आख़िर वह – वृद्ध सैनिक दानिलो – राद्दा का पिता ही तो था।

"'जो कसर थी, वह तुमने पूरी कर दी,' दानिलो की ओर मुड़ते हुए जोबार ने कहा, एकदम सुस्पष्ट आवाज़ में, और इसके बाद उसके प्राण-पखेरू भी राद्दा के पास उड़ चले।

"हम वैसे ही खड़े थे और हमारी आँखें उन पर टिकी थीं, सामने, उसी जगह, राद्दा पड़ी थी, बालों की लट को हाथ से अपने सीने पर दबाये। उसकी आँखें पूरी खुली थीं और नीले आकाश की थाह ले रही थीं। वीर लोइको जोबार उसके पाँवों के पास पड़ा था। उसके घुँघराले बालों ने उसके चेहरे को ढककर हमारी नज़रों से ओझल कर दिया था।

"कुछ देर तक हम उसी प्रकार सोच में डूबे खड़े रहे। वृद्ध दानिलो के गलमुच्छे काँप रहे थे और उसकी घनी भौंहें खिंची हुई थीं। उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा और देखता ही रह गया। उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। लेकिन वृद्ध नूर ज़मीन पर पड़ा था और उसका समूचा शरीर सुबकियों के साथ हिल रहा था।

"और यह अकारण नहीं था, मेरे नन्हे बाज़!

"इससे जो सीख मिलती है, वह यह कि किसी भी मोह में पड़कर उस पथ को न छोड़ो, जो कि तुमने अपने लिए चुना है। सीधे आगे बढ़ते जाओ – और तब, शायद, तुम्हें बुरे अन्त का मुँह नहीं देखना पड़ेगा।

"हाँ तो, मेरे नन्हे बाज़, पूरी कहानी मैंने तुम्हें सुना दी।"

इसके बाद मकर चुप हो गया, अपने पाइप को उसने तम्बाकू की थैली में डाला और कोट के पल्ले खींचकर अपनी छाती को ढँक लिया। अब महीन बौछारें पड़ रही थीं और हवा पहले से भी ज़्यादा तेज़ हो गयी थी। लहरें, और भी झुँझलाहट में भरी, सिर धुन रही थीं और उनकी धुँधली गरज सुनायी पड़ रही थी। घोड़े एक-एक करके बुझती हुई आग के पास सिमट आये, अपनी बड़ी-बड़ी संवेदनशील आँखों से उन्होंने हमें देखा और फिर हमारे चारों ओर घेरा बनाकर खड़े हो गये।

"एइहो!" मकर ने उन्हें दुलार से उन्हें पुकारा और जब वह अपने प्रिय

घोड़े कालू की पीठ थपथपा चुका तो उसने मेरी ओर मुड़ते हुए कहा, "अब सोने की जुगत करनी चाहिए।" अपने कौकशी कोट में सिर से पाँव तक अपना समूचा बदन लपेट, वह ज़मीन पर लम्बा पसर गया और निश्चल पड़ा रहा।

मेरी आँखों में नींद नहीं थी। मैं वहीं बैठा स्तेपी के अन्धकार की थाह लेता रहा और मेरी आँखों के सामने राद्दा का – उस गर्वीली, निर्बाध और सुन्दर राद्दा का – चित्र तैरता रहा। बालों की लट हाथ में लिये वह अपने सीने के घाव को उससे ढँके थी और उसकी पीली पड़ी कोमल उँगलियों के बीच से रक्त की बूँदे चूती हुई धरती पर गिरकर अग्निमय चिनगारियों की भाँति छितरा जाती थीं।

और उसके पीछे लोइको जोबार की वीर आकृति तैर रही थी। काले बालों के घुँघराले लच्छे उसके चेहरे पर छाये थे और बालों के नीचे से बड़े-बड़े बर्फ़-से ठण्डे आँसुओं की धारा बह रही थी।

बारिश तेज़ हो गयी और समुद्र इन दो सुन्दर जिप्सियों के – लोइको जोबार और वृद्ध सैनिक दानिलो की लड़की राद्दा के – शोक में गम्भीर निनाद कर रहा था।

और वे दोनों, रात के उस अन्धकार में, एक-दूसरे का पीछा करते बगूले की भाँति लपक रहे थे – एकदम नि:शब्द और अत्यन्त कमनीय, और सुन्दर जोबार – लाख चक्कर काटने और कोशिश करने के बाद भी – गर्वीली राद्दा को पकड़ नहीं पा रहा था।

(1892)

कहानी - नमक की दलदलों में

"नमक बनाने के केन्द्र – साल्ट मार्श – जाओ, मित्र। वहाँ हमेशा काम की भरमार रहती है। हर समय और हर घड़ी, जब भी जाओ, काम मिल जायेगा। असल में वह काम इतना बेहूदा और जानलेवा है कि अधिक दिनों तक वहाँ कोई चिपका नहीं रह सकता। सब भाग आते हैं। बरदाश्त नहीं कर पाते। सो वहाँ जाओ और दो-चार दिन काम करके देखो। फी ठेला सात एक कोपेक मज़दूरी मिलती है। इतने में एक दिन का ख़र्च मजे़ में चल जायेगा।"

यह सलाह देने के बाद उसने – वह एक मछियारा था – ज़मीन पर थूका, सिर उठाकर फिर समुद्र के उस पार क्षितिज की ओर देखा और मन ही मन किसी उदास गीत की धुन गुनगुनाने लगा। मैं उसकी बग़ल में मछियारों के बाड़े की छाँव में बैठा था। वह अपनी कैनवस की पतलून की मरम्मत कर रहा था। रह-रहकर वह जमुहाई लेता और काफ़ी काम न मिलने तथा काम की खोज में दुनिया-भर की धूल छानने के बारे में निराशा भरी बातें बुदबुदाता जाता।

"जब देखो कि अब नहीं सहा जाता तो यहाँ चले आना और ख़ुद आराम करना। बोलो, क्या कहते हो। जगह ज़्यादा दूर भी नहीं है – यहाँ से तीन एक मील होगी। ऊँह, कितना अटपटा है हमारा यह जीवन।"

मैंने उससे विदा ली, सलाह के लिए उसे धन्यवाद दिया और समुद्र के किनारे-किनारे साल्ट मार्श के लिए चल दिया। अगस्त मास की गर्म सुबह थी। आकाश उजला और साफ़ था और समुद्र शान्त तथा सौम्य। हरी लहरें, एक-दूसरे का पीछा करतीं, तट की बालू पर दौड़ रही थीं। उनकी हल्की छलछलाहट उदासी भरी थी। सामने, ख़ूब दूर, नीली धुन्ध के बीच, तट की पीली बालू के ऊपर सफ़ेद पैबन्द-से नज़र आ रहे थे। वह ओचाकोव नगर था। मछियारों की बाड़े को, जो पीछे रह गया था, समुद्र की नीली-हरी आभा से रंगे रेत के उजले पीले टीलों ने निगल लिया था।

बाड़े में, जहाँ मैंने रात बिताई थी, दुनिया-भर की ऐसी-ऐसी

होनी-अनहोनी बातें और कहानियाँ मैंने सुनी थीं कि मेरा जी भारी हो गया था। लहरों की ध्वनि भी जैसे मेरे इस भारीपन का साथ दे रही थीं और उसे और भी घना बना रही थी।

साल्ट मार्श शीघ्र ही दिखायी देने लगा। करीब चार-चार सौ वर्गमीटर के तीन प्लाट थे। नीची मेड़ें और सँकरी खाइयाँ उन्हें एक-दूसरे से अलग करती थीं। ये तीनों प्लाट नमक निकालने की तीन मंजिलों के सूचक थे। पहला प्लाट समुद्र के पानी से भरा था। इस पानी के भाप बनकर उड़ जाने पर गुलाबी झलक लिये पीले-भूरे नमक की एक पतली तह रह जाती थी। दूसरे प्लाट में नमक के दूह जमा किये जाते थे। हाथों में फावड़े लिये स्त्रियाँ, जिनके जिम्मे यह काम था, घुटनों तक काली चमचमाती दलदल में खड़ी थीं। वे आपस में न तो बतिया रही थीं, न ही एक-दूसरे को पुकार रही थीं। केवल उनकी उदास मटमैली आकृतियाँ इस घनी, लोनी और घाव कर देने वाली कास्टिक 'रापा' की पृष्ठभूमि में – लोगों ने इस दलदल का यही नाम रख छोड़ा था – खोयी-सी मुद्रा में हरकत करती नज़र आ रही थीं। तीसरे प्लाट से नमक हटाया जा रहा था। अपने हथठेलों पर झुके, मूक और निश्चेत, मज़दूर कसमसा रहे थे। हथठेलों के पहिये रगड़ खाते और चीं-चरर करते, और ऐसा मालूम होता जैसे यह आवाज़ नंगी मानवीय पीठों की लम्बी पाँत द्वारा ईश्वर के दरबार में भेजी गयी एक शोकपूर्ण अपील हो। और ईश्वर था कि वह धरती पर असहन गर्मी उँड़ेल रहा था जिसने लोनी दलदली घासों और नमक के कणों से युक्त पपड़ी-जमी धरती को झुलसा दिया था। हथठेलों की एकरस चरमर को वेधकर फोरमैन की गहरी आवाज़ सुनायी दे रही थी। वह मज़दूरों पर गालियों की बौछार कर रहा था। मज़दूर आते और अपने ठेलों पर उसके पाँव के पास उँड़ेलकर ख़ाली कर देते। वह एक डोल में से नमक के ढेर पर पानी डालता और इसके बाद उसे एक लम्बे पिरामिड के आकार में जमा देता। वह एक लम्बा आदमी था, अफ़्रीका के लोगों की भाँति काला और नीली तथा सफ़ेद पतलून पहने हुए। उस जगह, जहाँ नमक के एक ढेर पर खड़ा रह अपने हाथ के बेलचे को हवा में हिला रहा था, ठेला-मज़दूरों पर वह बराबर चीख़-चिल्ला रहा था। तख़्तों के ऊपर से वे ठेले खींचकर लाते और वह वहीं से चीख़ उठता –

"ऐ, इसे बायीं ओर ख़ाली करना! बायीं ओर, भालू के बच्चे, बायीं

ओर! चमड़ी उधेड़कर रख दूँगा! क्यों, क्या अपने दीदे फुड़वाने की जी में है? उधर कहाँ जा रहा है, बिच्छु?"

कुत्सा से भरा क़मीज़ के छोर से वह अपने चेहरे का पसीना पोंछता, काँखता और, गालियों की अपनी बौछार को एक मिनट के लिए भी रोके बिना, नमक की सतह को समतल बनाने में जुट जाता। पीठ की ओर से बेलचे को वह उठाता और पूरा ज़ोर लगाकर नमक पर उसे दे मारता। मज़दूर यन्त्रवत अपने ठेलों को खींचकर लाते और उसके फरमान के मुताबिक़ – दाहिनी या बायीं ओर – यन्त्रवत उन्हें ख़ाली कर देते। इसके बाद, खींच-तानकर, वे अपनी कमर सीधी करते और अगला बोझ लाने के लिए वापस लौट पड़ते। डगमगाते डगों से अपने ठेलों को खींचते हुए वे लौटते, घनी काली दलदल में आधे धँसे तख़्ते उनके पाँवों के नीचे डगमगाने लगते। उनके ठेले अब पहले से कम लेकिन अधिक उबा देने वाली आवाज़ करते।

"क्या टाँगें टूट गयी हैं, हरामी पिल्लो?" फोरमैन उनके पीछे चिल्लाता, "तेज़ी दिखाओ, तेज़ी!"

वे उसी दब्बू खामोशी से काम में जुते रहते, लेकिन कभी-कभी धूल और पसीने से चिपचिपाते उनके नि:सत्व चेहरे भीतर ही भीतर गुस्से और असन्तोष से बल खाने लगते। अक्सर ऐसा होता कि कोई एक ठेला तख़्तों पर से फिसलकर दलदल में फँस जाता, आगे वाले ठेले बढ़ जाते, पीछे वाले नहीं बढ़ पाते और मैले-कुचैले तथा गन्दे तलछटी मज़दूर अपने ठेलों को थामे, पथराई-सी आँखों से अपने उस साथी की ओर देखने लगते। ऐसे देखते मानो उनका उससे कोई वास्ता न हो। भारी-भारी ठेले को – छह-सात मन पक्के वजन को – उठाने और उसे फिर से तख़्तों पर रखने में उसका एड़ी-चोटी का पसीना एक हो जाता और वे वैसे ही उदासीन भाव से ताकते रहते।

आकाश में बादलों की परछाईं तक नहीं थी। सूरज आग बरसा रहा था। तपन बढ़ती ही जाती थी। ऐसा मालूम होता था मानो सूरज ने, अपने आपको न्योछावर तथा धरती के साथ अपना गहरा लगाव सिद्ध करने के लिए, ख़ास तौर से आज का ही दिन चुना हो।

यह सब देखने-जाँचने के बाद, काम पाने के लिए मैंने भी अपना भाग्य आजमाने का निश्चय किया। लापरवाही का चोला धारण कर, मैं आगे

बढ़ा और उस तख़्ताबन्दी के पास पहुँचा जिसके ऊपर से मज़दूर अपने ख़ाली ठेलों को खींचते हुए ला रहे थे।

"सलाम साथियो। अच्छी तरह तो हो!"

और उनका रुख देखकर मैं एकदम सकते में आ गया। पहला मज़दूर मज़बूत काठी और सफ़ेद बालों वाला एक बूढ़ा आदमी था। वह अपने पतलून को घुटनों तक और आस्तीनों को कन्धों तक चढ़ाये था, जिनमें से ताँबे के रंग का उसका कड़ियल बदन दिखायी दे रहा था। उसने मेरी आवाज़ सुनी तक नहीं और मेरी ओर ज़रा भी ध्यान दिए बिना सामने से निकल गया। दूसरा मज़दूर सुनहरी बाल और भूरी आँखों वाला एक युवक था। दुश्मन की भाँति घूरकर उसने मुझे देखा, चिढ़कर मुँह बनाया और लुबाव में एक गन्दी गाली देता हुआ आगे बढ़ गया। तीसरे मज़दूर ने – जो प्रत्यक्षत: ग्रीक मालूम होता था क्योंकि उसका रंग तिलचट्टे की भाँति कत्थई और बाल घुँघराले थे – खिन्नता प्रकट की कि क्या करे, उसके हाथ फँसे हैं, अन्यथा मेरी नाक से अपने मुक्के का वह ज़रूर परिचय कराता। उसकी आवाज़ में भी उतनी ही बेरुखी थी, जितनी उसकी इस इच्छा में नहीं थी, जिसे उसने प्रकट किया था। चौथा गला फाड़कर चिल्लाया, "हल्लो, काँच की आँख!" और उसने टँगड़ी मारने की कोशिश की।

अगर मैं ग़लती नहीं करता तो भले समाज में जिसे 'ठण्डा स्वागत' कहते हैं, वह ऐसा ही होता है। इतने ज़ोरदार रूप में जीवन में पहले कभी मेरा उससे वास्ता नहीं पड़ा था। सकपकाहट में, अनजाने ही, मैंने अपना चश्मा उतारकर उसे जेब के हवाले कर दिया, फिर जैसे-तैसे रास्ता निकालता फोरमैन की ओर बढ़ चला – यह जानने के लिए कि मुझे भी काम मिल सकता है या नहीं। मैं उसके पास पहुँचा भी नहीं था कि वह दूर से ही चिल्लाया –

"ऐ, तुम क्या चाहते हो? क्या काम की तलाश है?"

मैंने अपनी रजामन्दी जता दी।

"क्या तुमने कभी ठेला खींचने का काम किया है?"

मैंने बताया कि मलबा ढोने का काम कर चुका हूँ।

"मलबा? उसकी कौन गिनती। मलबा एकदम दूसरी चीज़ है। हम यहाँ नमक ढोते हैं, मलबा नहीं। जहन्नुम का रास्ता नापो, वहीं तुम्हें काम

मिलेगा। ऐ अष्टावक्र, यह ठेला ठीक यहाँ, मेरे पाँव के पास, ख़ाली करना!"

और अष्टावक्र ने, जो कि एक ठस, लटकती हुई मूँछों और मुँहासों से लाल नाक वाला आदमी था और डील-डौल में पूरा भीम मालूम होता था, ज़ोरों से गुर्राते हुए अपना ठेला ख़ाली कर दिया। नमक बाहर आ गिरा। अष्टावक्र ने कोसा, फोरमैन ने कोसने में उसे और भी मात किया, दोनों एक-दूसरे की सराहना में मुस्कुराये और फिर मेरी ओर मुख़ातिब हुए।

"हाँ, तो तुम क्या चाहते हो?" फोरमैन ने पूछा।

"शायद साग-भाजी में डालने के लिए नमक की बुकनी लेने आये हो, क्यों, ठीक है न, कत्साप*?" फोरमैन की ओर आँख मारते हुए अष्टावक्र ने कहा।

मैंने फोरमैन से काम देने के लिए विनती की, उसे विश्वास दिलाया कि मैं जल्दी ही काम का आदी हो जाऊँगा और अन्य किसी से पीछे नहीं रहूँगा।

"आदी होने से पहले ही तुम्हारी कमर टूट जायेगी। लेकिन मेरी बला, तुम अभी जुट जाओ। पर यह समझ लो, पहले दिन पचास कोपेक से ज़्यादा नहीं दूँगा। ऐ, इसे एक ठेला दे दो!"

जाने कहाँ से एक अध-नंगा लड़का प्रकट हो गया। उसकी उधड़ी हुई टाँगें घुटनों तक चिथड़ों में लिपटी थीं।

"मेरे साथ आओ", सन्देह भरी नज़र से मुझे देखने के बाद वह बुदबुदाया।

मैं उसके साथ चल दिया और उस जगह पहुँचा, जहाँ एक के ऊपर एक ठेलों का अम्बार लगा था। मैं अपने लिए एक सबसे हल्का ठेला खोजने लगा। लड़का वहीं खड़ा अपनी टाँगें खुजला रहा था और मेरी ओर देख रहा था।

जब मेरी पसन्द का ठेला मिल गया तो उसने कहा, "वाह, तुमने भी क्या ठेला चुना है। तुमने यह तक नहीं देखा कि इसका पहिया टेढ़ा है?" – यह कह वह वहाँ से दूर खिसक गया और ज़मीन पर लेटकर बदन सीध करने लगा।

मैंने दूसरा ठेला छाँट लिया और अन्य मज़दूरों के साथ जा मिला जो नमक लादने जा रहे थे। लेकिन मेरा जी एक अजीब बेचैनी से दबा था,

जो मुझे अपने अन्य साथी मज़दूरों के साथ घुलने-मिलने से रोक रहा था। उन सबके चेहरे एक बहुत ही सुनिश्चित लेकिन अप्रकट ऊब और झुँझलाहट से भरे थे। थकान ने उन्हें चूर-चूर कर दिया था और वे बुरी तरह खार खाये थे – वे नाराज़ थे उस सूरज से, जो इतनी बेरहमी से उनकी चमड़ी को झुलसा रहा था, वे नाराज़ थे उन तख़्तों से जो उनके ठेलों के नीचे डगमग डोलते थे, और वे नाराज़ थे 'रापा' से – उस कुत्सित दलदल से, जो घनी, खारी और उन तेज़ बाणों से भरपूर थी, जो उनके पाँवों को छेद डालते थे और घावों के भीतर घुसकर इस हद तक उन्हें काटते थे कि वे रिसते हुए नासूर बन जाते थे। गरज यह कि वे नाराज़ थे हर उस चीज़ से, जो उनके इर्द-गिर्द मौजूद थी और जिससे उनका वास्ता पड़ता था। यह नाराज़गी दिखायी देती थी उनकी उन प्रकट नज़रों में, जो कि कभी-कदास वे एक-दूसरे पर डालते थे, और गालियों की उस बौछार में, जो कि जब-तब उनके सूखे गलों से निकलती रहती थी। मेरी ओर किसी ने ध्यान तक नहीं दिया। लेकिन जब हमने प्लाट में पाँव रखा और तख़्ताबन्दी पर से नमक के ढूहों की ओर चले तब अचानक अपनी टाँगों के पिछले हिस्से में एक प्रहार का मैंने अनुभव किया और मुड़ते ही निम्न शब्दों की फुँकार मुझे सुनायी दी –

"औघड़, डग तक नहीं उठते!"

और मैं, सकपकाकर, तेज़ी से डग उठाने लगा। इसके बाद, ठेले को खड़ा कर, फावड़े से मैं उसमें नमक भरने लगा।

"ऐ, पूरी तरह भर!" उक्रइन के उस भीमकाय अष्टावक्र ने कहा, जो मेरे पास ही खड़ा था।

मैंने ठेले पर नमक का भरपूर ढेर लगा दिया। तभी पीछे वाले कामगारों ने अपने आगे वालों से कहा, "रुको नहीं, बढ़े चलो।" आगे वालों ने थूककर अपनी हथेलियों पर मसला, ज़ोरों से काँखकर अपने ठेलों को उठाया और एकदम दोहरे होकर अपनी गरदनों को आगे की ओर ताने हुए – मानो ऐसा करने से बोझ कुछ हल्का हो जायेगा – ठेलों को खींचते हुए वे बढ़ चले।

उनके तरीक़ों की नक़ल करते हुए अपनी सकत के मुताबिक़ मैं भी एकदम दोहरा हो गया और आगे की ओर ज़ोर लगाने लगा। ठेला खिसक चला। पहिये चरमराये, मेरे गले की हड्डी लगी कि तड़कना चाहती है

और मेरी बाँहों के पुट्ठे खिंचाव के मारे लरज उठे। लड़खड़ाता-सा एक डग मैंने भरा, फिर दूसरा भरा – कभी दाहिनी ओर धकिया दिया जाता और कभी बायीं ओर, धचकोले खाता निकल चला – ठेले का पहिया तख़्तों से नीचे उतर गया और उसके साथ-साथ मैं भी औंधे मुँह दलदल में जा गिरा। ठेले का हत्था शान के साथ मेरे सिर से टकराया और इसके बाद, धीर गति से, ऊपर का हिस्सा नीचे और नीचे का हिस्सा ऊपर हो ठेला उलट गया। कान-बेधी सीटियों, चीख़-चिल्लाहटों और हँसी की आवाज़ों ने – जो कि मुझे गिरता देख फूट पड़ी थीं – घनी और गर्म कीचड़ में जैसे मुझे और भी अधिक लथेड़ दिया और उस समय, जबकि मैं दलदल में फँसे ठेले को उठाने की बेकार कोशिश में लथपथ हो रहा था, मुझे अपने सीने में एक पैने दर्द का अनुभव हुआ।

"ज़रा अपने हाथ का सहारा तो दो, मित्र!" मैंने उक्रइनी से कहा जो मेरे पास ही खड़ा था और अपने दोनों बाज़ुओं को पकड़े हँसी के मारे दोहरा हुआ जा रहा था।

"एइयू, कीचड़-सोख हरामी! औंधे मुँह जा गिरा न? इसे फिर तख़्ताबन्दी पर ले आ। बायें बाज़ू नीचे की ओर धकेल। तक, तक! यह 'रापा' दलदल तुझे निगल जायेगी, अगर सावधानी न बरती तो!" यह कह वह फिर हँसने लगा, यहाँ तक कि उसकी आँखों में आँसू आ गये और दोनों बाज़ू पकड़े, हाँफने लगा।

सफ़ेद बालों वाले वृद्ध ने, जो मेरे आगे था, मेरी ओर देखा और हवा में अपना हाथ हिलाकर मुझे दफा कर दिया।

"आख़िर तख़्ताबन्दी क्या इसे काटती थी, जो कीचड़ में कूद पड़ा?" उसने कहा और गुस्से में काँखता अपने ठेले के साथ आगे बढ़ गया।

जो आगे थे वे नहीं रुके, जो पीछे थे वे भौंहें सिकोड़े मुझे अपने ठेले से जूझते और उसे निकालने का प्रयत्न करते देखते रहे। कीचड़ और पसीना मेरे बदन से चू रहा था। मेरी मदद के लिए कोई आगे नहीं बढ़ा। नमक के ढेर से फोरमैन की आवाज़ आ रही थी –

"शैतान के बच्चो, क्या वहीं जाम हो गये? एइयू कुत्तो, सूअर के बच्चो! आँख बची नहीं कि हरामीपन करने लगे। रुको नहीं, आगे बढ़ो। ख़ुदा तुम्हें गारत करे!"

"ऐ, रास्ता दो," मेरे पीछे से उक्रइनी भौंक उठा और अपने ठेले का

हत्था करीब-करीब मेरे सिर से टकराता खटाक से निकल गया।

फकत दम, अकेले अपने ही बूते पर, जैसे-तैसे कर मैंने ठेले को बाहर निकाला, और चूँकि ठेला अब ख़ाली और बुरी तरह कीचड़ में सना था, इसलिए मैं उसे प्लाट से बाहर ले भागा ताकि उसके बदले कोई दूसरा ठेला ले सकूँ।

"तुम्हारा यह ठेला तो उड़न-खटोला निकला। कोई बात नहीं, शुरू में सभी के साथ ऐसा होता है, मित्र!"

मैंने अपने चारों ओर नज़र डाली और करीब बीस साल का एक लड़का मुझे दिखायी दिया। वह नमक के दूह के पास, कीचड़ में बिछे एक तख़्ते पर पड़ा था और अपनी हाथ की हथेली को चूस रहा था। मुझे देखकर उसने अपनी गरदन हिलायी। उसकी आँखों में, जो उँगलियों के बीच से झाँक रही थीं, सहृदयता और मुस्कुराहट की चमक थी।

"सो कुछ नहीं," मैंने कहा, "शीघ्र ही मैं भी सब सीख जाऊँगा लेकिन यह तुम्हारे हाथ में क्या हो गया है?"

"यों ही एक मामूली-सी खरोंच थी, लेकिन नमक उसे काटता जाता है। सो नमक को चूसकर बाहर निकाल रहा हूँ। अगर ऐसा न करूँ तो धन्धे से हाथ धोना पड़े – यह हाथ बिल्कुल बेकार हो जाये। लेकिन अच्छा हो कि तुम अपने काम पर लौट जाओ। इस बात का मौक़ा ही क्यों दो कि फोरमैन तुम पर चिल्लाना शुरू कर दे?"

मैं अपने काम पर पहुँच गया। दूसरी ढोवाई में कोई दुर्घटना नहीं हुई। तीसरी, फिर चौथी और इसके बाद दो बार मैंने ढोवाई की। किसी ने मेरी ओर नज़र तक उठाकर नहीं देखा और इस उपेक्षा के प्रति – आमतौर से जो कि एक अखरनेवाली चीज़ होती है – गहरी कृतज्ञता का मैंने अनुभव किया।

"चलो, खाने का समय हो गया," किसी ने चिल्लाकर कहा।

लोगों ने आराम की साँस ली और खाना खाने चल दिये, लेकिन उत्साह की तब भी उनमें कोई झलक नहीं थी, विश्राम का अवसर पाकर भी वे खुशी से नहीं छलछलाये। उनके हर काम में, जो कुछ भी वे करते थे, एक अनमनापन झलकता था, दबा हुआ गुस्सा और असन्तोष दिखायी देता था। ऐसा मालूम होता था कि विश्राम में इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो श्रम द्वारा झँझोड़ी गयी उनकी हड्डियों और गर्मी से नि:सत्व उनकी

मांस-पेशियों में आनन्द का संचार कर सके। मेरी पीठ दर्द कर रही थी, मेरी टाँगों और कन्धों का भी यही हाल था, लेकिन मैंने कोशिश की कि यह बात जाहिर न होने पाये और फुर्ती से डग भरता शोरबे के देग के पास पहुँच गया।

"ऐ, इधर कहाँ चढ़े चले आते हो?" एक बूढ़े मज़दूर ने, जो एकदम वहशी मालूम होता था, टोका। वह नीले रंग का फटा पुराना ब्लाउज पहने था। उसका चेहरा भी, नशा करने की वजह से, उसके ब्लाउज की भाँति नीला मालूम होता था। और उसकी छप्परनुमा भारी भौहों के नीचे – जो सदा चढ़ी रहती थीं – उसकी भयानक और उपहासपूर्ण आँखें अंगारों की भाँति चमक रही थीं।

"ऐ, वहीं खड़े रहो। तुम्हारा नाम क्या है?"

मैंने उसे बता दिया।

"यह बात है। बड़ा मूर्ख था तुम्हारा पिता, जो उसने तुम्हारा यह नाम रखा। मक्सिमों को पहले दिन शोरबे के देग के पास नहीं फटकने दिया जाता, समझे! मक्सिम पहले दिन अपने ही भोजन पर गुज़र करते हैं। अगर तुम्हारा नाम इवान या ऐसा ही कुछ और होता तो कोई बात नहीं थी। मिसाल के तौर पर मुझे लो। मेरा नाम मात्वेई है, इसलिए मुझे खाना मिलेगा। लेकिन मक्सिम नहीं पा सकता। वह केवल मुझे खाते हुए देख सकता है। सो देग के पास से दफा हो जाओ।"

अचरज में भरकर मैंने उसे देखा, फिर वहाँ से हटकर दूर ज़मीन पर बैठ गया। इस व्यवहार ने मुझे स्तब्ध कर दिया। जीवन में पहले कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ था और निश्चय ही ऐसा कोई काम मैंने नहीं किया था, जिसके बदले में मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया जाता। इससे पहले भी बीसियों बार मज़दूरों की टुकड़ियों के साथ उठने-बैठने का मुझे मौक़ा मिला था और हमारे सम्बन्ध शुरू से ही हमेशा सीधे-सादे और बिरादाराना होते थे। यहाँ का समूचा व्यवहार कुछ इतना अजीब था कि बावजूद उस अपमान और चोट के, जो कि मुझे पहुँची थी, उत्सुकता ने मुझे घेर लिया। मैंने इरादा किया कि इस भेद का पता लगाऊँगा। यह निश्चय कर लेने के बाद प्रत्यक्षत: मैं शान्त भाव से उन्हें खाना खाते देखता और काम पर लौटने की बाट जोहता रहा। यह मालूम करना आवश्यक था कि उन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया।

आख़िर उनका खाना ख़त्म हुआ, डकार लेना ख़त्म हुआ और देग से दूर हट वे धूम्रपान करने लगे। उक्रइनी भीम और वह लड़का, जिसके पावों में पट्टियाँ बँधी थीं, मेरे सामने आकर बैठ गये। ठेलों की पाँत का वह दृश्य, जिन्हें हम तख़्ताबन्दी कर छोड़ आये थे, उनकी ओट के कारण अब मेरी आँखों से ओझल हो गया था।

"कहो, मित्र, धूम्रपान करोगे?" उक्रइनी भीम ने पूछा।

"धन्यवाद, कर सकता हूँ," मैंने जवाब दिया।

"क्या तुम्हारे पास अपना तम्बाकू नहीं है?"

"अगर होता तो आपसे क्यों लेता?"

"ठीक कहते हो। यह लो," और उसने मुझे अपना पाइप दे दिया, "काम से भागोगे तो नहीं? बोलो – क्या इरादा है।"

"हाँ जब तक बनेगा करूँगा।"

"ठीक। तुम कहाँ के रहने वाले हो?"

मैंने उसे बता दिया।

"क्या यह जगह यहाँ से बहुत दूर है?"

"करीब ढाई हज़ार मील दूर होगी।"

"ओह, यह काफ़ी दूर है। तुम यहाँ किस फेर में चले आये?"

"उसी फेर में, जिसमें कि तुम यहाँ आये।"

"सो गाँव वालों ने तुम्हें भी इसलिए गाँव से खदेड़ दिया कि तुम चोरी करते थे, क्यों?"

"ऐ, क्या कहा आपने?" यह अनुभव कर कि वह मुझे अपनी लपेट में ले रहा है, मैंने उससे पूछा।

"मैं यहाँ इसलिए आया था कि चोरी करने पर मुझे गाँव से खदेड़ दिया गया, और तुमने बताया कि तुम्हारे यहाँ आने का कारण भी वही है, जो कि मेरे आने का" यह कहकर वह ज़ोरों से खिलखिलाकर हँसा। वह प्रसन्न था कि उसने मुझे ख़ूब पकड़ा।

उसके साथी ने कुछ नहीं कहा। उसने केवल कनखियों से उसे देखा और शैतानी के साथ मुस्कुरा दिया।

"ज़रा रुको..." मैंने कहना चाहा।

"रुकने का समय नहीं है, मित्र। काम पर वापिस जाना है। चलो, तुम भी चलो। तुम मेरा वाला ठेला ले लेना और ठीक मेरे पीछे ही लग जाना।

मेरा ठेला अच्छा है। भरोसे की चीज़। चलो, अब चलें।"

और वह चल दिया। जब मैं उसका ठेला उठाने लगा तो उसने तुरन्त टोका, "ठहरो, मैं ख़ुद इसे ले चलूँगा। तुम अपना ठेला मुझे दे दो। अपना ठेला मैं उस पर रख दूँगा और इस प्रकार उसे चड्डी खिलाता ले चलूँगा। अच्छा है, कुछ देर वह भी आराम कर ले।"

उसकी यह बात सुन मेरे हृदय में सन्देह ने सिर उभारा। मैं उसके साथ-साथ चल रहा था और लगे हाथ उसके ठेले का भी जायज़ा लेता जाता था, जो औंधकर मेरे ठेले में रखा था। मैं यह निश्चय करना चाहता था कि मेरे साथ कहीं कोई चाल तो नहीं चली जा रही। लेकिन मुझे कोई ऐसी चीज़ नज़र नहीं आयी, सिवा इसके कि एकाएक मैं सबके आकर्षण का केन्द्र बन गया हूँ। इसे छिपाने की कोशिश की जा रही थी, लेकिन रह-रहकर कनखियों से मेरी ओर देखना, गरदनें हिलाकर इशारे करना और वह सारी फुसफुसाहट, जो चल रही थी, मुझसे छिपी नहीं थी। यह मैं जानता था कि मुझे ख़ूब चौकस रहना होगा। कारण कि अब तक जो कुछ हो चुका था, उसके आधार पर अन्दाज़ लगाया जा सकता था कि जो नया जाल अब बिछाया जा रहा है, वह अत्यन्त मौलिक होगा।

"यह लो, हम आ गये," मेरे ठेले में से अपना ठेला उठाते और उसे मेरी ओर धकेलते हुए उक्रइनी भीम ने कहा, "इसमें नमक लाद लो।"

मैंने चारों ओर देखा। सभी अपने काम में बुरी तरह डूबे थे। सो मैं भी नमक लादने लगा। नमक के बेलचे पर से गिरने की सरसराहट के सिवा अन्य कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। यह निस्स्तब्धता मुझे बड़ी बोझिल मालूम हुई। मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि यहाँ से चल देने में ही भलाई है।

"हद हो गयी। क्या तुम लोग ऊँघ रहे हो? आगे क्यों नहीं बढ़ते?" नीले चेहरे वाले मात्वेई ने फ़रमान जारी किया।

मैंने ठेले के हत्थों को पकड़ा और भारी ज़ोर लगाकर उसे धकेलने लगा। तभी पैने दर्द से मैं चीख़ उठा और ठेला मेरे हाथों से छूट गया। इससे और भी ज़्यादा, पहले से भी बदतर, दर्द हुआ। मेरे दोनों हाथों की खाल छिल गयी। दर्द और गुस्से से दाँतों को भींचकर मैंने ठेले के हत्थों की जाँच की और देखा कि उनके बाहरी सिरों को चीरकर दरारों को खुला रखने के लिए उनमें लकड़ी-खपचियाँ खोंसी हुई हैं। यह सब इतनी

होशियारी से किया गया था कि उसे आसानी से पकड़ना मुश्किल था। और सोचा यह गया था कि जब मैं हत्थों को मज़बूती से पकड़ूँगा तो खपचियाँ छिटककर निकल जायेंगी और मेरी खाल हत्थों की दरारों की पकड़ में आ जायेंगी। ऐसा ही हुआ भी। सिर उठाकर मैंने अपने इर्द-गिर्द देखा। चीख़ों आवाज़कशी और उपहास का एक तमाचा-सा मेरे मुँह पर पड़ा। भोंड़ी और कुत्सित मुस्कुराहट से सबके चेहरे रंगे थे। नमक के ढेर से फोरमैन की भद्दी गालियों की बौछार आ रही थी, जिसका उन पर कोई असर नहीं हो रहा था – इस हद तक मेरा तमाशा देखने में वे डूबे थे। सूनी और चकरायी-सी आँखों से मैंने अपने चारों ओर देखा। लेकिन इस बात का मुझे चेत था कि मेरा हृदय, भीतर ही भीतर, अपमान की भावना और इन लोगों के प्रति घृणा और बदला लेने की इच्छा से उमड़-घुमड़ रहा है। वे मेरे सामने जमघट लगाये थे। वे हँस रहे थे और गन्दगी की बौछार कर रहे थे, और मैं बुरी तरह – मर्मान्तक रूप में – उन्हें नीचा दिखाने और पाँव तले रौंदने के लिए छटपटा रहा था।

"वहशी," मैं चीख़ा, मुक्का तानकर उनकी ओर लपकता और वैसी ही कुत्सित गालियाँ उन्हें देता हुआ, जैसी कि वे मुझे दे रहे थे।

जमघट में एक कँपकँपी-सी दौड़ गयी और सकपकाकर वे पीछे हट गये। लेकिन उक्रइनी और नीले चेहरे वाला मात्वेई अपनी जगह से नहीं डिगे और चुपचाप अपनी आस्तीनें चढ़ाने लगे।

"अच्छा तो आओ, दो-दो हाथ हो जायें," उक्रइनी चटखारे लेते हुए बुदबुदाया और अपनी आँखें बराबर मुझ पर जमाये रहा।

"क्या देखते हो, गावरीला, आज इसे चौक चाँदनी की सैर करा दो," मात्वेई ने उसे उकसाया।

"तुमने मेरे साथ ऐसी हरकत क्यों की?" मैंने चिल्लाकर कहा, "मैंने आख़िर तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? क्या मैं भी तुम सब लोगों की तरह आदमी नहीं हूँ?"

ये तथा इसी तरह के अन्य कितने ही बेमानी, बेहूदा और ऊटपटाँग शब्द मैंने दागे। गुस्से से मेरा सारा बदन काँप रहा था। साथ ही इस बारे में भी मैं ख़ूब चौकस और चौकन्ना था कि वे मेरे साथ और कोई नयी हरकत न कर बैठें।

लेकिन बेजान चेहरे, जो मेरी ओर मुड़े थे, अब सहानुभूति, संवेदन से

एकदम शून्य नहीं थे और उनमें से कुछ तो करीब-करीब अपराधी जैसा भाव धारण किये थे, यहाँ तक कि मात्वेई और उक्रइनी भी सकपकाकर एक या दो डग पीछे हट गये। मात्वेई अपने ब्लाउज को नोच रहा था और उक्रइनी अपनी जेबों में डुबकी लगा रहा था।

"आख़िर क्यों और किसलिए तुमने यह हरकत की?" मैंने फिर बल देकर कहा।

वे कोरी चुप्पी साधे थे। उक्रइनी एक सिगरेट से खेल कर रहा था और उसकी आँखें ज़मीन में गड़ी थीं। मात्वेई वहाँ से खिसक गया और दूर, अन्य सबसे पीछे, चला गया। बाक़ी सब, उदास भाव से चुपचाप सिर खुजलाते, अपने-अपने ठेलों पर वापिस पहुँच गये। चीख़ता-चिल्लाता और अपना मुक्का हिलाता आख़िर फोरमैन भी वहाँ आ धमका। यह सब इतनी तुर्ता फुर्ती में हो गया कि नमक रोलने का काम करने वाली स्त्रियाँ जिन्होंने मेरी चीख़ सुनकर अपना काम रोक दिया था, केवल तब हमारे पास आ पहुँची, जबकि मज़दूर अपने ठेलों पर वापिस जा चुके थे। इस तीखी भावना से कुड़मुड़ाता कि एक तो मेरा बिला वजह अपमान हुआ और दूसरे बदला भी नहीं ले सका, मैं वहाँ अकेला ही खड़ा रह गया। यह और भी दुस्सह था। मैं अपने सवाल का जवाब चाहता था, मैं बदला चाहता था इसलिए मैं चिल्लाया –

"ज़रा ठहरो, साथियो।"

"वे ठहर गये और भन्नाये चेहरों से मेरी ओर देखने लगे।

"बोलो, तुम मुझे क्यों इतना सताते हो? क्या तुम्हारी आत्मा एकदम मर गयी है?"

वे अब भी चुप थे। और यह चुप्पी ही उनका जवाब थी। मैं अब अधिक स्वस्थ चित्त था, सो उनसे बातें शुरू कीं। मैंने कहना शुरू किया कि देखो, मैं भी तुम्हारी ही भाँति आदमी हूँ, और यह कि तुम्हारी ही तरह मेरे भी पेट है, इसलिए मुझे भी काम करना पड़ता है, और यह कि मैं बराबर की हैसियत से तुम्हारे साथ शामिल हुआ था, क्योंकि हम सबके भाग्य एक ही डोरे से गुँथा है, और यह कि मैं तुम्हें नीचा या अपने आपको तुमसे बड़ा नहीं समझता।

"हम सब बराबर हैं," मैंने कहा, "और हमें एक-दूसरे को समझना तथा, जैसे भी हो, एक-दूसरे की मदद करना चाहिए।"

वे वहीं, अपनी-अपनी जगह पर खड़े, ध्यान से सुन रहे थे, लेकिन नज़र बचाते हुए। मैंने देखा कि मेरे शब्दों का उन पर असर हो रहा है, और इस तथ्य ने मुझे बढ़ावा दिया। उन्हें एक नज़र देखने से ही मुझे उसका विश्वास हो गया। एक तीखे और उज्ज्वल आनन्द से मैं छलछला उठा और नमक के एक ढेर पर गिरकर मैंने ख़ूब आँसू बहाये। जो भी होता, ऐसा ही करता, करता न?

जब मैंने सिर उठाया तो देखा, सिवा मेरे वहाँ और कोई नहीं है। दिन का काम ख़त्म हो चुका था और मज़दूर, पाँच-पाँच या छह-छह टुकड़ियों में, नमक के ढेर के पास बैठे थे। सूरज की किरणों से रंजित नमक की गुलाबी पृष्ठभूमि में उनकी आकृतियाँ काले धब्बों की भाँति मालूम होती थीं। अटूट सन्नाटा छाया था। समुद्री हवा के झोंके आ रहे थे। सफ़ेद बादल का एक छोटा-सा टुकड़ा धीरे-धीरे आकाश में तैर रहा था। धुन्ध के छोटे-छोटे गाले उससे टूटते थे और नीले विस्तार में घुल जाते थे। हर चीज़ गहरी उदासी का संचार कर रही थी...

मैं उठ खड़ा हुआ और नमक के ढेर की ओर चल दिया। यहाँ से विदा ले मछियारों के बाड़े में जाने का मेरा निश्चय पक्का हो चुका था। मुझे निकट आता देख मात्वेई, उक्रइनी भीम और मझोली आयु तथा मोटी गरदन के तीन अन्य मज़दूर उठे और मेरी ओर बढ़ आये। इससे पहले कि मैं मुँह खोल पाता, मात्वेई ने अपना हाथ बढ़ाया और, बिना मेरी ओर देखे, बोला –

"सुनो, साथी, तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं। अच्छा हो कि तुम गोल हो जाओ। तुम्हारी मदद के लिए हमने एक छोटी-सी रकम जमा की है। यह लो।"

उसकी हथेली पर ताँबे के कुछ सिक्के पड़े थे। उसका हाथ, जो मेरी ओर फैला था, काँप रहा था। यह सब इतना अनहोना था कि मैं केवल उनकी ओर ताकता ही रह गया। वे खड़े थे – सिर लटकाये, चुपचाप, औघड़पन के साथ अपनी टाँगों को खींचते, इस पाँव का बोझ उस पाँव पर डालते, छिपी नज़रों से इधर-उधर की थाह लेते, अपने कंधें को झटकते – उनकी प्रत्येक हरकत बेहद अनमनी और, जहाँ तक हो सके, जल्दी मुझसे छुटकारा पाने की इच्छा प्रकट कर रही थी।

"नहीं, मैं यह नहीं लूँगा," मात्वेई के हाथ को दूर हटाते हुए मैंने कहा।

"बात मानो, हमें अपमानित न करो। हम वास्तव में कुछ इतने बुरे नहीं हैं। हम जानते हैं कि हमने तुम्हारी भावनाओं को चोट पहुँचायी, लेकिन अगर तुम ज़रा सोचकर देखो तो इसके लिए क्या हम सचमुच दोषी हैं? नहीं, हम दोषी नहीं हैं। इसके लिए जीवन का वह ढंग ज़िम्मेदार है, जो कि हमें बिताना पड़ता है। किस तरह का जीवन हम बिताते हैं? कुत्ते का जीवन। छह-सात मनिया ठेले, पाँवों को चाट जाने वाली 'रापा' दलदल, दिन-भर पीठ की चमड़ी झुलसाने वाली धूप, और – पचास कोपेक प्रतिदिन। यह हर आदमी को जानवर बना देने के लिए काफ़ी है। काम, काम, काम, पगार को ठर्रे में उड़ा दो और फिर काम में जुट जाओ। आदि भी यही और अन्त भी यही। पाँच साल तक ऐसा जीवन बिताओ और फिर देखो – कुछ भी मानवीय नहीं रहेगा, निरे जानवर तुम हो जाओगे – और बस। सुनो, साथी, तुम्हारे साथ तो हमने कुछ भी नहीं किया, जो कि हम एक-दूसरे के साथ करते हैं, बावजूद इसके कि हम – जैसे कि कहा जाता है पुराने यार हैं और तुम एकदम नये आये हो। तुममें क्या सुर्ख़ाब के पर लगे हैं, जो तुम्हारे साथ हम रियायत करते? समझ गये न? तुमने जो बातें हमें कहीं – हाँ, तो क्या हम अचार डालें उनका? यों तुमने जो कुछ कहा, ठीक कहा, वह सब सच है – लेकिन वह हम पर फिट नहीं बैठता। तुम्हें इतना बुरा नहीं मानना चाहिए। हम तो केवल मज़ाक़ कर रहे थे। आख़िर हमारे पास भी तो हृदय है। लेकिन अच्छा यही है कि तुम गोल हो जाओ। तुम्हारा रास्ता और है, हमारा और। हमारी यह छोटी-सी भेंट सँभालो और विदा हो जाओ। हमने तुम्हारे साथ कोई अन्याय नहीं किया, न ही तुमने हमारे साथ कोई अन्याय किया। यह सच है कि मामला कुछ गड़बड़ा गया, लेकिन इसके सिवा तुम और क्या आशा करते थे? यहाँ एक भी चीज़ हमारे हक़ में कभी भी सीधी नहीं बैठती। और तुम्हारे यहाँ बने रहने में कोई तुक भी नहीं है। असल बात यह है कि तुम यहाँ फिट नहीं बैठते। हम एक-दूसरे के आदी हो गये हैं, और तुम-तुम हमारी जात के नहीं हो। यहाँ रहने से कुछ भला नहीं होगा। सो तुम रास्ता नापो। तुम अपनी राह जाओ। अच्छा तो विदा!"

मैंने उन सब पर नज़र डाली। स्पष्ट ही वे सब मात्वेई से सहमत थे। सो मैंने अपना थैला कन्धे पर डाला और विदा होने ही वाला था कि तभी, मेरे कन्धे पर अपना हाथ रखते हुए, उक्रइनी भीम ने कहा –

"ज़रा ठहरो, एक दो शब्द मैं भी कहना चाहता हूँ। तुम्हारे सिवा अगर कोई और होता तो बतौर निशानी मैं उसका जबड़ा ढीला कर देता। लेकिन हममें से कोई भी तुम्हारा बाल तक बाँका करने के लिए तैयार नहीं है। उलटे हम तुम्हें भेंट दे रहे हैं। इसके लिए तुम हमारे शुक्रगुज़ार तक हो सकते हो।"

यह कह उसने ज़मीन पर थूका और तम्बाकू के अपने बटुवे को घुमाने लगा, कुछ इस अन्दाज़ में, मानो कह रहा हो, "देखा, मैं कितना चतुर हूँ।"

इस सबसे ग्रस्त, मेरे लिए एक क्षण भी रुकना असम्भव हो गया। जल्दी से मैंने विदा ली और एक बार फिर, समुद्र के किनारे-किनारे, चल दिया – मछियारों के उसी बाड़े की ओर, जहाँ मैंने रात बिताई थी। आसमान साफ़ और तप्त था, समुद्र रीता और शानदार। छोटी-छोटी हरी लहरें छलछलाती हुई तट को पखार रही थीं। जाने क्यों, मैं बेहद दुखी और लज्जित था। गर्म रेत पर भारी डग उठाता धीरे-धीरे चल रहा था। समुद्र शान्त भाव से धूप में चमक रहा था, लहरों की ध्वनि उदास और अनबूझ भावों का संचार कर रही थी...

जब मैं मछियारों के बाड़े में पहुँचा तो मेरी जान-पहचान वाला मछियारा आगे बढ़ आया।

"क्यों, पसन्द नहीं आया न, वह नमक?" उसने कहा, सन्तोष की एक ऐसी भावना के साथ, जो अपनी भविष्यवाणियों के सदा सच सिद्ध होने पर प्रकट होती है।

मैंने, एक शब्द भी कहे बिना, उसकी ओर देखा।

"नमक, और मात्रा से अधिक!" उसने दृढ़ता से कहा, "भूखे हो? जाओ और थोड़ा दलिया पेट में डाल लो। कमबख़्तों ने जाने किस फिराक में इतना अधिक बना डाला, आधा बच गया है। जाओ और मज़े से चमचा चलाओ। बहुत बढ़िया दलिया है, "फ्लाण्डर और स्टर्जन मछली डालकर राँधा हुआ।"

इसके दो एक मिनट बाद बहुत ही गन्दा, बहुत ही थका और बहुत ही भूखा बाड़े के बाहर छाँव में बैठा मैं फ्लाण्डर और स्टर्जन मिली दलिया निरानन्द गले के नीचे उतार रहा था।

(1893)

कहानी - दादा आर्खिप और ल्योंका

नाव का इन्तज़ार करते हुए वे दोनों एकदम खड़ी चढ़ाई वाले तट के साये में लेट गये और कुबान की तेज़, गन्दी-मटमैली लहरों को देर तक देखते रहे जो उनके पैरों को धोती हुई गुज़र रही थीं। ल्योंका ने इस बीच झपकी मार ली, लेकिन छाती में लगातार मद्धम और दबाव-सा देते हुए दर्द के अहसास के चलते दादा आर्खिप सो नहीं सका। धरती की गहरी-भूरी पृष्ठभूमि में उनकी जर्जर, झुकी हुई आकृतियाँ दो दयनीय ढेरियों के समान प्रतीत हो रही थीं, एक – थोड़ी बड़ी, और दूसरी – थोड़ी छोटी; उनके थके-माँदे, धूप में झुलसे और धूल-सने चेहरों का रंग भी हू-ब-हू वही था जो उनके भूरापन लिये हुए चिथड़ों का।

दादा आर्खिप का लम्बा, हड़ियल शरीर बालू की इस तंग पट्टी पर पसरा हुआ था जो खड़ी चढ़ाई वाले तट और नदी के बीच, किनारे-किनारे एक पीले रिबन की तरह फैली थी। झपकी मारता ल्योंका बूढ़े के बाज़ू में गुड़ी-मुड़ी पड़ा हुआ था। ल्योंका छोटा और कमज़ोर था। अपने चीथड़ों में लिपटा ल्योंका और उसके दादा को देखकर लग रहा था जैसे एक गाँठदार टहनी उस पुराने सूखे पेड़ से टूटकर अलग हो गयी हो जिसे लहरें अपने साथ बहाकर लायी हों और बालू पर डाल गयी हों।

बूढ़े ने ख़ुद को एक कुहनी के सहारे ऊपर उठाया और दूसरे किनारे की ओर देखा। उस पार धूप खिली हुई थी, यहाँ-वहाँ कुछ झाड़ियाँ दीख रही थीं और उन झाड़ियों के बीच से बाहर की ओर निकला हुआ नाव का काला डेक दीख रहा था।

पूरा परिदृश्य एकदम निर्जन, उदास था। नदी से शुरू होकर सड़क की एक धूसर पट्टी स्तेपी की गहराइयों में चली गयी थी; वह कुछ कठोर ढंग से सीधी, शुष्क और अवसादपूर्ण लग रही थी।

उसकी आँखें किसी भी बूढ़े की उदास, जलती हुई आँखों जैसी थीं, उनके पपोटे लाल और सूजे हुए थे और वे व्यग्रतापूर्वक झपक रही थीं। झुर्रियों के जाल से भरे उसके चेहरे पर एक तरह की श्रान्त विपत्ति का स्थायी भाव अंकित था। हर कुछ समय बाद वह नियन्त्रित ढंग से खाँसता

था और अपने पोते की ओर देखते हुए मुँह को हाथ से ढँक लेता था। खाँसी एकदम फटी हुई और घुटी हुई थी। खाँसते समय बूढ़ा ज़मीन से उठ जा रहा था और आँखों से बहते आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदों को पोंछने लगता था।

खाँसी और रेत पर चढ़ आती लहरों की मद्धम फुसफुसाहट – पूरी स्तेपी में सिर्फ़ यही आवाज़ें थीं। स्तेपी नदी के उस पार भी फैली हुई थी, विस्तृत, भूरी, धूप में झुलसी हुई, और उससे काफ़ी दूरी पर, बूढ़े की दृष्टि-सीमा से लगभग बाहर, गेहूँ का एक सुनहला सागर अपनी पूरी समृद्धि के साथ झूम-लहरा रहा था और अन्धा कर देने वाली चमक लिये हुए आकाश सीधे इसी में गिर पड़ा था। इस पृष्ठभूमि पर तीन छरहरे, उदासीन पॉपलर के पेड़ों की आकृतियाँ दीख रही थीं, किसी छायाचित्र की तरह। झिलमिलाता आकाश और उससे ढँका गेहूँ जब उठता और गिरता था तो लगता था जैसे पॉपलर के पेड़ कभी बड़े हो जा रहे हों और कभी छोटे। और फिर सबकुछ अचानक स्तेपी की गर्मी के धुँधलके के चमकते-रुपहले पर्दे के पीछे छिप जाता था...

यह प्रवाहमय, चमकदार, भ्रान्तिजनक पर्दा कभी-कभी दूर से एकदम नदी के किनारे तक बहता हुआ आता था...और फिर यह एक और नदी की तरह लगने लगता था, अचानक आकाश से प्रवाहित होता हुआ, उतना ही शुद्ध और शान्त जैसा कि आकाश खुद था।

ऐसे समय में दादा आर्खिप, जो ऐसी परिघटनाओं का आदी नहीं था, अपनी आँखें मलने लगता और उदास होकर सोचता था कि गर्मी और उसमें तपती स्तेपी उससे उसकी आँखों की रोशनी भी छीने ले रही हैं, जैसे कि वे उसकी टाँगों की आख़िरी बची-खुची ताक़त भी छीन चुकी हैं। आज वह अपनी हालत उससे भी बदतर महसूस कर रहा था जैसी कि आमतौर पर पिछले कुछ महीनों से बनी हुई थी। वह महसूस कर रहा था कि वह जल्दी ही मर जायेगा और, हालाँकि इसके प्रति उसका अपना रुख पूरी तरह से उदासीनता का था और वह इसे एक ऐसी अपरिहार्य आवश्यकता मानता था जिसके बारे में सोचना बेकार था, लेकिन वह यहाँ से काफ़ी दूर, अपने गाँव में मरना पसन्द करता, और अपने पोते के बारे में बहुत चिन्तित रहता था। ल्योंका का क्या होगा?

वह खुद दिन में कई बार इस सवाल से जूझता था और हमेशा ही

उसके भीतर जैसे कोई चीज़ सिकुड़ जाती थी और ठण्डी पड़ जाती थी और वह इतना दुखी-बेचैन हो उठता था कि बिना और देर किये, रूस, अपने घर, पहुँच जाना चाहता था...

लेकिन रूस अभी काफ़ी दूर था। अब, जो भी हो, रूस पहुँचना उसे बदा नहीं था, उसे रास्ते में ही मरना था। यहाँ, कुबान में, भीख देने के मामले में लोग उदार थे; कुल मिलाकर वे समृद्ध थे, हालाँकि कठोर थे और उनमें एक निर्मम क़िस्म की विनोदशीलता थी। भिखारियों के लिए उनमें कोई प्यार नहीं था क्योंकि वे ख़ुद धनी थे।

अपनी कीचड़-सनी आँखों से पोते को देखते हुए बूढ़े ने उसके सिर पर अपने रूखे हाथों से थपकी दी।

ल्योंका हिला और अपनी नीली आँखें उठाकर उसने उसे देखा। उसकी आँखें काफ़ी बड़ी और भावव्यंजक थीं, उनमें एक ऐसा विचारमग्नता का भाव था जो बालसुलभ नहीं था और पतले, रक्तहीन होंठों, तीखी नाक और चोट के निशान वाले उसके दुबले-पतले चेहरे पर वे और अधिक बड़ी लग रही थीं।

"आ रही है क्या?" उसने पूछा और आँखों के ऊपर हाथ की छाया करके नदी की ओर देखने लगा जो धूप में चमक रही थी।

"नहीं, अभी नहीं आ रही है। अभी वहीं खड़ी है। उसे इधर से ले ही क्या जाना है? कोई उसे बुला तो रहा नहीं है, इसलिए वह वहीं खड़ी है...", आर्खिप ने बच्चे का सिर थपथपाते हुए धीरे-धीरे कहा, "क्या तुम सो गये थे?"

ल्योंका ने अनिश्चिता के साथ सिर हिलाया और बालू पर पसर गया। दोनों थोड़ी देर चुप रहे।

"यदि मैं तैर पाता तो नहाता," ल्योंका ने नदी को एकटक देखते हुए घोषणा की। "नदी इतनी तेज़ है! हमलोगों के वहाँ ऐसी नदियाँ नहीं हैं। इसे जल्दी किस बात की पड़ी है? यूँ भागी जा रही है जैसे देर हो जाने का डर हो..."

और ल्योंका ने नापसन्दगी के साथ अपना मुँह पानी से दूसरी ओर फेर लिया।

"एक उपाय है मेरे पास," थोड़ी देर सोचने के बाद दादा ने कहा! "हम दोनों अपने कमरबन्द खोलकर उन्हें आपस में बाँध दें, फिर मैं उसका

एक सिरा तुम्हारे टखने से बाँध दूँगा और तुम तैर लेना..."

"अच्छी बात है," ल्योंका संशय के साथ भुनभुनाया। "फिर क्या होगा, यह भी सोचा है! तुम क्या सोचते हो, यह तुम्हें भी नहीं खींच ले जायेगी? हम दोनों डूब जायेंगे।"

"तुम ठीक कह रहे हो! यही होगा। उँह, लेकिन यह एकदम दौड़ लगा रही है...ज़रा सोचो, बसन्त में जब इसमें बाढ़ आती होगी तो कैसा दृश्य होता होगा!...और फिर वे दूर-दूर तक फैले जल-बाँगरों (जल-सिंचित घास के मैदान) की कटाई कैसे पूरी करते होंगे! उनका तो कोई अन्त ही नहीं होता होगा!"

ल्योंका बातचीत के मूड में नहीं था। उसने अपने दादा की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया और सूखी मिट्टी का एक ढेला उठाकर उँगलियों से मसलकर उसे चूरा बना दिया। उसका चेहरा गम्भीर और एकाग्रचित था।

उसके दादा ने उसकी तरफ़ देखा और अपनी आँखों को सिकोड़े हुए ख़ुद भी कुछ सोचता रहा।

"अब देखो, इस मिट्टी को..." ल्योंका ने अपने हाथों से धूल झाड़ते हुए, मद्धम, एकरस आवाज़ में बोलना शुरू किया। "...मैंने इसे लिया, और मसल दिया और यह धूल बन गयी...महज कुछ बेहद छोटे-छोटे कण इतने छोटे कि मुश्किल से ही नज़र आयें..."

"ठीक है, और तब, उसका क्या?" आर्खिप ने पूछा और खाँसने लगा। अपनी आँखों में झिलमिलाते आँसुओं के बीच से अपने पोते की बड़ी-बड़ी, सूखी, चमकती आँखों में झाँकते हुए उसने पूछा, "इससे तुम कहना क्या चाहते हो?"

"कुछ ख़ास नहीं," ल्योंका ने सिर हिलाया। "मान लो, यानी मेरा मतलब यह है कि यह जो सबकुछ यहाँ चारों तरफ़ है..." उसने अपना हाथ नदी की दिशा में लहराया। "और यह सबकुछ जो बना हुआ है...हम और तुम इतने सारे शहरों से गुज़रे हैं! कित्ते सारे! और सभी जगह इतने अधिक लोगों की भीड़!"

और, अपने विचारों को सुस्थिर कर पाने में असमर्थ ल्योंका अपने चारों ओर देखता हुआ एक ध्यानस्थ मौन में डूब गया।

बूढ़ा भी थोड़ी देर चुप रहा, फिर अपने पोते के पास खिसककर बैठ गया और नरमी के साथ बोला:

"कितना समझदार लड़का है! जो तुम कह रहे हो, वह सही है – यह सबकुछ धूल है...शहर, और लोग, और तुम, और मैं – कुछ नहीं महज धूल। आह, ल्योंका, ल्योंका! यदि तुम थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख पाते!...तुम बहुत आगे जाओगे। लेकिन यदि ऐसे ही चलता रहा तो तुम्हारा क्या होगा?"

दादा ने अपने पोते का सिर पास खींचकर उसे चूम लिया।

"रुको ज़रा..." दादा की गाँठदार काँपती उँगलियों से अपने सन जैसे बालों को छुड़ाते हुए, थोड़ी और सजीवता के साथ ल्योंका ने विस्मय प्रकट किया। "क्या कहा तुमने? धूल? शहर और यह सबकुछ?"

"ईश्वर ने इसी तरह से चीज़ें बनायी हैं, मेरे लाड़ले! सबकुछ धरती का है, और यह धरती खुद ही धूल है। और इस धरती पर जो कुछ भी है, उसे मरना है...तो ऐसी हैं चीज़ें! और इसीलिए इन्सान को अपनी रोटी अपने माथे के पसीने और विनम्रता के साथ हासिल करनी चाहिए। मैं भी जल्दी ही मर जाऊँगा।" दादा ने अचानक विषय बदल दिया और फिर करुण स्वर में कहा, "तब तुम कहाँ जाओगे, जब मैं नहीं रहूँगा?"

ल्योंका अपने दादा से अक्सर ही यह सवाल सुनता रहता था। मृत्यु के बारे में बातें करने से वह ऊब चुका था। उसने बिना कोई उत्तर दिये मुँह दूसरी ओर कर लिया, घास का एक पत्ता तोड़ा और उसे मुँह में डालकर धीरे-धीरे चबाने लगा।

लेकिन उसके दादा ने इस विषय पर चर्चा बन्द नहीं की।

"तुम जवाब क्यों नहीं देते? मैं कह रहा हूँ, बोलो तुम क्या करोगे, जब मैं चला जाऊँगा?" उसने लड़के की ओर झुकते हुए धीमे स्वर में पूछा और फिर खाँसने लगा।

"मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ..." ल्योंका ने अपनी आँखों के कोर से दादा को देखते हुए, अन्यमनस्क ढंग से, और थोड़ी झुँझलाहट के साथ कहा।

वह इस मसले पर बातचीत इसलिए भी नहीं पसन्द करता था कि इसका अन्त प्रायः झगड़े में हुआ करता था। दादा अपनी मौत की निकटता का विस्तार से वर्णन करता था। शुरू में ल्योंका ने ध्यान से सुना, अपनी स्थितियों में होने वाले भयोत्पादक परिवर्तनों से आतंकित हुआ और रोने भी लगा, लेकिन उसके बाद वह सुनते-सुनते थक गया – उसका ध्यान

इधर-उधर भटक जाता था और वह अपनी ही कोई बात सोचने लगता था और उसका दादा, जब इस बात को ग़ौर करता था, तो गुस्सा हो जाता था और शिकायत करने लगता था कि ल्योंका उसे प्यार नहीं करता, उसकी देखरेख की कद्र नहीं करता और फिर इसका अन्त इस शिकवे के साथ होता था कि ल्योंका उससे, अपने दादा से, जितनी जल्दी हो सके, छुटकारा पाना चाहता है।

"क्या मतलब – तुम मुझे बता चुके हो? तुम एक मूर्ख नन्हें बच्चे हो, ज़िन्दगी में अपना रास्ता तलाशने लायक नहीं हुए हो। कितने बरस के हुए तुम? ग्यारहवाँ चल रहा है, इससे ज़्यादा नहीं। और उस पर से, मरियल हो तुम, कठिन काम के लायक़ भी नहीं हो। कहाँ जाओगे तुम? तुम क्या सोचते हो कि तुम्हें मदद करने वाले रहमदिल लोग मिल जायेंगे? यदि तुम्हारे पास पैसे हों तो उसे जल्दी से जल्दी ख़र्च कर डालने में मदद करने वाले मिल जायेंगे – यह तय है। लेकिन भीख माँगना बेहद कठिन है – यहाँ तक कि मेरे जैसे बूढ़े के लिए भी। हर आदमी के आगे सिर झुकाओ, हर आदमी से गिड़गिड़ाओ। और वे तुम्हें धिक्कारेंगे, कभी-कभार पीट भी देंगे, तुम्हें रास्ता नापने को कहेंगे...क्या तुम सोचते हो कि कोई भिखारी को वास्तविक इन्सान मानता है? कोई नहीं मानता। दस बरस हो गये जबसे मैं सड़क पर हूँ। मैं जानता हूँ। वे रोटी के एक टुकड़े को हज़ार रूबल का समझते हैं। एक आदमी तुम्हें रोटी का एक टुकड़ा देगा और तुम देखना, किस तरह वह सोचता है कि उसके ऐसा करते ही स्वर्ग के दरवाज़े झूलते हुए उसके लिए खुलने लगे हैं। तुम क्या सोचते हो, लोग किसी और वजह से देते हैं? वे अपनी अन्तरात्मा को रिश्वत देते हैं मेरे दोस्त; इस वजह से वे भीख देते हैं, न कि इसलिए कि वे तुम्हारे लिये दुखी हैं! वे तुम्हारे रास्ते में रोटी का टुकड़ा फेंक देते हैं ताकि उनके अपने हलक़ में भोजन न अटके। एक भरे पेट वाला आदमी एक जानवर होता है। और उस आदमी के प्रति, जो भूखा होता है, उसमें कोई रहम नहीं होती। वे एक-दूसरे के दुश्मन होते हैं – भरे पेट वाला आदमी और भूखा आदमी, और वे हरदम एक-दूसरे की आँखों में रेत के समान चुभते रहेंगे। क्योंकि यह उनके लिए कतई मुमकिन नहीं कि वे एक-दूसरे को समझ सकें या एक-दूसरे पर रहम खा सकें..."

अपनी कड़वाहट और दुख में बूढ़ा ज़्यादा से ज़्यादा सजीव होता गया।

उसके होंठ काँपने लगे। उसके पपोटों और बरौनियों के लाल फ्रेम में जड़ी बुझी बूढ़ी आँखें तेज़ी से झपकने लगीं और उसके साँवले चेहरे की झुर्रियाँ तनकर ज़्यादा से ज़्यादा साफ़ नज़र आने लगीं।

ल्योंका उसकी इस मन:स्थिति को पसन्द नहीं करता था और एक तरह का अस्पष्ट-सा भय भी महसूस करने लगता था।

"इसलिए मैं तुमसे पूछ रहा हूँ – ऐसी दुनिया में तुम क्या करने जा रहे हो? तुम एक बेचारे, बीमार लड़के हो, और यह दुनिया एक जानवर है। और यह तुम्हें एक ही गड़प में निगल जायेगी। और यही मैं नहीं चाहता हूँ...मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मेरे लाडले, इसीलिए! तुम्हीं वह सबकुछ हो जो मैंने पाया है और मै ही वह सबकुछ हूँ जो तुमने पाया है...कैसे मैं मर सकता हूँ, ऐं? मैं मर नहीं सकता हूँ और तुम्हें छोड़ नहीं सकता...किसके साथ छोड़ूँ? हे भगवान! किस तरह तेरे ही सेवक तुझे अपमानित करते हैं? ज़िन्दा रहना मेरे बूते के बाहर की बात है, और मर मैं सकता नहीं, क्योंकि मुझे इस बच्चे की देखभाल करनी है! सात वर्षों से...मैं पालता आ रहा हूँ...अपनी बूढ़ी...बाँहों में...हे भगवान, मेरी मदद करो!"

बूढ़ा बैठ गया और अपने कमज़ोर-अशक्त घुटनों में अपना सिर छिपा लिया। उसके आँसू फूट पड़े।

नदी तेज़ी से बहती हुई दूर चली जा रही थी और आवाज़ करती हुई किनारों पर उछल रही थी मानो बूढ़े की कराह की आवाज़ को डुबो देना चाहती हो। बिना बादल का आकाश एक चमकदार मुस्कान मुस्कुरा रहा था और जलती हुई गर्मी बरसाते हुए बढ़िया‌ये हुए पानी के विद्रोही कोलाहल को शान्तिपूर्वक, ध्यान से सुन रहा था।

"अरे, दादा, मत रोवो", ल्योंका ने दूसरी ओर देखते हुए, शुष्कता से कहा, और फिर मुड़कर बूढ़े की ओर देखते हुए, बोला, "हम इन सबसे पार पा लेंगे। मेरा कुछ नहीं होगा। मैं कहीं किसी शराबख़ाने में नौकरी कर लूँगा..."

"वे तुम्हें पीट-पीटकर मार डालेंगे", आँसुओं के बीच बूढ़ा कराहा।

"और यह भी हो सकता है कि वे ऐसा न करें। वे ऐसा नहीं भी तो कर सकते हैं!" ल्योंका ने उद्दण्ड ढंग से, लगभग चुनौतीपूर्ण अन्दाज़ में बोला। "और ऐसा करें भी तो क्या? मैं कोई मेमना नहीं हूँ जो कोई मेरा ऊन कतर लेगा!"

इस बिन्दु पर ल्योंका अचानक किसी कारण से चुप लगा गया और, थोड़ी देर चुप रहने के बाद, फिर धीरे से बोला :

"और मैं कभी भी, किसी मठ में भी तो जा सकता हूँ।"

"यदि तुम अभी किसी मठ में जा पाते!" बूढ़े ने लम्बी साँस ली और फिर सुरसुरी के साथ बिना साँस लिये खाँसते-खाँसते बेदम हो गया। उनके सिर पर पहियों की खड़खड़ाहट सुनायी दी...

"नाव! ना...व! हे...!" एक भारी बुलन्द आवाज़ से हवा दरक-तिड़क गयी।

वे अपनी गठरी-लाठी लिये हुए उछलकर खड़े हो गये।

एक भेदती हुई भारी आवाज़ के साथ बालू पर एक छकड़ा गाड़ी चली आ रही थी। उस पर एक कज़्ज़ाक खड़ा था। एक कान की तरफ़ कुछ ज़्यादा ही झुकी रोंयेदार झबरीली टोपी से ढँके सिर को पीछे की ओर झटकते हुए वह एक बार फिर से चीख़ने की तैयारी में था। मुँह खोलकर भीतर हवा खींचते हुए, उसका चौड़ा, बाहर को निकला हुआ सीना और बाहर निकल आया था। उसकी ख़ून जैसी लाल आँखों के ठीक नीचे से शुरू होने वाली दाढ़ी के रेशमी चौखटे में उसके सफ़ेद दाँत चमक रहे थे। उसके कन्धों पर लापरवाही से पड़े चोख़ा और खुली क़मीज़ के नीचे से बालों से भरा, धूप में झुलसा धड़ झाँक रहा था। उसकी कद-काठी लम्बी चौड़ी और शरीर ठोस था, उसका घोड़ा भी मोटा-ताज़ा, दैत्याकार और लाल अबलक था और उसकी गाड़ी के ऊँचे चक्कों पर मोटे टायर चढ़े हुए थे – सबकुछ से, मानो समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य टपक रहे थे।

"हे...!...हे...!"

दादा और पोते ने अपनी टोपी उतार ली और सिर नीचे झुकाये।

"राम-राम!" नवागन्तुक अचानक घुरघुराया और एक नज़र दूर दूसरे किनारे की ओर डाली जहाँ काली-सी नाव धीरे-धीरे और कुछ अजीबोग़रीब ढंग से झाड़ियों से बाहर निकल रही थी। उसके बाद उसने अपना पूरा ध्यान भिखारियों पर केन्द्रित किया। "रूस के हो, है न?"

"हाँ, दयालु मालिक, रूस के ही हैं!" आर्खिप ने सादर-झुकते हुए जवाब दिया।

"वहाँ खाने-पीने की चीज़ों की कमी हो गयी है, क्यों?"

वह गाड़ी से कूदकर ज़मीन पर उतरा और साज़ के कुछ हिस्सों को

कसने लगा।

"तिलचट्टे तक वहाँ भूख से मर रहे हैं।"

"हो-हो! तिलचट्टे मर रहे हैं? यदि उनके लिए एक दाना भी नहीं बचा तो इसका मतलब तुम लोगों ने पूरी कठौती चाटकर चमका दी। काफ़ी अच्छे भोजन-भट्ट हो तुम लोग। लेकिन कामग़ार ज़रूर ख़राब होगे। जैसे ही तुम ठीक से काम करना शुरू करोगे, तुम्हारे अकाल का अन्त हो जायेगा।"

"नहीं हमारे भले मालिक, दिक्कत धरती की है, उसमें अब कुछ नहीं रह गया है। वह अब उपजाऊ नहीं रह गयी है। हमने उसे चूस-सोख लिया है।"

"धरती?" कज़्ज़ाक ने अपना सिर हिलाया। "धरती हर-हमेशा उपजाऊ होती है, अन्त तक वह इन्सान को देती रहती है। हाथों को कहो, धरती को नहीं। हाथों का कुसूर है। अच्छे हाथों में, पत्थर तक फ़सल देने लगता है।"

नाव आ पहुँची।

दो तगड़े, लाल चेहरों वाले कज़्ज़ाक नाव की डेक पर अपने मोटे-मोटे पैर टिकाये खड़े थे। उन्होंने नाव को किनारे लगाया, उसके झटके से आगे-पीछे डगमगाये, रस्सा किनारे फेंका और फिर हाँफते हुए एक-दूसरे को देखने लगे।

"गर्मी है न?" नाव पर अपने घोड़े को चढ़ाते हुए नवागन्तुक अपनी टोपी छूते हुए दाँत निकालकर बोला।

"उँह!" नाव वालों में से एक ने कहा। अपनी शारोवरी में भीतर गहराई तक हाथ डाले हुए वह गाड़ी के पास गया, उस पर निगाह डाली और फिर जैसे किसी सुस्वादु चीज़ को सूँघते हुए अपने नथुने फड़काये।

दूसरा आदमी ज़मीन पर बैठ गया और, कराहते हुए, अपना एक बूट उतारने लगा।

ल्योंका और उसका दादा नाव पर सवार हो गये और कज़्ज़ाकों की ओर ध्यान लगाये हुए, किनारे से पीठ टिकाकर बैठ गये।

"ठीक है, अब चलें।" गाड़ी के मालिक ने निर्देश दिया।

"कुछ पीने लायक़ नहीं है तुम्हारे पास?" उस नाव वाले ने पूछा जो अभी गाड़ी का निरीक्षण कर रहा था। उसके साथी ने अपना बूट उतार

लिया था और अब आँखें सिकोड़कर उसे देख-जाँच रहा था।

"नहीं, कुछ नहीं है। क्यों? क्या कुबान का पानी सूख गया है?"

"पानी!...मेरा मतलब पानी से नहीं था।"

"तुम्हारा मतलब दारू से है? वो मैं साथ नहीं रखता।"

"ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम्हारे पास हो ही न?" उससे बातचीत करने वाले ने नाव की फ़र्श पर निगाहें गड़ाये हुए ऊँची आवाज़ में आश्चर्य प्रकट किया।

"अच्छा, चलो, अब चलें!"

कज़्ज़ाक ने अपने हाथ थूक से गीले किये और रस्सी थाम्ह ली। मुसाफिर उसकी मदद करने लगा।

"ए दादा, तुम भी ज़रा हाथ क्यों नहीं लगा देते?" दूसरा नाव वाला जो अभी तक अपने जूते से उलझा हुआ था, आर्खिप की ओर मुख़ातिब हुआ।

"यह मेरे बूते के बाहर है, भाई!" बूढ़े ने एकरस, रें-रें करती आवाज़ में उत्तर दिया।

"और उन्हें मदद की कोई ज़रूरत भी नहीं है। वे ख़ुद ही कर लेंगे।"

जैसे कि आर्खिप को अपनी बात की सच्चाई से सहमत करने के लिए, वह आदमी एक घुटने के बल उठा और फिर नाव की डेक पर लेट गया।

उसके साथी ने उसे अनमने ढंग से कोसा और, कोई जवाब न पाकर, ज़ोर से पैर पटकते हुए डेक पर जा चढ़ा।

धारा के लगातार दबाव और बाज़ुओं से टकराती लहरों की दबी-घुटी आवाज़ों के बीच, नाव हिलती-काँपती, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

पानी की ओर देखते हुए ल्योंका ने महसूस किया कि उसका सिर मीठे-मीठे ढंग से घूम रहा है और लहरों की तीव्रता से थककर उसकी आँखें निद्रालु होकर मुँदी चली जा रही हैं। ऐसा लग रहा था जैसे दादा के बड़बड़ाने की मद्धम आवाज़ें कहीं दूर से आ रही हैं। रस्सी की चरमराहट और लहरों के छपाकों की आवाज़ें उसे नींद के आगोश में धकेल रही थीं। एक निद्रालु शिथिलता से अवश वह डेक पर पसर जाने को ही था कि अचानक किसी चीज़ ने उसे ज़ोर का झटका दिया और वह गिर पड़ा।

अपनी आँखें फाड़कर उसने अपने चारों ओर देखा। कज़्ज़ाक नाव किनारे लगाकर एक जले हुए ठूँठ से उसे बाँध रहे थे और उस पर हँस

रहे थे।

"सो गये थे, है न? बेचारा नन्हा छोकरा! गाड़ी में बैठ जाओ। मैं तुम्हें गाँव तक छोड़ दूँगा। तुम भी बैठ जाओ कूदकर, दादा!"

जान-बूझकर सूँ-सूँ की आवाज़ निकालते हुए बूढ़े ने कज़्ज़ाक को धन्यवाद दिया और कराहते हुए गाड़ी में चढ़कर बैठ गया। उसके पीछे ल्योंका भी कूदकर चढ़ गया और उन्होंने खुद को बारीक काली धूल के बादल के बीच पाया। बूढ़ा इस क़दर खाँसने लगा कि उसके लिए साँस लेना मुश्किल हो गया।

कज़्ज़ाक गाने लगा। उसके गीत में विचित्र ध्वनियाँ थीं। स्वरों को वह बीच में ही तोड़ देता था और सीटी बजाने लगता था। ऐसा लग रहा था मानो वह ध्वनियों को एक उलझे हुए गोले से धगे सुलझाने के समान निकालता था और जैसे ही कोई गाँठ आती थी, तोड़ देता था।

पहिए विरोध के स्वर में चरमरा रहे थे, उनके नीचे से धूल ऊपर उठ रही थी और बूढ़ा, अपना सिर कँपाते हुए, लगातार खाँस रहा था, और ल्योंका सोच रहा था कि किस तरह, जल्दी ही वे गाँव पहुँच जायेंगे और खिड़कियों के नीचे नकियाते सुरों में "प्रभू यीशू ख़्रीस्त" गायेंगे...एक बार फिर गाँव के लड़के उसे तंग करेंगे और औरतें रूस के बारे में अपने अन्तहीन सवालों से उसे उबा देंगी। ऐसे समय, अपने दादा को लगातार खाँसते हुए और तकलीफदेह हद तक, और भद्दे ढंग से, नीचे झुककर लगातार रिरियाती आवाज़ में, सिसकने-सुड़कने के विराम-चिह्न लगाते हुए उन चीज़ों की कहानी बयान करते हुए देखना, जो कहीं भी घटित नहीं हुई थीं, उसके लिए बहुत यन्त्रणादायी होता था।...वह बताता था कि किस तरह रूस में लोग सड़कों पर मर रहे हैं और किस तरह जहाँ वे गिरते हैं वहीं पड़े रह जाते हैं, क्योंकि उन्हें दफ़नाने वाला कोई नहीं है...भूख ने इस क़दर सभी लोगों को स्तंभित कर दिया है और भावशून्य बना दिया है...ल्योंका और उसके दादा ने कहीं भी, कभी भी, इस तरह की कोई चीज़ नहीं देखी थी। पर ज़्यादा भीख इकट्ठा करने के लिए यह सब बताना ज़रूरी था। लेकिन दान में मिली चीज़ों का, दुनिया के इस कोने में कोई भला करता भी क्या? घर पर तो किसी भी बची हुई चीज़ को चालीस कोपेक में बेचा जा सकता था या यहाँ तक कि एक पूद के लिए आध रूबल भी हासिल किया जा सकता था, लेकिन यहाँ

तो ख़रीदार मिलना ही असम्भव था। बाद में, अक्सर, सिवाय इसके और कोई चारा नहीं बचता था कि लोगों से मिले सुस्वादु खाद्य-पदार्थों से भरे अपने झोले वे स्तेपी में कहीं उलट आते थे।

"भीख इकट्ठा करने जा रहे हो?" कज़्ज़ाक ने दोनों के झुके शरीरों पर अपने कंधे के ऊपर से निगाह डालते हुए पूछा।

"हाँ, मालिक!" आर्खिप ने एक लम्बी साँस के साथ जवाब दिया।

"खड़े हो जाओ, दादा, मैं तुम्हें दिखा दूँ कि मैं कहाँ रहता हूँ। तुम आ सकते हो और रात मेरे घर पर बिता सकते हो।"

बूढ़े ने खड़ा होने की कोशिश की, लेकिन लुढ़क गया और गाड़ी के किनारे से पीठ टिकाकर बैठ गया। उसके मुँह से एक दबी हुई कराह निकली।

"हूँ, तुम तो बहुत बूढ़े हो गये हो, है न?" कज़्ज़ाक हमदर्दी के साथ घरघराती आवाज़ में बोला। "ठीक है, कोई बात नहीं, देखने की कोई ज़रूरत नहीं; कभी ऐसा वक़्त आये कि रात बिताने के लिए तुम्हें किसी जगह की दरकार हो, तो तुम चर्नी का घर पूछ लेना : अन्द्रेई चर्नी, यह मेरा नाम है। ठीक है, अब उतर जाओ यहीं। अलविदा!"

दादा-पोते ने ख़ुद को काले और रुपहले पॉपलर-वृक्षों के एक स्टैण्ड के सामने खड़ा पाया। उनके तनों के बीच से छतों और बाड़ों की एक झलक दीख रही थी। उनके दायें-बायें, हर तरफ़ ऊँचे पेड़ों के वैसे ही स्टैण्ड थे। उनके हरे पत्ते भूरी धूल से ढँके हुए थे और उनके मोटे, कठोर तनों की छाल गर्मी से फट गयी थी।

भिखारियों के ठीक सामने, ठट्ठर के बाड़ों की दो कतारों के बीच से एक सँकरी गली आगे की ओर जा रही थी। दोनों उसी रास्ते पर वैसे लम्बे, बेढंगे क़दमों से चलने लगे, जैसे प्राय: ज़्यादा समय पैदल चलने में गुज़ारने वाले भरा करते हैं।

"ठीक है, कैसे शुरू करें, एक साथ या अलग-अलग?" बूढ़े ने पूछा और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बोला, "एक साथ ही बेहतर रहेगा – तुम अकेले नहीं के बराबर ही जुटा पाते हो। भीख कैसे माँगी जाती है, यह तुम नहीं जानते..."

"और हमें उतने अधिक की ज़रूरत भी क्या है? आख़िर हम किसी भी तरह से उसमें से कुछ बचा तो पाते नहीं..." ल्योंका ने अप्रसन्नता प्रकट

करते हुए और उसे घूरते हुए जवाब दिया।

"क्या कहा, हमें ज़रूरत भी क्या है? तुममें एक दाना भी अक़्ल नहीं है, लड़के!...यदि हमें कोई मिल जाये और हम उसे वास्तव में फाँस लें, तो? वह हमें पैसे देगा। और पैसा रहना चाहिए : अगर तुम्हारी जेब में पैसे हों और थोड़ी क़िस्मत साथ दे, तो मेरे मरने के बाद तुम्हारा कोई नुकसान नहीं होगा।"

और, मुलायमियत से मुस्कुराते हुए, दादा ने पोते के सिर पर अपना हाथ फेरा।

"क्या तुम्हें पता है कि जब से हम सड़क पर हैं, मैंने कितना जमा कर लिया है? ऐं?"

"कितना?" ल्योंका ने असम्पृक्त भाव से पूछा।

"साढ़े ग्यारह रूबल!...समझे?"

लेकिन ल्योंका न तो इस रकम की मात्रा से प्रभावित हुआ और न ही दादा के हर्षविह्वल गर्व-भरे स्वर से।

"ओह, बच्चे, मेरे बच्चे!" बूढ़े ने लम्बी साँस ली। "तो हम इसे अलग रख देंगे। क्यों? है न!"

"अलग..."

"हाँ...ठीक है, और फिर तुम चर्च में चले जाना।"

"ठीक है।"

आर्खिप बायीं ओर जाने वाली गली में मुड़ गया और ल्योंका सीधे आगे बढ़ गया। अभी वह दस क़दम भी आगे नहीं गया होगा कि उसे लरजती-काँपती आवाज़ सुनायी दी : "दयालु-लोगो! दानी दाताओ!" याचना की आवाज़ यूँ लग रही थी मानो किसी ने अनसधे सितार के तारों पर अपने हाथ की हथेली रखकर उसे मन्द्र से ऊँचे स्वर की ओर खींच दिया हो। ल्योंका के बदन में सिहरन-सी हुई और वह और अधिक तेज़ी से आगे बढ़ने लगा। जब भी वह अपने दादा को भीख माँगते सुनता था तो बेचैनी और एक तरह की बेचारगी महसूस करने लगता था और, जब बूढ़े को इनकार सुनने को मिलता था तो उसे यह डर तक लगने लगता था कि कहीं उसका दादा रो न पड़े।

उसके दादा की आवाज़ के काँपते-लरजते, कारुणिक सुर गाँव के ऊपर, उनींदी उदास हवा में मँडरा रहे थे और अभी भी उसके कानों में गूँज रहे

थे। ल्योंका टट्टर के बाड़े तक गया और नीचे तक झुकी डालियों वाले चेरी के एक पेड़ की छाया में बैठ गया। पास ही कहीं से एक मधुमक्खी की अनुनादित होती हुई भनभन सुनायी दे रही थी...

ल्योंका ने अपनी गठरी उतारी और उस पर सिर टिकाकर लेट गया। अपने सिर के ऊपर, पत्तों के बीच से झाँकते आकाश को थोड़ी देर तक देखते रहने के बाद, वह गहरी नींद में डूब गया। घने, लम्बे ख़र-पतवार और झँझरीदार टट्टर के बाड़े की ओट के चलते आने-जाने वालों की निगाहें उस पर नहीं पड़ रही थीं।

ढलती हुई शाम की ताज़ा हवा में काँपती विचित्र ध्वनियों से अचानक उसकी नींद टूटी। उसके नज़दीक ही, कहीं कोई रो रहा था। यह एक बच्चे का रोना था – पूरे दिल से और एकदम बेइख़्तियार-बेक़ाबू। सिसकियों की आवाज़ ऊँचे लघुपदीय स्वरों पर पहुँचकर मद्धम पड़ने ही लगती थी कि अचानक नई सघनता के साथ एक बार फिर फूट पड़ती थी। लगातार धारा प्रवाह बहती रुलाई की यह आवाज़ निकट आती जा रही थी। ल्योंका ने अपना सिर उठाया और घास के बीच से, सामने गली में झाँका।

वहाँ, लगभग सात साल की एक लड़की चली आ रही थी। वह साफ़-सुथरे कपड़े पहने हुए थी और उसका चेहरा लगातार रोने से लाल और सूजा हुआ था, जिसे वह अपने सफ़ेद स्कर्ट के किनारे से लगातार पोंछने की कोशिश कर रही थी। अपने नंगे पैरों को घसीटते हुए और धूल को ठोकर मारते हुए वह धीरे-धीरे चल रही थी और लग रहा था मानो उसे यह भी भान न हो कि वह कहाँ जा रही है और क्यों जा रही है। उसकी बड़ी-काली आँखें इस समय आहत, उदास और आँसुओं से लबरेज़ थीं। उसके खुले हुए, चेस्टनट जैसे बालों की लटें उसके ललाट पर, गालों पर और कन्धों पर झूल रही थीं और उनके बीच से छोटे, सुन्दर, गुलाबी, कान शरारत-भरे अन्दाज़ में झाँक रहे थे।

अपने आँसुओं के बावजूद वह ल्योंका को बहुत मज़ाक़िया लगी... मज़ाक़िया और ज़िन्दादिल...देखने से ही असली शैतान लगती थी।

"तुम किसलिए रो रही हो?" लड़की की बराबरी में आने के लिए घुटनों के बल बैठते हुए ल्योंका ने पूछा।

उसने फिर रोना शुरू किया, पर जल्दी ही रोक दिया। बावजूद इसके,

वह लगातार नाक सुड़क रही थी। उसने कुछ सेकण्डों तक ल्योंका की ओर देखा, और उसके होंठ फिर से काँपने लगे, चेहरा सिकुड़ गया, सीना ऊपर उठा और रुलाई फिर से फूट पड़ी। रोती हुई वह आगे जाने लगी।

"मत रोवो! इत्ती बड़ी लड़की हो – तुम्हें शर्म नहीं आती रोते हुए?" ल्योंका उसकी ओर बढ़ते हुए कहता रहा। पास आकर उसने फिर झुककर उसके चेहरे की ओर देखा और फिर पूछा, "ठीक है, अब बताओ, क्यों तुम इस तरह रो-बिलख रही हो?"

"ओ-ओ-ह!" उसने कराहते-सिसकते कहा। "तुम्हें इससे क्या..." और फिर अचानक वह सड़क पर धूल में लोट गयी और अपना चेहरा हाथों से ढँककर बेतहाशा, फूट-फूटकर रोने लगी।

"ठीक है!" ल्योंका ने जैसे आगे की अपनी ज़िम्मेदारी छोड़ते हुए तिरस्कार की मुद्रा में कहा। "औरतो! एकदम औरतों की तरह हरक़त कर रही हो तुम! लानत है!"

पर इससे दोनों के लिए कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। उसकी नाज़ुक, गुलाबी उँगलियों के बीच से बहते आँसुओं को देखकर ल्योंका ने ख़ुद को दुखी महसूस किया। उसे ख़ुद भी रोने को मन करने लगा। वह उसके ऊपर झुक गया और, सावधानी के साथ अपने हाथ से उसके बालों को नरमी से छुआ, लेकिन फिर अचानक उसने हाथ पीछे खींच लिया, जैसे कि अपनी ही ठिठाई से भयभीत हो गया हो।

"सुनो!" वास्तव में किसी तरह से उसकी मदद करने की चाहत शिद्दत के साथ महसूस करते हुए ल्योंका ने कहना शुरू किया। "तुम्हारे साथ हुआ क्या है? क्या किसी ने तुम्हें मारा है? क्यों? ठीक है, जल्दी ही तुम इसे भूल जाओगी। या कोई और बात है? बताओ न मुझे! ऐ!"

लड़की ने चेहरे से हाथ नहीं हटाये और दुख के साथ सिर हिलाया। अन्ततोगत्वा सिसकियों-हिचकियों के बीच उसने धीरे-धीरे जवाब दिया।

"मेरे सिर का स्कार्फ – वह खो गया!...पापा बाज़ार से लाये थे, नीले रंग का था, फूलदार, और मैंने इसे बाँधा – और खो दिया।" और वह फिर फूट-फूटकर रो पड़ी, पहले से भी ज़्यादा तेज़, ज़्यादा बेक़ाबू, हिचकियाँ लेती हुई और विलाप की विलक्षण आवाज़ें निकालती हुई : ऊँ-ऊँ-ऊँ!

ल्योंका ने उसकी सहायता करने के मामले में अपने को असहाय-सा

महसूस किया। कायरतापूर्वक वह उससे थोड़ा पीछे हटा और कुछ सोचते हुए, उदासी के साथ अन्धकारमय होते जा रहे आकाश की ओर देखा। वह करुणा से भर गया था और उस नन्हीं-सी लड़की के लिए काफ़ी दुखी महसूस कर रहा था।

"अच्छा, चुप हो जाओ!...शायद वह मिल जाये..." उसने मद्धम आवाज़ में फुसफुसाते हुए कहा, लेकिन जब उसने देखा कि वह दिलासा देने की कोशिशों को सुन तक नहीं रही है, तो वह थोड़ा दूर हट गया और सोचने लगा कि स्कार्फ खो जाने के कारण शायद बाप के हाथों लड़की पर बुरी गुज़रेगी। एकाएक उसने कल्पना की आँखों से उसके बाप को देखा, एक लहीम-शहीम, काला कज़्ज़ाक जो लड़की के ऊपर खड़ा है और उसे पीट रहा है और वह, भय और पीड़ा से काँपती हुई उसके पैरों के पास ज़मीन पर पड़ी हुई है और आँसुओं से उसका गला रुँधा हुआ है...

वह उठ खड़ा हुआ और आगे जाने लगा लेकिन, उससे पाँच क़दम आगे जाने के बाद, वह अचानक लौट पड़ा और एकदम लड़की के सामने जाकर खड़ा हो गया और बाड़े से पीठ टिकाकर एकदम कोमल और दयालुतापूर्ण कुछ कहने के बारे में मशक्क़त के साथ सोचने लगा...

"आओ, बच्ची, सड़क पर से उठ जाओ! अच्छा, अब रोना बन्द करो, एकदम बन्द करो! घर जाओ और उन लोगों को सबकुछ बता दो, जो भी जैसे भी हुआ। बस कह दो कि वह तुमसे खो गया...क्या है, एक स्कार्फ ही तो है आख़िर?"

उसने मद्धम, हमदर्दी भरी आवाज़ में बोलना शुरू किया और तिरस्कारपूर्ण उद्गार पर अपनी बात ख़त्म करते हुए, लड़की को ज़मीन से उठते देखकर आह्लादित हो उठा।

"हाँ, ये हुई कुछ बात!" उत्साहित होकर, मुस्कुराते हुए उसने कहा। "अब तुम घर जाओ। क्या तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ और उन्हें सबकुछ बता दूँ इसके बारे में? मैं तुम्हारी हिमायत करूँगा, डरो मत।"

ल्योंका ने अभिमानपूर्वक अपने कन्धे चौड़े कर लिये और अपने चारों तरफ़ देखा।

"बेहतर होगा, तुम मत चलो..." उसने धीरे-धीरे अपने कपड़ों से धूल झाड़ते हुए और सिसकियों से जूझते हुए मद्धम आवाज़ में कहा।

"मैं चल सकता हूँ, अगर तुम चाहो तो," ल्योंका ने एकदम राजी-ख़ुशी यह प्रस्ताव रखा और अपनी टोपी एक कान की तरफ़ नीचे तक खींच ली।

अब वह लड़की के एकदम सामने खड़ा था, अपने पैरों को फैलाये हुए, जिससे ऐसा लग रहा था मानो जो चिथड़े वह पहने हुए था, वे अवज्ञापूर्वक एक छोर पर खड़े हो गये थे। उसने दृढ़ता के साथ अपनी छड़ी धरती पर ठोंकी और लड़की के चेहरे पर पूरी निगाहें डालकर देखने लगा। उसकी बड़ी-बड़ी उदास आँखें निर्भीक गौरव से दमक रही थीं।

लड़की ने आँसू-भरे अपने छोटे-से चेहरे को पोंछने के बाद उस पर तिरछी निगाह डाली, और एक और लम्बी साँस लेती हुई, बोली :

"नहीं, यह ठीक नहीं होगा, तुम मत आओ...अम्मा भिखारियों को पसन्द नहीं करती।"

इसके बाद वह जाने लगी। उससे दूर जाते हुए उसने दो बार उसे मुड़-मुड़कर देखा।

ल्योंका जैसे ज़मीन पर आ गया। धीरे-धीरे, एकदम मन्द गति से उसने अपनी चुनौतीपूर्ण मुद्रा बदल ली, अपनी पीठ झुका ली, फिर से विनम्र मुद्रा अपना ली, और एक हाथ में झूल रही गठरी को फिर से कन्धे पर टाँग लिया। लड़की अब तक गली के मोड़ तक पहुँच चुकी थी। वह चिल्लाया :

"विदा!"

बिना रुके उसने मुड़कर उसे देखा और फिर ग़ायब हो गयी।

शाम नज़दीक आ रही थी। हवा एक ख़ास क़िस्म की घुटन भरी उमस से बोझिल हो रही थी, जैसा कि अक्सर तूफ़ान आने से पहले महसूस होता है। सूरज आसमान में नीचे ढल चुका था और पॉपलर के पेड़ों की चोटियाँ एक नाज़ुक, परावर्तित रोशनी से दमक रही थीं। साथ ही शाम की छायाएँ उनकी निचली टहनियों को ढँकती जा रही थीं और निश्चल खड़े लम्बे पेड़ – और अधिक लम्बे और घने प्रतीत हो रहे थे...ऊपर आसमान में भी अँधेरा गहरा रहा था और वह ज़्यादा से ज़्यादा मख़मली होता हुआ, धरती की ओर डूबता आ रहा था। दूर कहीं से लोगों के बात करने की आवाज़ आ रही थी तथा और भी अधिक दूर कहीं से गाने की आवाज़ आ रही थी। ये मद्धम, लेकिन समृद्ध और गहरी आवाज़ें भी

उसी दमघोंटू भारीपन से भरी हुई लग रही थीं।

ल्योंका और अधिक अकेलापन, बल्कि एक तरह की बेचैनी भी महसूस करने लगा। उसने दादा के साथ हो लेने का निश्चय किया, अपने इर्दगिर्द देखा और गली में तेज़ी से चलने लगा। वह भीख माँगने जैसा कुछ महसूस नहीं कर रहा था। वह चलता जा रहा था और महसूस कर रहा था कि उसके सीने में दिल तेज़ी के साथ धड़क रहा था। वह सोचने या चलने के प्रति एक ख़ास क़िस्म की, सुस्ती भरी अनिच्छा से भर उठा था...लेकिन साथ ही, वह उस नन्हीं लड़की को दिमाग़ से निकाल नहीं पा रहा था और सोचता भी जा रहा था : "उस पर अब क्या बीत रही होगी? यदि वह धनी घर की होगी, तब तो वे उसे पीटेंगे : सभी धनी कंजूस होते हैं; लेकिन यदि वह ग़रीब होगी तो हो सकता है कि वे उसे न पीटें...ग़रीब घरों में बच्चों को प्यार करते हैं, ख़ासकर इसलिए कि घरवालों का ध्यान आगे उस समय पर होता है जब वे उनके कामों में हाथ बँटायेंगे।" एक के बाद एक, विचार, जिद्दी ढंग से उसके माथे में भनभना रहे थे और थका देने वाली, आत्मा को झुलसा देने वाली उदासी, जो इन विचारों का छाया की तरह पीछा कर रही थी, ज़्यादा से ज़्यादा बोझिल होती जा रही थी और उसे ज़्यादा से ज़्यादा मज़बूती से जकड़ती जा रही थी।

शाम की छायाएँ और अधिक सघन और भारी हो गयी थीं। ल्योंका को अब बीच-बीच में कज़्ज़ाकों के और उनकी स्त्रियों के समूह मिलने लगे थे जो बिना उसकी ओर ध्यान दिये गुज़र जाते थे। अकाल-पीड़ित रूसियों की बाढ़ के वे आदी हो चुके थे। वह भी, उनके भरे-पूरे, मज़बूत शरीरों पर असम्पृक्त, शिथिल दृष्टि डालता हुआ, उनके बीच से होकर, तेज़ी से चर्च की ओर बढ़ता जा रहा था – जिसका क्रॉस गाँव के ऊपर, उसके सामने चमक रहा था।

ठहरी हुई हवा में, सामने कहीं घर लौटती भेड़ों-बकरियों की आवाज़ें उभरीं। चर्च अब सामने दीख रहा था। यह एक कम ऊँचाई वाली, लम्बी-चौड़ी, नीले रंग के पाँच गुम्बदों वाली इमारत थी। पास रोपे गये पॉपलर क्रॉस से भी अधिक ऊँचाई तक पहुँच चुके थे। डूबते सूरज की रोशनी में नहाये हुए गुलाबी-सुनहले क्रॉस हरे पत्तों के बीच से झाँक रहे थे।

तभी उसकी निगाह चर्च की ड्योढ़ी के नज़दीक पहुँचते दादा पर पड़ी। वह अपनी गठरी के बोझ से झुका हुआ था और आँखों के ऊपर हाथ से छाँह करके इधर-उधर देखता हुआ उसे ढूँढ़ रहा था।

उसके दादा के पीछे, भारी, घिसटती चाल से चलता हुआ एक कज़्ज़ाक आ रहा था। उसकी टोपी आँखों तक नीची थी और हाथ में एक छड़ी थी।

"अच्छा, तो तुम्हारी झोली ख़ाली है, है न!" दादा ने पोते की ओर बढ़ते हुए पूछा, जो उसका इन्तज़ार करते हुए चर्च के अहाते के प्रवेश-द्वार पर रुक गया था। "देखो, मैंने कितना इकट्ठा कर लिया है!" उसने घुरघुराने जैसी आवाज़ करते हुए कसकर ठूँसी हुई किरमिच की एक बोरी कन्धे से ज़मीन पर पटक दी। "ऊफ! यहाँ के लोग बहुत कृपालु हैं! आह, यह बढ़िया है!...अच्छा, और तुम इस तरह मुँह क्यों लटकाये हुए हो?"

"मेरा सिर दर्द कर रहा है," ल्योंका ने अपने दादा के बग़ल में ज़मीन पर ढहते हुए धीमे स्वर में कहा।

"तुमने बताया नहीं?...थक गये हो?...अब हम चलेंगे और रात में आराम करेंगे। क्या नाम था भला उस कज़्ज़ाक का? ऐं?"

"अन्द्रेई चर्नी।"

"हम उनसे पूछेंगे : चर्नी कौन है, अन्द्रेई? वह कहाँ रहता है? यही पूछेंगे। कोई आ रहा है। हाँ...अच्छे लोग हैं, धनी-मानी। और वे और कुछ नहीं, सिर्फ़ गेहूँ की रोटी खाते हैं। सलाम, भले हुज़ूर!"

कज़्ज़ाक सीधे उनके पास आया और अर्थगर्भित ढंग से ज़ोर देकर बूढ़े के अभिवादन का उत्तर दिया:

"और तुमको भी सलाम!"

इसके बाद वह अपनी टाँगें फैलाकर खड़ा हो गया, और अपनी बड़ी, अभिव्यक्तिहीन आँखें भिखारियों पर टिकाये हुए, बिना कुछ बोले अपना सिर खुजलाने लगा।

ल्योंका जिज्ञासापूर्वक उसे देखने लगा। आर्खिप सवालिया अन्दाज़ में अपनी आँखें झपकाता रहा। कज़्ज़ाक अभी भी चुप था और फिर, वह अपनी आधी जीभ बाहर निकालकर अपनी मूँछों के सिरे टटोलने लगा। फिर अपनी इस मुहिम में कामयाबी हासिल करने के बाद वह मूँछों को मुँह में दबाकर चूसने लगा और चबाने लगा। फिर उसने उन्हें अपनी

जीभ की नोंक से बाहर धकेल दिया। अन्त में, चुप्पी को, जो अब काफ़ी बोझिल हो चुकी थी, तोड़ते हुए वह आलस के साथ, धीरे-धीरे बोला:

"मेरे साथ हेडक्वार्टर्स तक चलना होगा तुम्हें।"

"किसलिए?" बूढ़े ने अचानक हड़बड़ाते हुए पूछा।

"हुक्म है। मेरे साथ चलो।"

वह मुड़ गया और चलने को हुआ, पर, पीछे मुड़कर देखने पर जब पाया कि उनमें से कोई अभी उठा नहीं है, तो बिना उनकी ओर देखे, फिर चिल्लाया, इस बार तीखे स्वर में :

"किस बात का इन्तज़ार कर रहे हो तुम?"

तब ल्योंका और उसका दादा उसके पीछे चल पड़े।

ल्योंका ने निगाहें अपने दादा पर टिका दीं। बूढ़े का सिर और होंठ जिस तरह काँप रहे थे, जिस तरह घबराकर वह अपने इर्द-गिर्द देख रहा था और जिस तरह हड़बड़ी में अपनी क़मीज़ के नीचे टटोल रहा था, उसे देखकर ल्योंका समझ गया कि निश्चय ही बूढ़े ने फिर कुछ गड़बड़ किया है, जैसाकि पिछली बार उसने तामान में किया था। उस समय बूढ़े ने धुलने के बाद सूखने के लिए टँगे कुछ कपड़े चुरा लिये थे और उनके साथ पकड़ा गया था।

तब उन लोगों ने उसकी खिल्ली उड़ाई, उसे बुरा-भला कहा, पीटा भी और अन्त में, आधी रात को उसे गाँव से बाहर निकाल दिया। उस रात वे समुद्र के किनारे बालू पर सोये थे। सारी रात समुद्र उन्हें धमकाते हुए गुर्राता-गरजता रहा...आती-जाती लहरों से खिसकती बालू किर-किर की आवाज़ करती रही और सारी रात उसका दादा कराहता रहा और अपने को चोर कहते हुए और क्षमा माँगते हुए, फुसफुसाती आवाज़ में ईश्वर से प्रार्थना करता रहा।

"ल्योंका..."

ल्योंका ने अचानक अपनी पसलियों में कोंचने जैसा कुछ महसूस किया और चौंककर दादा की ओर देखा। बूढ़े का चेहरा उड़ा और खिंचा हुआ था, उस पर जैसे राख पुती थी और वह काँप रहा था।

कज़्ज़ाक उनसे पाँच क़दम आगे पाइप पीता हुआ और भटकटैया की झाड़ियों पर छड़ी से चोट करता हुआ चल रहा था और पीछे मुड़कर यह देख भी नहीं रहा था कि वे उसके पीछे आ रहे हैं या नहीं।

"इसे लो, पकड़ो!...फेक दो इसे...उधर घास में...और उस जगह को पहचान लो, जहाँ इसे फेंक रहे हो!...ताकि बाद में इसे उठा लिया जाये..." दादा ने मुश्किल से सुनी जा सकने लायक आवाज़ में फुसफुसाकर कहा और पोते से एकदम सटकर चलते हुए उसने कसकर लपेटे हुए कपड़े का एक टुकड़ा उसके हाथ में थम्हा दिया।

ल्योंका एक तरफ़ को हो गया। भय से वह काँप रहा था। उसका बदन जैसे जमता जा रहा था। वह बाड़ से सटकर चलने लगा जिसके नीचे घने खर-पतवार उगे हुए थे। कज़्ज़ाक की चौड़ी पीठ की ओर देखते हुए उसने हाथ बाहर निकाला और कपड़े के टुकड़े पर जल्दी से एक नज़र डालते हुए उसे घास पर गिरा दिया।

गिरने के साथ ही कपड़ा खुल गया और नीले रंग के फूलों वाला एक स्कार्फ एक पल के लिए ल्योंका की आँखों के सामने कौंध-सा गया। और फिर उसके विलुप्त होते ही, उसकी आँखों के सामने एक रोती हुई छोटी-सी लड़की की तस्वीर आ गयी। वह उसे एकदम साफ़-साफ़ देख सकता था, मानो कज़्ज़ाक को, उसके दादा को और आसपास की सभी चीज़ों को ओझल करती हुई वह उसके सामने खड़ी थी...उसकी सिसकियों की आवाज़ ल्योंका के कानों को एक बार फिर एकदम स्पष्ट सुनायी पड़ने लगीं और उसे ऐसा लगा मानो उसके आँसुओं की पारदर्शी बूँदें उसके सामने ज़मीन पर बरसती जा रही थीं।

इस लगभग संज्ञाहीन-सी स्थिति में वह अपने दादा के पीछे कज़्ज़ाक हेडक्वार्टर्स की ओर घिसटता रहा। वहाँ उसके कानों में शब्दों की गहरी भनभनाहट गूँजती रही, जिन्हें समझने की उसने कोई कोशिश नहीं की। मानो कुहासे जैसे धुँधलके के बीच से वह एक बड़ी-सी टेबुल पर अपने दादा की गठरी को ख़ाली किये जाते हुए देखता रहा और उस पर गिरती हुई तरह-तरह की चीज़ों की आवाज़ें सुनता रहा...फिर ऊँचे टोप पहने कई सिर टेबुल पर झुक गये; सभी सिर और टोप काले थे और त्योरियाँ चढ़ाये हुए थे और उनके इर्द-गिर्द छाये कोहरे के बीच से कोई भयानक ख़तरा उभर रहा था। तब, अचानक, दो हट्टे-कट्टे नौजवानों के हाथों में, लट्टू की तरह घूमते हुए उसके दादा ने फटी हुई आवाज़ में कुछ बुदबुदाना शुरू कर दिया...

"तुम ग़लत पटरी पर हो, भले ईसाइयो। जैसा ईश्वर मुझे देख रहा है,

मैं गुनहगार नहीं हूँ।" उसका दादा भेदती-हुई आवाज़ में चिल्लाया।

ल्योंका के आँसू फूट पड़े और वह फ़र्श पर ढह गया।

तब वे उसके पास आये और उसे उठाकर बेंच पर बैठाया और उन सभी चिथड़ों की तलाशी ली जो उसके छोटे से, दुबले-पतले शरीर को ढँके हुए थे।

"दानिलोव्ना झूठ बोल रही है। घिनौनी औरत!" कोई ऊँची, क्रुद्ध आवाज़ में गरजा, जो ल्योंका के लिए वैसी ही तकलीफ़देह थी जैसे किसी ने कानों पर मुक्के जड़ दिये हों।

"हो सकता है कि उन्होंने उसे कहीं छिपा दिया हो?" जवाब में दिया गया सुझाव और अधिक तेज़ आवाज़ में था।

ल्योंका को लगा जैसे कि ये सारी आवाज़ें एकदम उसके सिर पर चोट कर रही हों और वह सहसा इतना डर गया कि उसकी चेतना लुप्त होने लगी। उसे ऐसा महसूस हुआ मानो उसने एक अँधेरे-अथाह गड्ढे में सिर के बल छलांग लगा दी हो जिसने उसे लील जाने के लिए अचानक अपना मुँह खोल दिया हो।

उसने जब अपनी आँखें खोलीं तो उसका सिर दादा के घुटनों पर पड़ा हुआ था और दादा का चेहरा उसके ऊपर झुका हुआ, पहले से भी अधिक दयनीय और सामान्य से अधिक झुर्रियों से भरा हुआ लग रहा था। दादा की घबराहट से झपकती आँखों से बहते आँसू उसके ललाट पर गिर रहे थे और उसके गालों से होकर नीचे गले की ओर बहते हुए बुरी तरह गुदगुदी पैदा कर रहे थे...

"तुम ठीक हो न बेटे? चलो, यहाँ से चलें। चलो, उन्होंने हमें छोड़ दिया है। लानत है उनपर!"

ल्योंका उठ बैठा। उसे लग रहा था जैसे कुछ भारी-भारी-सा उसके सिर से बह रहा है और वह किसी भी क्षण उसके कन्धों से टपकने लगेगा। उसने अपना सिर हाथों में थाम्ह लिया, उसे हिलाया-डुलाया और धीमे से कराहा।

"तुम्हारा सिर दर्द कर रहा है। है न! मेरा बेचारा नन्हा बच्चा!...हमारी ज़िन्दगी हमसे छीन ली है इन लोगों ने...जानवर! तुम देख रहे हो न! एक खंजर खो गया और एक छोटी बच्ची ने अपना स्कार्फ खो दिया, और तब वे और भला करते ही क्या? बस गये और हमारे ख़िलाफ़ इकट्ठा

हो गये! हे ईश्वर, प्रभू! तुम हमें किस बात की सजा दे रहे हो?"

बूढ़े की घरघराती आवाज़ ने ल्योंका के मर्मस्थल के घाव को फिर हरा कर दिया और उसने महसूस किया कि उसके भीतर कोई चुभती हुई चिनगारी जल उठी है। थोड़ी दूरी लेकर उसने अपने चारों तरफ़ देखा...

वे गाँव के बाहर एक गाँठदार, काले पॉपलर की घनी छाया में बैठे हुए थे। रात हो चुकी थी, चाँद ऊपर चढ़ आया था और स्तेपी के सपाट अथाह विस्तार पर अपनी दूधिया, रुपहली रोशनी बरसा रहा था। दूधिया चाँदनी में स्तेपी, दिन के मुक़ाबले, संकुचित लग रही थी, पर साथ ही, और अधिक उजाड़-उदास और मनहूस भी प्रतीत हो रही थी। दूर, जिस सीमान्त रेखा पर स्तेपी आकाश में विलीन हो रही थी, वहाँ से बादल चुपचाप ऊपर उठ रहे थे और चुपचाप स्तेपी के ऊपर तैर रहे थे। बीच-बीच में वे चाँद को ढँक लेते थे और नीचे धरती पर उनकी अभेद्य परछाइयाँ पसर जाती थीं। परछाइयों की मोटी परत धरती पर पड़ती थीं और धीरे-धीरे, कुछ सोचती हुई-सी रेंगने लगती थीं और फिर, अचानक वे यूँ विलुप्त हो जाती थीं मानो धरती की दरारों-तरेड़ों में कहीं छुप गयी हों...गाँव की ओर से आवाज़ें आ रही थीं और यहाँ-वहाँ से रोशनियाँ कौंध रही थीं, मानो चमकदार, सुनहरे तारों को पलक झपकाकर देख रही हों।

"उठो, लड़के!...अब हमें चलना चाहिए," दादा ने कहा।

"थोड़ी देर और बैठें!" ल्योंका ने धीमे स्वर में कहा।

वह स्तेपी से प्यार करता था। दिन में इसमें चलते हुए उसे आगे उस ओर देखना अच्छा लगता था जहाँ आकाश की मेहराबी छत नीचे आकर इसकी चौड़ी छाती पर टिकी होती थी। उधर, उन दूरियों के पार वह बड़े और आश्चर्यजनक शहरों के होने की कल्पना करता था जिनमें, ऐसे दयालु लोग रहते थे जैसे लोगों से वह पहले कभी नहीं मिला था और जिनसे भीख में रोटी माँगने की ज़रूरत ही नहीं थी। बिना माँगे, वे ख़ुद ही दे देते। और जब उसकी आँखों के सामने ज़्यादा से ज़्यादा फैलती जाती स्तेपी में से, सहसा एक और गाँव उद्घाटित होकर सामने आ जाता था, जो वहाँ पहुँचने से पहले ही जाना-पहचाना-सा दीखता था और जिसके घर और लोग ठीक वैसे ही होते थे, जैसे वह पहले ही देख चुका होता था; तो वह उदास, आहत और ठगा हुआ-सा महसूस करने लगता था।

इसलिए इस समय कुछ सोचते हुए वह दूर उस तरफ़ देख रहा था जहाँ धीरे-धीरे बादल इकट्ठा हो रहे थे। वह उन्हें उस शहर की हज़ारों चिमनियों से उठने वाले धुएँ के रूप में देख रहा था जिसे देखने के लिए वह इस क़दर बेताब था...तभी उसके दादा की सूखी खाँसी ने उसके दिवा-स्वप्न को भंग कर दिया।

ल्योंका ने सख़्त निगाहों से आँसुओं से भीगे हुए दादा के चेहरे की ओर देखा जो बुरी तरह हाँफता हुआ साँस लेने की कोशिश कर रहा था।

चाँद की रोशनी में चमकता हुआ और जर्जर टोपी, भौंहों और दाढ़ी की विचित्र परछाइयों से घिरा हुआ यह चेहरा बुरी तरह हिलते-खाँसते मुँह और किसी तरह के गुप्त हर्षातिरेक से दमकती एकदम फटी-फटी-सी आँखों के साथ, एक ही साथ डरावना और कारुणिक – दोनों लग रहा था। इससे ल्योंका के भीतर एक तरह की नई भावना जागी जिसके चलते वह अपने दादा से थोड़ा अलग हटकर बैठ गया..."ठीक है, हम थोड़ी देर और बैठेंगे, और फिर, थोड़ी देर और!" बूढ़ा बुदबुदाया और फिर मूर्खतापूर्ण ढंग से खिलखिलाते हुए, अपनी क़मीज़ में सामने, भीतर कुछ टटोलने लगा।

ल्योंका ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और फिर दूर स्तेपी में देखने लगा।

"ल्योंका! इधर देखो!" अचानक उसके दादा ने उत्साह और विस्मय भरे स्वर में कहा, और एक बार फिर दमघोंटू खाँसी से दोहरा होते हुए अपने पोते के हाथ में एक लम्बी और चमकदार-सी कोई चीज़ रख दी। "इस पर चाँदी की नक्काशी की हुई है! चाँदी की, सुन रहे हो न? कम से कम पचास रूबल की तो होगी ही!...

उसके हाथ और होंठ दर्द और धन के लोभ से काँप रहे थे और उसका पूरा चेहरा ऐंठ रहा था।

"छुपा लो! उफ्फ, दादा! छुपा लो जल्दी इसे!" जल्दी से अपने चारों ओर देखते हुए, वह याचना के स्वर में फुसफुसाया।

"अब तुम्हें क्या हो गया, मूर्ख लड़के? डर गये, मेरे प्यारे?...मैंने बस खिड़की में देखा और वहाँ यह टँगा हुआ था...मैंने इसे झपट लिया – और – कोट के भीतर...और फिर मैंने इसे झाड़ियों में छुपा दिया। जैसे ही हम गाँव से बाहर निकले, मैंने अपनी टोपी गिरा देने का दिखावा किया,

नीचे झुका और इसे उठा लिया...वे मूर्ख हैं!...और फिर मुझे स्कार्फ मिल गया – देखो, यह है!"

काँपते हाथों से उसने अपने चिथड़ों के बीच से स्कार्फ खींचकर निकाला और ल्योंका की नाक के सामने लहराया।

ल्योंका की आँखों के सामने धुन्ध का एक पर्दा गिर पड़ा और उस पर यह चित्र उभरा : वह और उसका दादा, गाँव की मुख्य सड़क पर, लोगों की आँखों से बचते हुए, डरे हुए, जितनी तेज़ी से चल सकते हैं, उतनी तेज़ी से चलते हुए जा रहे हैं और ल्योंका को लगता है कि जो भी चाहे, उसे उनको पीटने का, उनपर थूकने का उनपर गालियों की बौछार कर देने का अधिकार है...आसपास की सारी चीज़ें, बाड़, घर और पेड़ एक विचित्र क़िस्म के कुहासे में, मानो तेज़ हवा के झोंके से भागे जा रहे हैं ...और क्रुद्ध-कठोर आवाज़ों की भन-भन चारों ओर गूँज रही है...

यह कठिन यन्त्रणादायी रास्ता फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है और गाँव से खेतों की ओर निकलने का रास्ता भागते-दौड़ते घरों के बीच छुप गया है, जो कभी उनकी ओर यूँ झुकने लगते हैं मानो उन्हें कुचल देना चाहते हैं, तो कभी ऐन उनके चेहरों के सामने काले धब्बों से हँसते हुए पीछे हट जाते हैं, ये काले धब्बे उनकी खिड़कियाँ हैं...और अचानक एक खिड़की से एक चीख़ गूँजती है : "चोर! चोर! चोर और उठाईगीर!" ल्योंका आवाज़ की दिशा में नज़र दौड़ाता है और वहाँ एक खिड़की में उसी छोटी बच्ची को खड़ा पाता है जिसे कुछ ही देर पहले उसने रोते हुए देखा था और जिसकी वह हिफ़ाज़त करना चाहता था। वह ल्योंका को देखते हुए देख लेती है और अपनी जीभ बाहर निकाल देती है, उसकी काली आँखें, गुस्से से, तीखेपन के साथ चमक रही हैं और ल्योंका को सुइयों की तरह बेध रही हैं।

यह तस्वीर लड़के के दिमाग़ में उभरी और तत्क्षण विलुप्त भी हो गयी, अपने पीछे एक दुर्भावनापूर्ण मुस्कान छोड़कर, जिसके साथ अब वह अपने दादा के सामने बैठा था।

बूढ़ा अभी भी, बीच-बीच में खाँसता हुआ, बुदबुदा रहा था, कुछ इशारे कर रहा था, अपना सिर हिला रहा था और अपने चेहरे की झुर्रियों से पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदों को पोंछता जा रहा था।

फटे-पुराने चिथड़े-सा भारी बादल का एक टुकड़ा ऊपर चढ़ आया

था और चाँद को उसने ढँक लिया था, और ल्योंका अपने दादा का चेहरा मुश्किल से ही देख पा रहा था...लेकिन उसके सामने उसने रोती हुई बच्ची की तस्वीर को रखा, उसके द्वारा आहत, आँसुओं से सराबोर, लेकिन स्वस्थ, ताज़ा और सुन्दर। चरमराते-जोड़ों और किरकिराती आवाज़ वाला, बीमार, धन-लोलुप, जर्जर ल्योंका का दादा उसे एकाएक एकदम फालतू लगा – एकदम परी कथाओं के काश्ची जैसा दुष्ट और घृणित। वह ऐसा कैसे कर सका? क्यों उसने उस बच्ची को चोट पहुँचायी? वह उसकी कुछ नहीं लगती थी...

और उसका दादा घरघराती आवाज़ में बोलता जा रहा था :

"अगर किसी तरह से मैं सौ डालर बचा लेता!...तो मैं निश्चिन्त होकर मर सकता..."

"बन्द करो यह सब!" ल्योंका के भीतर जैसे कुछ भड़क उठा। "बेहतर होगा कि अपना मुँह बन्द रखो। मैं मर जाता, मैं मर जाता, कहते रहते हो...लेकिन मरते नहीं हो तुम...तुम चोरी करते हो!" ल्योंका चीत्कार उठा और सहसा, काँपता हुआ, उछलकर खड़ा हो गया, "तुम एक पुराने चोर हो!...ऊ-ऊ!" और वह अपनी सूखी छोटी-सी मुट्ठी भींचकर उसे अपने अचानक चुप हो गये दादा की नाक के सामने लहराने लगा और फिर एकाएक धम्म से ज़मीन पर बैठ गया। दाँत पीसते हुए उसने बोलना जारी रखा, "तुमने एक बच्चे से चोरी की...आह, कितना सुन्दर व्यवहार है!...बुड्ढे हो गये और अभी भी पाप करने से बाज नहीं आते...तुम्हें तो इसके लिए स्वर्ग में भी माफ़ी नहीं मिलेगी!"

अचानक एक कौंध-सी पैदा हुई और पूरी स्तेपी, एक छोर से दूसरे छोर तक, अपने अनन्त विस्तार को उद्घाटित करती हुई, एक अंधा कर देने वाली नीली रोशनी के साथ चमक उठी। उसे अपने भीतर छुपा रखने वाला अन्धकार का पर्दा, पल-भर के लिए उठ गया...बिजली की कड़क सुनायी दी। पूरी स्तेपी को कँपाती उसकी गरज ने धरती को और आकाश को हिला-सा दिया जो अब तेज़ी से उड़ते काले बादलों के झुण्डों से ढँक चुका था। चाँद उनमें गुम हो चुका था।

अँधेरा बहुत अधिक गहरा हो गया। दूर कहीं बिजली चुपचाप लेकिन डरावने ढंग से खेल रही थी, और एक सेकण्ड बाद, बादलों की मद्धम गुर्राहट सुनायी दे रही थी। और फिर सन्नाटा छा जाता था, एक ऐसा

सन्नाटा जो, लगता था कि, कभी टूटेगा ही नहीं।

ल्योंका ने अपने को तिरछा किया। उसका दादा एकदम चुप, जड़-सा बैठा हुआ था। ऐसा लग रहा था मानो पेड़ के जिस तने से वह टेक लगाये बैठा था, उसी का एक हिस्सा बन गया हो।

"दादा!" ल्योंका बिजली के फिर से कड़कने का इन्तज़ार करते हुए, भयभीत स्वर में फुसफुसाया। "चलो, गाँव वापस लौट चलें।"

आसमान काँपा और धरती पर प्रचण्ड धात्विक शक्ति से प्रहार करते हुए नीली लपटों के साथ धधक उठा। ऐसा लगा मानो लोहे की हज़ारों चद्दरें आकाश से धरती पर बिखेर दी गयी हों और नीचे गिरती हुई वे एक-दूसरे से टकरा रही हों...

"दादा!" ल्योंका चिल्लाया।

उसकी चीख़ बिजली की कड़क की प्रतिध्वनियों के बीच खो गयी और एक छोटी-सी टूटी हुई घण्टी की खनखनाहट जैसी प्रतीत हुई।

"क्या बात है? डर गये?" उसका दादा बिना हिले हुए, फटी आवाज़ में बोला।

बारिश की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगी थीं और उनकी फुसफुसाहट इतनी रहस्यमय लग रही थी मानो कोई चेतावनी दे रहा हो...दूर यह आवाज़ तेज़ होकर व्यापक हो गयी थी और लगातार यूँ सुनायी दे रही थी जैसे कि एक बहुत बड़े झाड़ू से सूखी ज़मीन को बुहारा जा रहा हो – लेकिन यहाँ, जहाँ वे दोनों बैठे थे, धरती पर गिरने वाली हर बूँद की आवाज़ संक्षिप्त और तीक्ष्ण होती थी और बिना किसी प्रतिध्वनि के ही, शान्त हो जा रही थी। बिजली की कड़क नज़दीक, और नज़दीक आती जा रही थी और आसमान और अधिक जल्दी-जल्दी धधक उठने लग रहा था।

"मैं गाँव में नहीं जाऊँगा। बारिश को मुझे यहीं डुबो देने दो, बूढ़ा कुत्ता, चोर हूँ मैं, मुझपर बिजली गिर जाये और मैं मर जाऊँ," आख़िर साँस लेने के लिए जूझता हुआ कहता रहा। "मैं नहीं जाऊँगा। तुम अकेले जाओ...वो रहा गाँव...चले जाओ! मैं नहीं चाहता कि तुम यहाँ बैठे रहो...चले जाओ! जाओ, जाओ!...जाओ!..."

बूढ़ा चिल्लाने लगा था, फटी हुई आवाज़ में जो अनुनादित नहीं हो रही थी।

"दादा!...माफ़ कर दो मुझे!" ल्योंका नज़दीक खिसककर याचना के

स्वर में बोला।

"मैं नहीं जाऊँगा...मैं नहीं माफ़ करूँगा...सात साल मैंने तुम्हें माँ की तरह पाला-पोसा है!...सबकुछ...तुम्हारे लिए...मैं ज़िन्दा रहा...तुम्हारे लिए। तुम क्या सोचते हो मुझे अपने लिए किसी चीज़ की ज़रूरत है?...मैं मर रहा हूँ। मर रहा हूँ...और तुम कहते हो – चोर...मैं चोर क्यों हूँ? तुम्हारे लिए...यह सबकुछ तुम्हारे लिए है...सबकुछ, ले जाओ इसे...ले जाओ... जाओ...तुम्हारी ज़िन्दगी बनाने के लिए...तुम्हारे लिए...मैंने बचाया...और हाँ, मैंने चुराया...भगवान सबकुछ देखता है...वह जानता है...कि मैंने चुराया... .जानता है...वह मुझे सज़ा देगा। वह मुझे माफ़ नहीं करेगा, बुड्ढा कुत्ता हूँ न मैं...चोरी करने के लिए। वह मुझे पहले ही सज़ा दे चुका है...प्रभू! क्या तुमने मुझे सज़ा दी है?...क्यों? दी है न?...तूने एक बच्चे के हाथों मेरा वध करा दिया!...ठीक किया, प्रभू!...बिल्कुल ठीक!...तू न्यायशील है, प्रभू!...अब मेरी आत्मा को बुला लो...ओह!"

बूढ़े की आवाज़ ऊपर उठती हुई एक बेधती चीत्कार में बदल गयी जिससे ल्योंका के सीने में आतंक की लहर-सी दौड़ गयी।

बादलों की कड़क पूरी स्तेपी को कँपा रही थी और प्रतिध्वनियों की हलचल भरी अव्यवस्था से आकाश गुंजायमान हो रहा था। ऐसा लग रहा था मानो दोनों ही धरती से कोई महत्त्वपूर्ण और ज़रूरी बात कहना चाहते थे और लगभग लगातार गरजते हुए एक-दूसरे की आवाज़ दबा देने की हड़बड़ी में थे। बिजली से विदीर्ण आकाश थरथरा रहा था और पूरी स्तेपी गड़गड़ा रही थी। कभी वह नीली आग में धधक उठती थी तो कभी ठण्डे, घने, बोझिल अन्धकार में डूब जाती थी जिसके चलते वह आश्चर्यजनक रूप से छोटी और संकुचित लगने लगती थी। कभी-कभी बिजली स्तेपी के सर्वाधिक सुदूरवर्ती हिस्सों को भी प्रकाशित कर देती थी। और ऐसा लग रहा था कि ये सुदूरवर्ती हिस्से इस पूरे कोलाहल और गर्जन से, हड़बड़ाये हुए दूर भागते जा रहे हों।

बारिश तेज़ होती जा रही थी और बिजली की कौंध में इसकी बूँदें इस्पात की तरह चमक रही थीं और गाँव से आ रही रोशनियों को आमन्त्रण देती टिमटिमाहट को ओझल कर दे रही थीं।

ल्योंका भय, ठण्ड और अपने दादा के फूट पड़ने से पैदा हुए एक अप्रिय क़िस्म के अपराध-बोध से जड़ हो गया था। वह आँखें फाड़े हुए

एकदम सामने देख रहा था और इस तरह भयाक्रान्त था कि बारिश से भीगे उसके बालों से पानी की बूँदे बहकर उसकी आँखों में जा रही थीं और तब भी वह उन्हें झपका नहीं रहा था। वह अपने दादा की आवाज़ प्रचण्ड-ध्वनियों के सागर में डूबते हुए सुन रहा था।

ल्योंका ने महसूस किया कि उसका दादा एकदम निश्चल बैठा हुआ है, लेकिन उसे ऐसा लग रहा था मानो वह ग़ायब हो जाने वाला हो, कहीं भी चले जाने वाला हो और उसे एकदम अकेला छोड़ देने वाला हो। वह क्या कर रहा है, लगभग यह जाने बिना वह अपने दादा के नज़दीक खिसकता जा रहा था और जब उसने उसे अपनी कुहनी से छुआ, तो किसी भयंकर चीज़ के अंदेशे से काँप उठा।

आसमान को चीरती हुई बिजली ने उन दोनों को आलोकित कर दिया। वे अगल-बग़ल बैठे थे, झुके हुए और छोटे-छोटे, पेड़ों की टहनियों से धारासार गिरते पानी के नीचे...

दादा अपनी बाँहें हवा में लहरा रहा था और अब भी कुछ बुदबुदाता जा रहा था, लेकिन थके हुए स्वर में। वह काफ़ी मुश्किल से साँस ले पा रहा था।

ल्योंका ने उसके चेहरे की ओर देखा और भय से चीख़ पड़ा...बिजली की नीली चमक में वह मृत लग रहा था और उसकी सुस्त, गोल-गोल घूमती आँखें किसी पागल की आँखों जैसी लग रही थीं।

"दादा! चलो!!" दादा के घुटनों में मुँह छिपाते हुए वह चीत्कार उठा।

बूढ़ा उसके ऊपर झुका और उसे अपने दुबले-पतले, हड़ियल बाँहों के घेरे में ले लिया और फिर, उसे ज़ोर से आलिंगन में जकड़ते हुए उसने अचानक, फन्दे में फँसे हुए भेड़िये जैसी तेज़, बेधती हुई हुँआने जैसी आवाज़ निकली।

हुँआने की इस आवाज़ को सुनकर ल्योंका जैसे विक्षिप्त-सा हो गया। उसने अपने को छुड़ाकर अलग किया, उछलकर खड़ा हुआ और सीधे सामने की ओर भागने लगा। उसकी आँखें फटी हुई थीं और बिजली की कौंध से वह अन्धा हो गया था। गिरते हुए, रेंगते हुए, फिर उठते हुए वह आगे भागता हुआ सामने फैले उस अन्धकार में गहरे धँसता चला गया जो बीच-बीच में बिजली की नीली लौ से छिन्न-भिन्न हो जाता था और फिर आतंकित लड़के के आसपास एकदम सघन होकर घेराबन्दी कर लेता था।

बारिश की आवाज़ ठण्डी, एकरस और विषादपूर्ण थी। और ऐसा लग रहा था मानो समूची स्तेपी में कोई नहीं था और कुछ भी नहीं था और सिर्फ़ बारिश की आवाज़ थी और बिजली की चमक थी और बादलों का क्रुद्ध गर्जन था।

अगले दिन सुबह, कुछ बच्चे, जो दौड़ते हुए गाँव के बाहर तक चले गये थे, वे तत्काल वापस लौट आये और चीख़-पुकार मचाते हुए यह घोषणा की कि कल वाले भिखारी को उन्होंने एक काले पॉपलर के पेड़ के नीचे पड़े देखा है और उसने शायद अपना गला काट लिया है क्योंकि उसके पास ही एक लावारिस खंजर भी पड़ा हुआ था।

लेकिन सयाने कज़्ज़ाक जब देखने गये तो उन्होंने पाया कि ऐसा नहीं था। बूढ़ा अभी ज़िन्दा था। जब वे उसके पास गये तो उसने ज़मीन से उठने की कोशिश की, मगर उठ नहीं पाया। उसके बोलने की ताक़त चली गयी थी लेकिन उसकी आँसू भरी आँखों में एक सवाल था और भीड़ में एक के बाद एक सभी चेहरों पर खोजने के बावजूद उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला।

शाम तक वह मर गया और यह सोचकर कि वह चर्च के पवित्र क़ब्रिस्तान में दफ़नाने के योग्य नहीं था, उसे वहीं काले पॉपलर के पेड़ के नीचे दफ़ना दिया गया जहाँ वह पड़ा हुआ मिला था। पहली बात तो यह थी कि वह एक अजनबी था, और दूसरे – एक चोर था, और तीसरे, वह बिना पाप-क्षमा के ही मरा था। उसके पास ही कीचड़ में उन्हें खंजर पड़ा मिला और स्कार्फ भी।

कुछ ही दिनों बाद उन्हें ल्योंका भी मिल गया।

गाँव से थोड़ी ही दूरी पर स्तेपी के लम्बे नालों में से एक के ऊपर कौवों के झुण्ड जुटने लगे थे और जब वे देखने के लिए नज़दीक गये तो उन्होंने उस गीले कीचड़ में बाँहें फैलाये मुँह के बल पड़े हुए एक छोटे से लड़के को पाया, जिसे तूफ़ान नाले की तलहटी में छोड़ गया था।

पहले उन्होंने उसे चर्च के क़ब्रिस्तान में दफ़न करने का फ़ैसला किया क्योंकि अभी वह बच्चा ही था, लेकिन थोड़ी देर सोचने-विचारने के बाद उन्होंने तय किया कि उसे भी उसके दादा के बग़ल में उसी काले पॉपलर के नीचे दफ़ना दिया जाये। वहाँ उन्होंने मिट्टी का एक टीला बना दिया और उसके ऊपर एक अनगढ़-सा पत्थर का क्रॉस खड़ा कर दिया।

कहानी - नीली आँखों वाली स्त्री

सहायक पुलिस-अफ़सर पोदशिबलो उक्रइन का निवासी था – मोटी और उदास प्रकृति। दफ़्तर में बैठा वह अपनी मूँछों में बल डाल रहा था और उदास मुँह बनाये खिड़की से बाहर पुलिस स्टेशन के हाते में ताक रहा था। दफ़्तर अँधेरा, दमघोंट और बहुत ही निस्तब्ध था। घण्टे के पेण्डुलम की टिकटिक के सिवा – जो एक सुर से घड़ियाँ गिन रहा था – और कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। बाहर अहाता ख़ूब उजला था और बरबस हृदय को खींचता था। उसके बीच में उगे बर्च के तीन वृक्ष भरपूर छाँह किये थे और इस छाँह में पुलिसमैन कुख़ारिन जो अभी अपनी ड्यूटी पूरी करके लौटा था, घास के एक ढेर पर – जो आग बुझाने वाले घोड़ों के लिए वहाँ जमा थी – पड़ा सो रहा था। यही वह दृश्य था जिसने सहायक पुलिस अफ़सर पोदशिबलो का पारा गरम कर दिया था। उसका मातहत सो सकता था जबकि उसे – अभागे चीफ़ को – इस दड़बे में बैठना और दमघोंट हवा में साँस लेना पड़ रहा था। पत्थर की दीवारें गन्ध छोड़ रही थीं। उसने कल्पना की – कितना आनन्द आता अगर वह वहाँ, बर्च वृक्षों की छाया में भीनी गन्धवाली घास के उस ढेर पर, सो पाता। लेकिन इसका समय कहाँ था? फिर उसका पद भी इसकी इजाज़त नहीं देता था। सो, सोचते-सोचते, उसने अपने बदन को ताना, जम्हाई ली और पहले से और भी अधिक खीझ उठा। उसके हृदय में पुलिसमैन कुख़ारिन को जगाने की इच्छा इतने ज़ोरों से उभरी कि दबाये न दबी।

"एइयू, कुख़ारिन! ऐ सुअर, कुख़ारिन!" वह गरजा।

उसके पीछे का दरवाज़ा खुला और किसी ने भीतर पाँव रखा। पोदिशबलो, पहले की भाँति, खिड़की से बाहर देखता रहा, न तो उसने पलटकर पीछे की ओर देखा और न ही यह जानने के लिए ज़रा-सी भी उत्सुकता प्रकट की कि कौन आया है और दरवाज़े के रास्ते में खड़ा अपने बोझ से फ़र्श के तख़्ते को चरचरा रहा है। कुख़ारिन पर उसके गरजने का कोई असर नहीं हुआ, वह कसमसाया तक नहीं। वह

गहरी नींद में सो रहा था। अपने हाथ का उसने तकिया लगा रखा था, और उसकी दाढ़ी ऊपर को नोक किये आकाश से बतिया रही थी। सहायक पुलिस अफ़सर को लगा जैसे उसके मातहत के खर्राटे भरने की आवाज़ उसकी खिल्ली-सी उड़ा रही हो, झपकी लेने की उसकी अपनी इच्छा को उकसा रही हो और ऐसा न कर सकने पर उसे कोंच और कुरेद रही हो। इससे उसकी खीझ और भी तेज़ हो गयी। उसके जी में हुआ कि अभी उठकर जाये और कुख़ारिन की मोटी तोंद पर कसकर एक लात जड़े, फिर उसकी दाढ़ी पकड़कर खींचता हुआ उसे साये से बाहर ले आये और झुलसा देने वाली धूप में खड़ा कर दे।

"एइयू, वहाँ पड़ा खर्राटे भर रहा है। सुनता नहीं!"

"हुकुम, सरकार, ड्यूटी पर अब मैं हूँ," उसके पीछे से एक नर्म आवाज़ आयी।

पोदशिबलो घूम गया और उस पुलिसमैन पर अपनी चौंधिया देने वाली नज़र जमा दी जो सूनी आँखों से, दीदे फाड़े, उसकी ओर ऐसे देख रहा था कि कब हुकुम मिले जिसकी तामील में वह तुरत ज़मीन-आसमान एक कर दे।

"क्या मैंने तुम्हें बुलाया था?"

"नहीं, सरकार।"

"क्या तुम्हारी पेशी थी?" पोदशिबलो ने अपनी आवाज़ तेज़ की और अपनी कुर्सी में बल खाने लगा।

"नहीं, सरकार।"

"तब, अपनी खोपड़ी की ख़ैर चाहते हो तो यहाँ से फ़ौरन जहन्नुम रसीद हो जाओ!" उसका बायाँ हाथ किसी ऐसी चीज़ की टोह में मेज़ पर पहुँचा जिससे उसकी खोपड़ी की मरम्मत की जा सके और दाहिना हाथ मज़बूती से कुर्सी की पीठ को दबोचे था। लेकिन पुलिसमैन दरवाज़े में से चुपचाप पहले ही ग़ायब हो गया। उसका इस तरह जाना सहायक पुलिस अफ़सर को नहीं रुचा, उसे यह असभ्यतापूर्ण मालूम हुआ। इसके अलावा उसके लिए अपनी खीझ उतारना भी बेहद ज़रूरी था जिसे दफ़्तर की उमस, काम के बोझ, सोते हुए कुख़ारिन, आने वाले मेले और अन्य कितनी ही अप्रिय बातों ने बिना बुलाये दिमाग़ में घुसकर उकसा दिया था।

"इधर आओ!" वह दरवाज़े में से चिल्लाया।

पुलिसमैन लौट आया और दरवाज़े में तनकर खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर भय का भाव झलक उठा था।

"बेवक़ूफ़!" पोदशिबलो गुर्राया, "आँगन में जाओ और उस गधे के बच्चे कुख़ारिन को जगाकर कहो कि थाने का आँगन खर्राटे भरने की जगह नहीं है। बस, दफ़ा हो जाओ!"

"अच्छा, सरकार। एक स्त्री थाने में आयी है और..."

"क्या-आ-आ?"

"एक स्त्री..."

"कैसी स्त्री?"

"लम्बा क़द..."

"बेवक़ूफ़! वह क्या चाहती है?"

"आपसे मिलना..."

"पूछो, क्यों मिलना चाहती है। जाओ!"

"मैंने पूछा था। लेकिन उसने नहीं बताया। कहने लगी, वह ख़ुद सरकार से बात करना चाहती है।"

"अजीब मुसीबत हैं ये स्त्रियाँ भी। उसे यहाँ लिवा लाओ। क्या वह युवती है?"

"हाँ, सरकार!"

"अच्छा, उसे पेश करो। लेकिन जल्दी," पोदशिबलो ने नर्म पड़ते हुए कहा। वह तनकर बैठ गया और मेज़ पर पड़े काग़ज़ों को उलटने-पलटने लगा। उसने अपने उदास चेहरे पर अफ़सरियत का कठोर नक़ाब धारण कर लिया।

पीछे से स्त्री के स्कर्ट के सरसराने की आवाज़ सुनायी दी।

उसने आधा मुड़कर अपनी आसामी की ओर देखा और पैनी नज़र से उसका जायज़ा लेते हुए बोला, "मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?"

बिना कुछ कहे, सिर झुकाये, उसने अभिवादन किया और धीरे-धीरे मेज़ की ओर तैर चली। उसकी भौंहें खिंची थीं और अपनी गम्भीर नीली आँखों से वह अफ़सर की ओर देख रही थी। निम्न मध्य वर्ग की स्त्री की भाँति वह मामूली और सीधे-सादे कपड़े पहने थी। उसके सिर पर एक शॉल पड़ा था और वह कन्धों पर बिना आस्तीन का एक भूरा

लबादा डाले थी जिसके छोरों को वह अपने छोटे-छोटे सुन्दर हाथों की नाजुक उँगलियों से बराबर मसोस रही थी। उसका क़द लम्बा, बदन गुदगुदा और वक्ष ख़ूब भरे-पूरे थे। उसका माथा ऊँचा और अधिकांश स्त्रियों से ज़्यादा गम्भीर और कठोर था। उसकी उम्र सत्ताईस के क़रीब मालूम होती थी। वह बहुत ही धीरे-धीरे और विचारों में डूबी मेज़ की ओर बढ़ रही थी, मानो मन ही मन कह रही हो, "क्या उल्टे पाँव लौट जाना अच्छा न होगा?"

"नमूना बढ़िया है, जिसे निशाना बनाये, उड़ा दे!" पहली ही झलक में पोदशिबलो ने सोचा, "मुसीबत की पुड़िया!"

"मैं जानना चाहती हूँ", हरी और समृद्ध आवाज़ में उसने कहना शुरू किया और फिर रुक गयी। उसकी नीली आँखें दुविधा में अफ़सर के गलमुच्छेदार चेहरे पर टिकी थीं।

"बैठ जाओ। अब बोलो, तुम क्या जानना चाहती हो?"

पोदशिबलो ने अफ़सरी अन्दाज़ में पूछा और मन ही मन सोचा, "है बढ़िया, पूरी रसभरी!"

"मैं उन कार्डों के लिए आयी हूँ," उसने कहा।

"कैसे कार्ड, रिहाइश के?"

"नहीं, वे नहीं।"

"तो फिर कौन से?"

"वे, जो...उन्हें दिये जाते हैं...स्त्रियों को," उसने अटकते और लाज से लाल पड़ते हुए कहा।

"स्त्रियाँ? कैसी स्त्रियाँ? क्या मतलब है तुम्हारा?" अपनी भौंहों को उठाते और छेड़छाड़ के भाव से मुस्कुराते हुए पोदशिबलो ने पूछा।

"दूसरे प्रकार की स्त्रियाँ...वे, जो सड़कों पर घूमती हैं...रात को।"

"तक! तक! तक! तुम्हारा मतलब यह कि वेश्याएँ?" पोदशिबलो की बत्तीसी खिल गयी।

"हाँ, मेरा मतलब यही है", स्त्री ने एक गहरी साँस ली और मुस्कुरायी भी, मानो अब, जबकि वह शब्द उच्चारित हो चुका, उसका काम आसान हो गया।

"अरे, यह तुम क्या कहती हो? हाँ तो?..." पोदशिबलो ने उसे फिर उकसाया। वह किसी दिलचस्प रहस्य के प्रकट होने की आशा कर

रहा था।

"हाँ, मैं उसी तरह के कार्डों के सिलसिले में आयी हूँ", स्त्री ने कहना शुरू किया और एक आह भरकर तथा अपने सिर को अजीब ढंग से झटका देते हुए, जैसे किसी ने उस पर आघात किया हो, कुर्सी पर ढह गयीं।

"समझा। सो तुम चकला चलाने की बात सोच रही हो?"

"नहीं, मैं ख़ुद अपने लिए एक कार्ड चाहती हूँ," – और उसका सिर झुकता चला गया – काफ़ी नीचे तक।

"ओह! तुम्हारा पुराना कार्ड कहाँ है?" अपनी कुर्सी को उसकी कुर्सी के और अधिक निकट खिसकाते और उसकी कमर की ओर अपना हाथ बढ़ाते हुए पोदशिबलो ने पूछा। उसकी एक आँख बराबर दरवाज़े पर टिकी थी।

"कैसा पुराना कार्ड? मेरे पास कोई कार्ड-वार्ड नहीं है," पैनी नज़र से उसने उसकी ओर देखा, लेकिन उसके हाथ के स्पर्श से बचने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

"सो तुम लुक-छिपकर धन्धा करती थीं, क्यों? बिना नाम दर्ज कराये? कितनी ऐसा करती हैं। लेकिन अब तुम नाम दर्ज कराना चाहती हो। यह ठीक है। अधिक सुरक्षित", उसे बढ़ावा देते और उसके बदन पर और भी अधिक खुलकर हाथ डालते हुए पोदशिबलो ने कहा।

"मैंने पहले कभी यह धन्धा नहीं किया," स्त्री के मुँह से निकला और उसने अपनी आँखें झुका लीं।

"क्या सचमुच? यह कैसे हो सकता है? मेरी समझ में नहीं आता," अपने कन्धों को बिचकाते हुए पोदशिबलो ने कहा।

"मैंने इस पर अभी सोचना शुरू किया है। पहली बार मेले में यहाँ आने पर," धीमी आवाज़ में, अपनी आँखों को उठाये बिना, स्त्री ने स्पष्ट किया।

"सो यह बात है," पोदशिबलो ने अपना हाथ उसकी कमर पर से हटा लिया, अपनी कुर्सी को फिर वापस खिसकाया और पीठ से कमर टिकाकर बैठ गया, खोया हुआ-सा।

दोनों के दोनों चुप थे।

"तो यह बात है। ठीक। तुम चाहती हो...ऊँह...यह ग़लत है। बेशक

ग़लत है। और कठिन है। यानी, देखो न...लेकिन आख़िर...हाँ तो...बड़ी अजीब बात है...अगर सच पूछो तो मेरी समझ में नहीं आता कि तुम कैसे वह सब कर सकोगी। यानी, अगर तुम सचमुच वही करना चाहती हो जो तुम कहती हो।"

सहायक पुलिस अफ़सर अनुभवी था। उसने देखा कि सचमुच में बात ऐसी ही है। वह इतनी सहज, स्वस्थ और भली थी कि वह उस बदनाम धन्धे की सदस्या नहीं बन सकती थी। इस धन्धे के चिह्नों का, जो कि हर वेश्या के चेहरे पर अंकित होते हैं – चाहे वह कितनी ही नौसिखिया या अनुभवहीन क्यों न हो, उसमें अभाव था।

"आप सच कहते हैं," उसके मुँह से निकला और विश्वास में उमड़कर उसकी ओर झुक गयी, "सच, मेरा रोम-रोम इसका साक्षी है। क्या मैं झूठ बोलूँगी, मैं, जो इस घिनौने धन्धे तक को अपनाने का एकबारगी निश्चय कर चुकी हूँ? निश्चय ही नहीं। लेकिन मुझे धन पैदा करना है। मैं विधवा हूँ। मेरा पति – वह अगन-बोट चलाता था – पिछले अप्रैल में बर्फ़ तड़कने से डूबकर मर गया। मेरे दो बच्चे हैं – नौ साल का एक लड़का और सात साल की एक छोटी-सी लड़की। और पैसा एक नहीं। सगे-सम्बन्धी भी कोई नहीं। जब मेरा विवाह हुआ, मैं अनाथ थी। मेरे पति के सम्बन्धी बहुत दूर रहते हैं और वे मुझे भिखारी से अधिक नहीं गिनते। मैं किसका मुँह देखूँ? मैं कोई मज़ूरी कर सकती थी, इसमें शक नहीं। लेकिन मुझे काफ़ी धन चाहिए, इतना अधिक, जितना कि मज़ूरी से मुझे कभी नहीं मिल सकता। मेरा लड़का स्कूल में पढ़ता है। मेरा ख़याल है कि उसकी फीस माफ़ कराने के लिए मैं दरख़्वास्त दे सकती हूँ। लेकिन उस पर – मेरी जैसी अकेली स्त्री की दरख़्वास्त पर – कौन ध्यान देगा? और वह, इतना छोटा होते हुए भी, बहुत ही होशियार लड़का है। उसे स्कूल से उठाना अत्यन्त बुरा होगा। और मेरी छोटी लड़की, उसके लिए भी दुनियाभर की चीज़ें चाहिए। जहाँ तक खरे धन्धों का सवाल है, वे मिलते ही कहाँ हैं? और अगर कोई मिल भी जाये तो क्या कुछ मैं पाऊँगी और उससे क्या कुछ मैं कर सकूँगी? अगर बावर्ची का काम करूँ? महीने में केवल पाँच रूबल हाथ लगेंगे। यह काफ़ी नहीं है। क़तई काफ़ी नहीं है। जबकि इस धन्धे में, अगर स्त्री का भाग्य चमक उठे तो, वह इतना अधिक

पैदा कर सकती है कि अपने परिवार का पूरे एक साल तक पेट भर सकती है। पिछले मेले में हमारे गाँव की एक स्त्री ने चार सौ से भी ज़्यादा रूबल बनाये थे। धन के इस अम्बार के बल पर उसने जंगलों के वार्डेन से शादी कर ली और अब कुलीन घराने की स्त्री की भाँति जीवन बिताती है। ख़ूब मौज से रहती है। अगर उसने वह न किया होता – उसकी लाज पर वह दाग़ न लगा होता। लेकिन तुम ख़ुद निर्णय करो। मुझे लगता है कि यह भाग्य का खेल है। हमेशा भाग्य ही सब कराता है। और जब यह विचार मेरे दिमाग़ में जम गया है, मैं समझती हूँ कि भाग्य मुझसे यही कराना चाहता है। अगर मैं धन पैदा कर लेती हूँ – अन्त भला तो सब भला, और अगर सिवा दुख और कलंक के और कुछ हाथ नहीं लगता – तो मेरा भाग्य! इस तरह मैं इसे देखती हूँ।"

पोदशिबलो उसके हर शब्द को पकड़ रहा था, उसके लिए जैसे उसका सम्पूर्ण चेहरा बोल रहा था। पहले उसके चेहरे पर भय की एक झलक दिखी, लेकिन धीरे-धीरे उस दृढ़ निश्चय का भाव उसके चेहरे पर झलकने लगा।

सहायक पुलिस अफ़सर बड़ी बेचैनी का और एक हद तक सकपकाहट का भी अनुभव कर रहा था।

पहली बार उसे देखने पर उसके हृदय में आशंका उठी थी और उसने सोचा था, "इस जैसी स्त्री के हाथों किसी बेवक़ूफ़ के फँसनेभर की देर है, यह जीते जी उसकी खाल उतार लेगी और उसकी हड्डियों पर ज़रा-सा भी मांस नहीं रहने देगी," – लेकिन अब – उसकी कहानी सुनने के बाद – उसने रूखी आवाज़ में कहा –

"मुझे दुख है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता। चीफ़ आफ पुलिस के पास अपनी दरख़ास्त भेजो। यह उसका काम है – और डॉक्टरी कमीशन का। मेरा इससे कोई वास्ता नहीं है।"

वह अब उससे छुटकारा पाना चाहता था। वह तुरत खड़ी हो गयी, अभिवादन में यूँ ही ज़रा-सा सिर उसने झुकाया और धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर तैर चली। पोदशिबलो, अपने होंठों को कसकर भींचे और आँखों को सिकोड़े, उसे जाता हुआ देखता रहा। उसकी पीठ पर थूकने से अपने को रोकने के लिए इसके सिवा वह और कर भी क्या सकता

था?

"सो मुझे चीफ़ ऑफ़ पुलिस के पास जाना चाहिए?" दरवाज़े तक पहुँचने पर उसने घूमकर पूछा। उसकी नीली आँखें शान्त संकल्प की दृढ़ता से उसे देख रही थीं और उसके माथे पर एक गहरी कठोर रेखा खिंची थी।

"हाँ, ठीक है," पोदशिबलो ने तुरत जवाब देकर उसे निबटा दिया।

"अच्छा तो विदा। धन्यवाद," और वह बाहर निकल गयी।

सहायक पुलिस अफ़सर ने मेज़ पर अपनी कोहनियाँ टिका दीं। और वहाँ बैठा सीटी की आवाज़ में मन ही मन दसेक मिनट तक कुछ गुनगुनाता रहा।

"कुतिया, एह!" अपना सिर उठाये बिना वह ज़ोर से बड़बड़ा उठा, "बच्चे! भला बच्चों का इससे क्या वास्ता? ऊँह, हरजाई कहीं की!"

और एक बार फिर वह चुप हो गया, काफ़ी देर के लिए।

"लेकिन यह जीवन कौन कम हरजाई है, उसने जो कुछ कहा अगर वह सच है तो। वह आदमी को अपनी कनकी उँगली पर नचाता है। सच्चा आदमी भी क्या करे, कहाँ सिर पटके?

और फिर, एक क्षण रुककर, अपने मस्तिष्क की कारगुज़ारी की अन्तिम आहुति के रूप में, उसने एक गहरी साँस ली, अपनी उँगलियों को चटखाया और ज़ोरों के साथ यह उद्‌गार प्रकट किया –

"छिनाल!"

"क्या आपने मुझे बुलाया था?", डयूटी पर तैनात पुलिसमैन फिर दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ।

"थू!..."

"क्या आपने मुझे बुलाया था, सरकार?"

"दफ़ा हो जाओ!"

"अच्छा, सरकार।"

"बेवक़ूफ़!" पोदशिबलो के मुँह से निकला और खिड़की से बाहर उसने नज़र डाली।

कुख़ारिन अभी भी घास के ढेर पर सो रहा था। स्पष्ट ही ड्यूटी पर तैनात पुलिसमैन उसे जगाना भूल गया था।

लेकिन सहायक पुलिस अफ़सर की झुँझलाहट ग़ायब हो चुकी थी,

सोते हुए पुलिसमैन को देखकर अब उस पर ज़रा-सा भी असर नहीं हुआ। किसी चीज़ ने उसे आतंकित कर दिया था। उस स्त्री की शान्त नीली आँखें उसकी कल्पना में तैर रही थीं। वे उसका पीछा नहीं छोड़ रही थीं। दृढ़ निश्चय के साथ सीधे उसकी ओर ताक रही थीं। इसने उसका हृदय बैठा दिया था और वह एक बेचैनी का अनुभव कर रहा था।

घड़ी पर उसने एक नज़र डाली, अपनी पेटी को उसने कसा और फिर दफ़्तर से बाहर हो गया।

"लगता है कि उससे फिर किसी समय मेरी भेंट होगी, भेंट होकर रहेगी," वह बुदबुदा उठा।

2

और उसकी भेंट हुई।

साँझ का वक़्त था। बड़े दफ़्तर के सामने वह ड्यूटी पर खड़ा था। तभी, कोई पाँच डग दूर, उसकी नज़र उस पर पड़ी। वह चौक की ओर जा रही थी – वैसे ही धीरे-धीरे, जैसे तैर रही हो। उसकी नीली आँखें सीधे सामने की ओर ताक रही थीं और उसकी समूची आकृति में, जो इतनी ऊँची और कमनीय थी, उसके पृष्ठ-भाग और वक्षों की हरक़त में, उसकी आँखों के उस निस्संग भाव में ऐसा कुछ था जो किसी को पास नहीं फटकने देता था। उसकी भौहों की गहरी रेखा ने, जो भाग्य के सामने अत्यन्त निरीहता की सूचक थी और जो अब – उस वक़्त की तुलना में, जबकि पहली बार उसने उसे देखा था, कहीं अधिक प्रत्यक्ष मालूम होती थी, उसके गोल रूसी चेहरे को अत्यन्त कठोर बनाकर बिगाड़ दिया था।

पोदशिबलो ने अपनी मूँछों को ऐंठा, मनोरंजक कल्पनाओं में रम गया और निश्चय किया कि वह उसे अपनी आँखों की ओट नहीं होने देगा।

"ज़रा ठहर तो, शैतान की पुड़िया कहाँ भागी जाती है!" मन ही मन उसने उसे चुनौती दी।

इसके पाँच मिनट बाद चौक में पड़ी एक बेंच पर वह उसकी बग़ल में बैठा था।

"क्यों, मुझे पहचाना नहीं?" उसने मुस्कुराते हुए पूछा।

उसने अपनी आँखें उठाईं और शान्त भाव से उस पर एक नज़र

डाली।

"पहचाना। कहो, कैसे हो?" उसने खिन्न आवाज़ में कहा और उसे अपना हाथ तक नहीं भेंट किया।

"तुम सुनाओ, कैसे चल रहा है? क्या तुम्हें अपना कार्ड मिल गया?"

"यह रहा," और वह, उसी निस्संग भाव से, अपने कपड़ों की जेब टटोलने लगी।

इससे वह अचकचा उठा।

"अरे नहीं, उसे दिखाने की ज़रूरत नहीं। मैं तुम्हारा यक़ीन करता हूँ। इसके अलावा, मुझे कोई अधिकार नहीं है...मतलब यह कि...कैसे गुज़र रही है?" और इस प्रश्न के मुँह से निकलते ही उसने मन ही मन कहा, "जहन्नुम में जाये, मेरी बला से! और यह लाग-लपेट और अगल-बग़ल से ताँक-झाँक कैसी? क्या उसे छूते डर लगता है? सुनो, पोदशिबलो, क्यों नहीं एकदम खुलकर सीधे क़िस्सा पार कर लेते!"

लेकिन, इन तथा इस तरह की अन्य बातों से अपनेआप को लाख बढ़ावा देने पर भी, वह 'एकदम खुलकर सीधे क़िस्सा पार' नहीं कर सका। उस स्त्री में कुछ था जो आदमी को एक निश्चित प्रसंग को छेड़ने से रोकता है।

"कैसे गुज़र रही है? कोई ख़ास बुरी नहीं, भला हो उस..." वह आगे नहीं बोल सकी। उसके गाल शर्म से लाल हो उठे।

"तब तो बहुत अच्छा है। बधाई। लेकिन इस धन्धे को निभाना बड़ा कठिन है, जब तककि उसकी आदत न पड़ जाये। क्यों, ठीक है न?"

सहसा वह उसकी ओर झुक गयी – सफ़ेद और बल खाता हुआ चेहरा, गोल मुँह, लगता था जैसे वह रोने के लिए उमड़-घुमड रही हो, लेकिन वह उसी प्रकार सहसा पीछे भी हट गयी – अपनेआप को पीछे खींचकर वह फिर वैसी ही निस्संग हो गयी।

"ठीक है। मैं इसकी अभ्यस्त भी हो जाऊँगी," उसने सुस्पष्ट और समतल आवाज़ में कहा, फिर रूमाल निकालकर ज़ोरों से अपनी नाक साफ़ की।

उसका सामीप्य, उसका हिलना-डोलना और उसकी शान्त निश्चल नीली आँखें, पोदशिबलो को ऐसा मालूम हुआ जैसे वह भीतर ही भीतर किसी अतल गहराई में डूबा जा रहा हो।

उसकी घबराहट सीमा पार कर चली। वह बैठा न रह सका। वह उठ खड़ा हुआ और बिना एक शब्द मुँह से निकाले उसने अपना हाथ बढ़ा दिया।

"अच्छा तो अब विदा," उसने धीमे से कहा।

उसने अपना सिर हिलाया और तेज़ डग भरता तथा अपनी बेवक़ूफ़ी पर अपने को कोसता वहाँ से चल दिया।

"लेकिन ज़रा ठहरो, मेरी शरीफ़ पतुरिया। तुमने अभी मेरा रंग नहीं देखा। एक दिन, जब तुम्हें पता चलेगा कि मैं क्या हूँ, तो भूल जाओगी अपने हवाई घोड़े पर सवार होना!" वह मन ही मन बड़बड़ाया और साथ ही उसने यह भी अनुभव किया कि वह व्यर्थ ही उस पर अपना बुखार उतार रहा है।

और इससे वह और भी अधिक झुँझला उठा।

3

अगले सप्ताह, एक दिन साँझ के समय, पोदशिबलो कारवाँ-सराय से साइबेरियाई घाट की ओर जा रहा था। तभी गाली-गलौज, स्त्रियों की चीख़-चिल्लाहट तथा अन्य कुत्सित आवाज़ें सुनकर वह रुक गया। ये आवाज़ें एक क़हवाख़ाने की खिड़की में से आ रही थी।

"मदद! पुलिस!" किसी स्त्री की मरमराती आवाज़ आयी। अचानक घूँसों की घनघनाहट, मेज़-कुर्सियों की उठा-पटक और इन सब आवाज़ों को डुबाती हुई एक आदमी की गहरी आवाज़।

"ख़ूब, बहुत ख़ूब! और, एक बार और सीधे थूथनी पर!" वह ज़ोरों से चिल्ला- चिल्लाकर उकसा रहा था।

सहायक पुलिस अफ़सर तेज़ी से दौड़कर सीढ़ियों पर चढ़ गया, क़हवाख़ाने के दरवाज़े पर जमा तमाशा देखने वालों की भीड़ को धकियाता भीतर घुसा और यह दृश्य उसने देखा –

नीली आँखों वाली उसकी परिचित स्त्री एक मेज़ पर पड़ी अपने बायें हाथ से एक अन्य स्त्री के बालों को दबोचे थी और दाहिने हाथ से उस स्त्री के सूजे हुए मुँह पर तेज़ और निर्मम घूँसों की बौछार कर रही थी।

अपनी नीली आँखों को वह बेरहमी से सिकोड़े थी और उसके होंठ कसकर भिंचे हुए थे। उसके मुँह के छोरों से ठोड़ी तक दो गहरी रेखाएँ खिंची थी और उसका चेहरा – जो कभी इतना विकारशून्य था कि

देखकर अचरज होता था – अब बनैले जन्तु की भाँति निर्मम गुस्से से तमतमा रहा था, एक ऐसे जीव का चेहरा, जो एक सहजाति को दारुण यन्त्रणा देने और इसमें आनन्द लेने के लिए तत्पर था।

जिस स्त्री पर वह प्रहार कर रही थी, वह केवल धीमी आवाज़ में भुनभुना रही थी, अपने को छुड़ाने का प्रयत्न कर रही थी और हवा में अपनी बाँहें छटपटा रही थी।

पोदशिबलो को ऐसा अनुभव हुआ जैसे उसका समूचा रक्त तेज़ी से दिमाग़ की ओर दौड़ रहा हो। किसी से किसी चीज़ का बदला लेने की अन्धी इच्छा से वह उतावला हो उठा और तेज़ी से आगे लपककर, क्रोध से पागल उस स्त्री की कमर को दबोच, उसे अलग खींच लिया।

मेज़ उलट गयी। रकाबियाँ झनझनाकर फ़र्श पर जा गिरी। दर्शकों की बनैली चीख़ें और हँसी गूँज उठी।

गुस्से और झुँझलाहट में पोदशिबलो की आँखों के सामने सभी काट-छाँट के चेहरे कौंध गये – हँसते हुए और लाल। स्त्री को वह अपनी बाँहों में दबोचे था और वह हाथ-पाँव पटक रही थी। वह उसके कानों के पास अपना मुँह ले गया और फुँकार उठा –

"सो यह तुम हो, क्यों? इस तरह तमाशा खड़ा करती, उत्पात मचाती?"

नीली आँखों वाली स्त्री की शिकार – दूसरी स्त्री – टूटी रकाबियों के बीच फ़र्श पर पड़ी सुबकियाँ भर रही थी और सुध-बुध भूलकर कलप रही थी।

नाटे क़द का एक चपल आदमी, जो लम्बा कोट पहने था, पोदशिबलो को घटना का विवरण बता रहा था –

"बात यह हुई, सरकार, कि उसने, जो वहाँ पड़ी है, इसे गाली दी। कहा – 'हरजाई, कुतिया!' सो इसने उसके एक तमाचा जड़ दिया और उसने इस पर चाय का गिलास फेंक मारा, और तब इसने उसका झोंटा पकड़कर चित कर दिया और – धमाधम! एक के बाद एक धमाधम! इसने उसे ऐसी मार पिलाई कि कोई भी उस पर गर्व कर सकता है। सच, बड़े मज़बूत पुट्ठे हैं इसके – इस स्त्री के।"

"मज़बूत पुट्ठे – क्यों?" स्त्री को अपनी बाँहों में और भी ज़्यादा कसते हुए पोदशिबलो गरजा और ख़ुद उसका हृदय किसी से जूझने

की भयानक इच्छा से विह्वल हो उठा।

लाल गरदन और चौड़ी पीठ वाला एक आदमी – खिड़की से बाहर अपनी गरदन निकाले और हास्यजनक ढंग से अपनी चौड़ी पीठ को कमान बनाये – नीचे सड़क की ओर चिल्लाया –

"ऐ कोचवान, इधर आओ!"

"चलो अब। पुलिस स्टेशन चलो। दोनों की दोनों। एइयू, उठकर खड़ी हो...और तुम कहाँ मर रहे थे अब तक? अपनी ड्यूटी का कुछ ख़याल नहीं? बेवक़ूफ़! ले जाओ इन्हें थाने, जल्दी करो। दोनों की दोनों को, समझे!"

पुलिसमैन पहले एक के और फिर दूसरी के बदन में डण्डा गड़ाता बहादुरी के साथ उन्हें खदेड़ ले गया।

"कनयक और सोडा-वाटर, जल्दी लाओ – चटपट!" खिड़की के पास एक कुर्सी पर ढहते हुए पोदशिबलो ने बैरा से कहा। थकान और हर किसी से तथा हर चीज़ से वह झुँझलाहट का अनुभव कर रहा था।

***

अगली सुबह वह उसके सामने खड़ी थी – वैसी ही शान्त और दृढ़ जैसी कि वह पहली भेंट के समय थी। वह अपनी नीली आँखों से सीधे उसकी ओर देख रही थी और उसके बोलने की प्रतीक्षा कर रही थी।

पोदशिबलो ने, जिसे रात ढंग से नींद नहीं आयी थी और जो इस कारण और भी अधिक झुँझलाया हुआ था, मेज़ पर पड़े काग़ज़ों को इधर से उधर पटका, लेकिन इससे उसे कुछ मदद नहीं मिली और ऐसी कोई बात उसे नहीं सूझी जिसे वह उससे कहता। ये पक्षपातपूर्ण अभियोग और लांछनापूर्ण जुमले – जिनका ऐसे मौक़ों पर आमतौर से प्रयोग किया जाता है – उसके मुँह से नहीं ही निकले। वह उनसे कहीं अधिक ज़ोरदार और प्रतिशोधपूर्ण चीज़ उसके मुँह पर पटकना चाहता था।

"हाँ तो बोलो, उस झगड़े की शुरुआत कैसे हुई?"

"उसने मेरा अपमान किया," स्त्री ने कहा।

"ओह, बहुत बड़ा अपराध किया!" पोदशिबलो ने व्यंग्य से कहा।

"उसे इसका कोई अधिकार नहीं था। मेरा उससे कोई मुक़ाबला नहीं

किया जा सकता।"

"हे भगवान! तो तुम अपने को क्या समझती हो?"

"मैंने मजबूरी से इस धन्धे को अपनाया है, लेकिन वह..."

"तो तुम्हारी राय में वह मौज-मज़े के लिए यह करती है। क्यों, यही न?"

"वह?"

"हाँ, वह!"

"उसके कोई बाल-बच्चे नहीं हैं।"

"बस करो, मोरी की कीच! क्या तुम समझती हो कि अपने बच्चों का रोना रोकर मुझे फुसला लोगी? इस बार तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, लेकिन अगर तुमने फिर कोई गड़बड़ की तो चौबीस घण्टों के भीतर तुम्हें यह नगर छोड़ देना पड़ेगा। मेले से अपने पाँव दूर ही रखना। समझी! घबराती क्यों हो, तुम्हारी जैसियों को मैं खूब समझता हूँ। ज़रा-सी देर में ठीक कर दूँगा। उत्पात मचाती हो, क्यों? वह सबक पढ़ाऊँगा कि याद रखोगी, छिनाल कहीं की!" शब्द तेज़ी से, बिना किसी प्रयास के, उसके मुँह से निकल रहे थे, हर शब्द पिछले शब्द से अधिक अपमानजनक। स्त्री का चेहरा पीला पड़ गया था और उसने अपनी आँखों को ठीक वैसे ही सिकोड़ रखा था जैसेकि पिछली रात क़हवाख़ाने में उसने सिकोड़ा था।

"जाओ, दफ़ा हो जाओ यहाँ से!" मेज़ पर घूँसा मारते हुए पोदशिबलो चिल्ला उठा।

"भगवान ही तुम्हारा न्याय करेगा," उसने रूखी और धमकी भरी आवाज़ में कहा और तेज़ डगों से दफ़्तर से बाहर चली गयी।

"न्याय की बच्ची!" पोदशिबलो चीख़ा। उसका अपमान करने में उसने सुख का अनुभव किया। उसके शान्त और चिर विकारशून्य चेहरे से और जिस ढंग से अपनी नीली आँखों से सीधे उसकी ओर वह देखती थी उससे वह बुरी तरह झुँझला उठा था। पता नही, अपने को क्या समझती है? बच्चे? ग़लत, निरा बहाना! बच्चों का भला इससे क्या वास्ता? एक मामूली बेसवा – सड़कों की धूल चाटने वाली – मेले आयी कि धन कमायेगी लेकिन बनती है शराफ़त की पुतली! पता नहीं क्यों? एक शहीद – मजबूरी – बच्चे, भला किसके गले के नीचे

उतरेगी यह ख़ुराफ़ात? इतनी हिम्मत है नहीं कि अपने को उसी रूप में देख सके जो कि वह है, सो परिस्थितियों के सिर दोष मढ़ ख़ुद अपने को दूध का धुला जताती है! वाह!

4

लेकिन बच्चे भी आख़िर थे ही। गोरे चेहरे का एक छोटा लड़का, लजीला, स्कूल की पुरानी फटी वर्दी पहने, कानों पर एक काला रुमाल बाँधे, और एक छोटी लड़की, प्लेटदार मैकिन्टोश पहने, जो उसके बदन से काफ़ी बड़ी और ढीली-ढाली थी। दोनों काशिन घाट के तख़्तों पर बैठे शरद की हवा में काँप रहे थे और चुपचाप बतिया रहे थे। उनकी माँ उनके पीछे खड़ी थी, कुछ गाँठों की टेक लगाये और मुग्ध नीली आँखों से उन्हें देख रही थी।

छोटे लड़के की शक्ल उससे मिलती-जुलती थी। उसकी आँखें भी नीली थीं। रह-रहकर वह अपना सिर उठाता, जिसपर वह ऐसी टोपी पहने था, जिसकी कलगी टूटी हुई थी, अपनी माँ की ओर देखकर मुस्कुराता और कुछ कहता। छोटी लड़की के चेहरे पर बुरी तरह चेचक के दाग़ थे। छोटी-सी पैनी नाक और दो बड़ी-बड़ी भूरी आँखें, जिनमें चंचलता और समझदारी की चमक थी। घाट के तख़्तों पर उनके अगल-बगल, भाँति-भाँति के बण्डल और पोटले-पोटलियाँ पड़ी थीं।

सितम्बर के अन्त के दिन थे। सारे दिन बारिश पड़ती रही थी। नदी-तट पर कीचड़ फैली थी और ठण्डी नम हवा चल रही थी।

वोल्गा नदी बढ़ी हुई थी। गँदली लहरें ज़ोरों से आवाज़ करती तट से टकरा रही थीं और हवा में एक धीमी थिर गूँज भरी थी। भाँति-भाँति के, सभी तरह के, लोग आ-जा रहे थे। उन सभी के चेहरों पर व्यग्रता की एक झलक थी, जैसे उन्हें अपने काम की उतावली हो। नदी के दृश्य की इस उमड़ती-घुमड़ती पृष्ठभूमि में एक माँ और दो बच्चों की यह शान्त तिकड़ी अपनी ओर तुरत ध्यान खींचती थी।

सहायक पुलिस अफ़सर पोदशिबलो की नज़र उनपर पड़ चुकी थी – और, दूर खड़े रहने पर भी, वह इन तीनों को बड़ी बारीक़ी से देख रहा था। वह उनकी प्रत्येक हरक़त से अवगत था और, जाने क्यों, शर्म का अनुभव कर रहा था।

काशिन वाला स्टीम-बोट आधा घण्टे में इस घाट से छूटकर वोल्गा

के चढ़ाव की ओर जाने वाला था।

लोग बाहर जैटी पर पहुँचने लगे थे।

नीली आँखों वाली स्त्री झुकी, थैलों और पोटले-पोटलियों को अपने कन्धों तथा बग़ल में दाबकर सीधी हो गयी और सीढ़ियाँ उतरती चल दी। बच्चे उसके आगे चल रहे थे – हाथ में हाथ थामे और अपने हिस्से की पोटलियों को अपने कन्धों पर रखे।

पोदशिबलो को भी बाहर जैटी पर पहुँचना था। वह चाहता तो यही था कि न जाये, लेकिन उसके सामने और कोई चारा न था। सो कुछ देर बाद वह भी वहाँ, टिकट-घर से कुछ दूर, जाकर खड़ा हो गया।

उसकी परिचित स्त्री टिकट ख़रीदने आयी। एक हाथ में वह अपना भारी बटुवा थामे थी जिसमें से नोटों की एक गड्डी बाहर झाँक रही थी।

"मैं चाहती हूँ," उसने कहा, "...मतलब यह...ओह, बात यह है कि बच्चे तो दूसरे दर्जे में जायेंगे – कोस्त्रोमा...और मैं तीसरे में, लेकिन यह बताइये, क्या मैं उन दोनों के लिए एक ही टिकट नहीं ख़रीद सकती? नहीं? अपवाद रूप में – ख़ास तौर से – तो बना सकते हैं न? ओह धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद! भगवान तुम्हारा भला करे।"

और वह टिकट लेकर चल दी। उसका चेहरा खिला हुआ था। बच्चे उससे चिपके जा रहे थे, घाघरा खींच-खींचकर उससे पूछ रहे थे। उसने उनकी बात सुनी और मुस्कुरा दी।

"तुम भी ख़ूब हो। मैंने कहा न कि ख़रीद दूँगी, क्यों, कहा था न? क्या मैं कभी किसी चीज़ से तुम्हें वंचित रख सकती हूँ? हरेक के लिए दो-दो? अच्छी बात है। तुम लोग यहीं ठहरो। अभी लेकर आती हूँ।"

वह दरवाज़े के पास कुछ दुकानों पर गयी जहाँ फल और मिठाइयाँ बिकती थीं।

वहाँ से लौटकर वह अब फिर अपने बच्चों के बीच आ गयी थी और उनसे कह रही थी –

"यह बहुत ही बढ़िया ख़ुशबूदार साबुन तुम्हारे लिए है, वारिया, ज़रा सूँघकर देखो! और यह क़लमतराश चाकू तुम्हारे लिए है, पेत्या! देखा, मैं ज़रा भी नहीं भूली। और ये हैं पूरी एक दर्जन नारंगियाँ। लेकिन इन्हें एक बार में ही ख़त्म न कर डालना!"

स्टीम-बोट घाट से आ लगा। एक झटका। लोग डगमगा गये। स्त्री ने अपने दोनों बच्चों को समेटकर अपने से चिपका लिया और चौकन्नी आँखों से इधर-उधर देखा। ख़तरे का कोई चिह्न न देख वह हँसी। बच्चे भी हँसे। स्टीम-बोट पर चढ़ने की सीढ़ी लटका दी गयी और लोगों की धारा बोट की ओर बढ़ चली।

"ऐ धीरे-धीरे! धक्का न दो!" पोदशिबलो भीड़ पर चिल्लाया।

"एइयू बेवक़ूफ़!" वह एक बढ़ई पर गरजा जो हथौड़ियों, आरियों, बरमों, रेतियों और अन्य औजारों से लदा-फदा था, "यह क्या कबाड़ उठा लाया है? एक तरफ़ हट और स्त्री को रास्ता दे जो बच्चों को अपने साथ लिये है। ओह, कितना मूर्ख आदमी है।" कहते-कहते उसका स्वर एकदम मुलायम पड़ गया जब वह स्त्री – नीली आँखों वाली उसकी परिचिता – गुज़रते समय उसकी ओर देखकर मुस्कुरायी और बोट पर पहुँच जाने के बाद सिर झुकाकर उसने अभिवादन किया।

तीसरी सीटी।

"रस्से खोल डालो!" कप्तान के मंच से कमान की आवाज़ आयी।

बोट काँपा और हरक़त करने लगा।

पोदशिबलो डेक पर खड़े लोगों में अपनी परिचिता को टोह रहा था और जब वह दिखायी पड़ी तो उसने अपनी टोपी उतार ली और सिर झुकाकर अभिवादन किया।

जवाब में, रूसी ढंग से, वह झुकी और क्रास का चिह्न बनाया।

और इस प्रकार वह तथा उसके बच्चे कोस्त्रामा लौट गये।

उन्हें विदा करने के बाद सहायक पुलिस अफ़सर पोदशिबलो ने एक गहरी उसाँस छोड़ी और अपनी ड्यूटी पर लौट आया, भारी उदासी और दुख का अनुभव करते हुए।

(1895)

कहानी - सेमागा कैसे पकड़ा गया

सेमागा एकदम एकाकी क़हवाख़ाने में एक मेज़ पर बैठा था। वोदका का एक पौवा और पन्द्रह कोपेक मूल्य का साग वाला मांस उसके सामने रखा था।

निचले तल्ले का कमरा था। उसकी मेहराबदार छत धुएँ से काली पड़ी थी। तीन लैम्प उसमें टिमटिमा रहे थे। एक उस जगह, जहाँ कलवार बैठा था, और दो कमरे के बीच में। हवा धुएँ से अँटी थी। धुएँ के भँवरों में धुँधली काली शक्लें तैर रही थीं – बोलती और गाती, और उन्मत्त होकर गालियाँ उछालती। वे जानती थीं कि यहाँ क़ानून उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, यहाँ वे खुद अपनी बादशाह हैं।

बाहर उन भयानक तूफ़ानों में से एक – जो शरद के आख़िर में मनमाना सिर उठाते हैं – सनसना रहा था और बड़े-बड़े चिपचिपे हिमकण मरमराकर गिर रहे थे। लेकिन भीतर गरमाई, चहल-पहल और चिरपरिचित सुहावनी महक ने समा बाँध रखा था।

सेमागा, वहाँ बैठा, धुएँ के बीच से एकटक दरवाज़े की ओर देख रहा था। हर बार, जब भी किसी को भीतर आने देने के लिए दरवाज़ा खुलता, उसकी आँखें पैनी हो उठतीं। वह आगे की ओर थोड़ा-सा झुक जाता – यहाँ तक कि अपने चेहरे को ओट में करने के लिए अपना एक हाथ तक उठा लेता – और भीतर आनेवाले की आकृति को बारीक़ी से परखता। और एक बहुत ही वाजिब कारण से वह ऐसा करता था।

जब वह नये आनेवाले का बारीक़ी से – विस्तार के साथ – अध्ययन कर चुकता और उस बात की दिलजमई कर लेता, जिसकी दिलजमई वह करना चाहता था, तब वह अपने गिलास में वोदका उँडेलता, उसे गले के नीचे उतारता, मांस और आलू के आधा एक दरजन टुकड़ों को मुँह में भर लेता और बैठकर धीरे-धीरे उन्हें चबाता रहता, होंठों से चटखारे लेते और अपनी बाँकी सैनिकशाही मूँछों को जीभ से चाटते हुए।

सीली हुई भूरी दीवार पर एक अजीब ऐंड़ी-बैंड़ी परछाईं पड़ रही थी। यह उसके बाल-बिखरे बड़े सिर की परछाईं थी और जब वह मुँह चलाता था तो ऊपर-नीचे होती रहती थी, मानो वह सिर हिला-हिलाकर बराबर किसी को बुला रही थी और जिसे बुलाया जा रहा था वह कोई ध्यान नहीं दे रहा था।

सेमागा का चेहरा चौड़ा, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई और दाढ़ी से मुक्त थीं। उसकी आँखें बड़ी और भूरी थीं और उन्हें सिकोड़े रखने की उसे एक आदत-सी पड़ गयी थी। काली घनी भौंहें उसकी आँखों पर छाया किये थीं और घुँघराले बालों की एक लट – जिसका रंग कोई रंग नहीं था – उसकी बायीं भौंह के ऊपर, क़रीब-क़रीब उसे छूती हुई, झूल रही थी।

कुल मिलाकर, सेमागा का चेहरा उन चेहरों में से नहीं था जिन्हें देखकर उनका विश्वास करने को जी चाहता है। उसके चेहरे पर कसाव का वह भाव, जैसेकि किसी समय भी उठकर भाग जाने के लिए वह तैयार बैठा हो, एक ऐसा भाव, जो इन लोगों के बीच और इस जगह तक में बे-मौजूँ मालूम होता था, हृदय में उसके प्रति किसी भी विश्वास को जमने नहीं देता था।

वह एक खुरदरा ऊनी कोट पहने था जो कमर में एक डोरी से बँधा था। बग़ल में उसकी टोपी और दस्ताने पड़े थे और कुर्सी की पीठ के सहारे रोबदार आकार-प्रकार का एक डण्डा टिका था जिसके एक छोर पर मूठ-सी उभरी थी। यह जड़वाला सिरा था।

हाँ तो वह इस प्रकार बैठा खाने-पीने में मगन था और कुछ और वोदका के लिए ऑर्डर देने ही जा रहा था कि तभी फटाक-से दरवाज़ा खुला और क़हवाख़ाने में एक गोल-मटोल और खुरदरी-सी चीज़ लुढ़क आयी जो, दुनिया साक्षी है, नाव खींचने के रस्से का एक बड़ा गोला मालूम होती थी जिसे खोलने के लिए लुढ़का दिया गया हो। ठीक इस खुलते हुए गोले की भाँति लुढ़कते हुए उसने क़हवाख़ाने में प्रवेश किया।

"ऐ, चौकस हो जाओ, लोगो! पुलिस धावा कर रही है!" ऊँची विचलित बचकाना आवाज़ में वह चिल्ला उठी।

लोग तुरत कमर सीधी करके बैठ गये, शोर बन्द हो गया और वे,

चिन्तित मुद्रा में, सलाह करने लगे। उनके बीच से, मरमरायी-सी बेचैन आवाज़ों में, कुछ सवाल प्रकट हुए –

"क्या सच कहते हो?"

"मुझे मार डालना अगर ग़लत निकले तो! वे दोनों ओर से आ रहे हैं। घोड़ों पर भी और पैदल भी। दो अफ़सर और ढेर सारे पुलिसमैन!"

"वे किसकी खोज में हैं? कुछ मालूम हुआ?"

"सेमागा की, मेरा अन्दाज़ है। निकिफ़ोरिच से वे उसके बारे में पूछताछ कर रहे थे," बचकाना आवाज़ ने सुर में जवाब दिया और वह गुदड़ीनुमा आकृति, जिसकी कि यह आवाज़ थी, कलवार की दिशा में लुढ़क गयी।

"क्यों, क्या निकिफ़ोरिच पकड़ा गया?" टोपी को अपने उलझे हुए बालों पर जमाते और बिना किसी उतावली के उठते हुए सेमागा ने पूछा।

"हाँ, उन्होंने उसे अभी-अभी पकड़ा है।"

"कहाँ?"

"चची मारिया के घर पर, 'स्टेन्का' शराब-घर।"

"क्या तुम सीधे वहीं से आ रहे हो?"

"ओ-हो-हो! बाग़ के बाड़ों को फाँदता-लाँघता भागा हुआ मैं यहाँ आया और अब मैं सीधे 'बरजा' शराब-घर जा रहा हूँ। उन्हें सूचित करना भी ज़रूरी है, मेरी समझ में।"

"लपक जाओ!"

लड़का पलक झपकते क़हवाख़ाने से बाहर हो गया। लेकिन उसके निकलने पर दरवाज़ा अभी बन्द हुआ ही था कि क़हवाख़ाने का पक्के बालों वाला वृद्ध मालिक ईओना पेत्रोविच, जो कि एक धर्मभीरू आदमी था, आँखों पर बड़ा-सा चश्मा चढ़ाये और खोपड़ी पर गोल टोपी चिपकाये, उसके पीछे लपका –

"ऐ छछून्दर, शैतान के बच्चे! यह तूने क्या किया, सुअर की नापाक औलाद! पूरी रकाबी डकार गया!"

"किस चीज़ की?" सेमागा ने, जो अब दरवाज़े की ओर बढ़ रहा था, पूछा।

"कलेजी की। एकदम चट कर गया। मेरी तो यही समझ में नहीं

आता कि इतनी-सी देर में उसने यह किया कैसे? क्या एक ही बार में पूरी रकाबी गले में उँडेल ली? हरामी कहीं का!"

"तो यह कहो कि तुम्हें वह भिखारी बना गया, क्यों?" दरवाज़े से बाहर होते हुए सेमागा ने रूखी आवाज़ में कहा।

नम और थपेड़े मारती हवा के बगूले – छोटी-मोटी आवाज़ें करते – इस-उसको खड़खड़ाते – ऊपर और सड़क की सीधा में सपाटे भर रहे थे और वायु उबलता हुआ दलिया की भाँति मालूम होती थी – इतनी घनता के साथ भीगे हुए हिम-कण गिर रहे थे।

सेमागा ने, एक क्षण के लिए रुककर, कानों से टोह ली। लेकिन हवा के सनसनाने और हिम-कणों की सरसराहट के सिवा, जो घरों की दीवारों-छतों पर गिर रहे थे, और कोई आवाज़ नहीं सुनायी दी।

वह चल दिया और दसेक डग भरने के बाद ही एक बाड़े को उसने लाँघा और किसी घर के पिछले बाग़ में पहुँच गया।

तभी एक कुत्ता भौंका और उसके जवाब में घोड़े ने हिनहिनाकर ज़मीन पर अपना पाँव पटका। सेमागा जल्दी से बाड़ा लाँघकर फिर सड़क पर आ गया और नगर के मध्य भाग की ओर चल दिया। अब उसके डग, पहले की निस्बत, अधिक तेज़ी से उठ रहे थे।

कुछ मिनट बाद उसे अपने सामने एक आवाज़ सुनायी दी जिसने उसे एक अन्य बाड़ा लाँघने के लिए बाध्य कर दिया। इस बार, बिना किसी दुर्घटना के, वह आगे का सहन पार कर गया, खुले दरवाज़े में से होकर बाग़ में दाख़िल हुआ, अन्य बाड़ों को लाँघा और अन्य बाग़ों को पार किया और अन्त में एक सड़क पर पहुँच गया जो उसी सड़क के समानान्तर चली गयी थी जिसपर कि ईओना पेत्रोविच का क़हवाख़ाना था।

चलते-चलते उसने छिपने के लिए किसी सुरक्षित स्थान के बारे में सोचने की कोशिश की, लेकिन ऐसा कोई स्थान दिमाग़ में नहीं आया।

जितने भी सुरक्षित स्थान थे वे सब अब अरक्षित हो गये थे, क्योंकि पुलिस धावा मारने पर उतर आयी थी। और धावा करनेवालों या रात के चौकीदार द्वारा पकड़े जाने के ख़तरे के रहते ऐसी आँधी में बाहर रात बिताने की कल्पना भी कोई ख़ास आह्लादपूर्ण नहीं थी।

वह अब धीरे-धीरे चल रहा था, सामने तूफ़ान के सफ़ेद अँधेरे पर

आँखें जमाये जिसमें से नर्म बर्फ़ के गालों से ढँके घर, घोड़े बाँधने के अड्डे, सड़क की रोशनी के खम्बे और पेड़ एकाएक बिना आवाज़ किये निकल आते थे।

तूफ़ान की आवाज़ से अलग एक विचित्र आवाज़ सुनकर उसके कान खड़े हो गये। यह आवाज़ उसके सामने किसी जगह से आ रही थी। यह किसी बच्चे के रोने की नर्म आवाज़ से मिलती थी। वह रुक गया और ख़तरे की गन्ध से आशंकित वन्य जीव की भाँति उसकी गरदन आगे की ओर तन गयी।

आवाज़ आनी बन्द हो गयी।

सेमागा ने अपनी गरदन हिलायी और फिर आगे बढ़ चला। टोपी को और भी अधिक नीचे खींचकर उसने अपनी आँखों को ढँक लिया और हिम-कणों से अपनी गरदन को बचाने के लिए कन्धों को उचकाकर एक कूब-सा निकाल लिया।

उसे फिर रोने की आवाज़ सुनायी दी और इस बार यह ठीक उसके पाँव के नीचे से आ रही थी। वह चौंका, रुका, नीचे झुका अपने हाथों से ज़मीन को टटोला, सीधा खड़ा हो गया और उस बण्डल से बर्फ़ अलग करने लगा जो कि उसे मिला था।

"वाह, क्या साथी मिला है राह चलते! एक बच्चा! बोलो, क्या कहते हो अब तुम?" शिशु को देखते हुए वह अपनेआप बुदबुदाया।

उसमें गरमाई थी। वह किलबिला रहा था। पिघली हुई बर्फ़ से वह एकदम गीला हो गया था। उसका चेहरा, जो सेमागा की मुट्ठी जितना भी बड़ा नहीं था, लाल और झुर्रियाँ-पड़ा था, उसकी आँखें बन्द थीं और उसका छोटा-सा मुँह रह-रहकर खुल और छोटी-छोटी चुसकियाँ-सी भर रहा था। उसके चेहरे के इर्द- गिर्द लिपटे चिथड़े में से पानी चूकर उसके नन्हे दाँतविहिन मुँह में पहुँच रहा था।

स्तब्ध हो जाने पर भी सेमागा में इस बात का चेत था कि इन चिथड़ों से चुआ पानी बच्चे के पेट में नहीं जाना चाहिए, सो उसने बण्डल को उलटकर उसे हिलाया।

लेकिन बच्चे को शायद यह रुचा नहीं और इसके विरोध में वह ज़ोरों से चीख़ उठा।

"तक-तक!" सेमागा ने कड़ी आवाज़ में कहा, "तक-तक! मुँह से

ज़रा भी आवाज़ न निकले, समझे! नहीं तो कान खींच दूँगा। बोलो, मुझे ऐसी क्या पड़ी थी जो मैं तुमसे उलझ गया? गोया मुझे बस तुम्हारी ही ज़रूरत थी। लेकिन तुम हो कि रोना शुरू कर दिया। बोलो, नन्हें बुद्धू और कैसे होते हैं?"

लेकिन सेमागा के शब्दों का बच्चे पर ज़रा भी असर नहीं हुआ, धीमी और रुआँसी आवाज़ में उसने चिचियाना जारी रखा। सेमागा इससे अत्यधिक विचलित हो उठा –

"भई वाह, तुम भी कैसे दोस्त हो? देखो, यह अच्छी बात नहीं है। यह मैं जानता हूँ कि तुम गीले हो गये हो और तुम्हें ठण्ड सता रही है – और यह कि तुम एकदम छिपकली हो, लेकिन मैं कर भी क्या सकता हूँ? बोलो, तुम्हीं बताओ।"

लेकिन बच्चा अभी भी चिचिया रहा था।

"नहीं मानते तो यह लो," सेमागा ने निर्णयात्मक स्वर में कहा, चिथड़े को बच्चे के चारों ओर और कसकर लपेटा और उसे फिर ज़मीन पर रख दिया।

"और कोई चारा नहीं। तुम ख़ुद देख सकते हो कि मैं तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। मैं ख़ुद भी एक तरह से परित्यक्त ही हूँ। अच्छा तो अब राम-राम और बस।"

सेमागा ने हवा में हाथ हिलाया और चल दिया, बुदबुदाता हुआ –

"अगर पुलिस छापा न मारती तो शायद तुम्हारे लिए कोई न कोई घोंसला खोज निकालता। लेकिन पुलिस छापा मार रही है। इसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ? नहीं दोस्त, कुछ नहीं कर सकता। मुझे माफ़ करना, सच, तुम्हें माफ़ करना ही पड़ेगा। तुमने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, तुम एकदम निर्दोष हो और तुम्हारी माँ एक डायन है – पूरी डायन। छिनाल कहीं की! अगर कभी मेरे पाले पड़ गयी तो, कम्बख़्त एक भी पसली बाक़ी न रहने दूँ, भुरकस निकाल दूँ। होश ठिकाने आ जाये और फिर कभी ऐसा करने का साहस न हो। मालूम हो जाये कि बस, यहाँ तक बढ़ना चाहिए, इससे आगे नहीं । ओइयू, स्त्री के चोले में शैतान, हृदयहीन गाय! दुखों की आग में तू जलेगी, धरती में समाना चाहेगी तो वह भी तुझे उगल देगी। तू समझती क्या है? यह भी कोई खेल है कि जहाँ-तहाँ मुँह मारा, जब बच्चे हुए तो उन्हें इधर-उधर

फेंक दिया? क्यों, यही न? अगर मैं तेरा झोंटा पकड़कर तुझे बाज़ार में से घसीटता हुआ ले चलूँ तो? तेरा यही इलाज है, कुतिया! क्या तू इतना भी नहीं जानती कि ऐसी आँधी तूफ़ान में बच्चों को जहाँ-तहाँ नहीं फेंका जा सकता? वे कमज़ोर और बेबस होते हैं और इस बर्फ़ को निगलकर मर सकते हैं। बेवक़ूफ़ कहीं की! बच्चे को फेंकना ही था तो यह आँधी-पानी निकल जाने देती, कोई बढ़िया सूखी रात इसके लिए चुनती। मेंह-पानी से मुक्त रात में उनके जीवित रहने की सम्भावना ज़्यादा हो सकती है और उनपर अधिक लोगों की नज़र पड़ सकती है। लेकिन ऐसी रात में भी क्या कोई घर से निकलता है?"

और यही सब सोचते-सोचते न जाने कब सेमागा फिर उस बच्चे के पास पहुँच गया और अपनी गोदी में उसने उसे उठा लिया। उसकी माँ को सम्बोधित करने में वह इतना डूबा था कि उसे ख़ुद पता नहीं चला कि कब और कैसे यह सब हो गया। लेकिन उसने बच्चे को उठा अपने कोट के भीतर छिपा लिया। और उसकी माँ को आख़िरी और सबसे तेज़ डाँट पिलाने के बाद वह फिर अपने रास्ते पर चल दिया। उसका हृदय भारी था और उतना ही दयनीय, जितना दयनीय कि वह बच्चा, जिसके लिए उसका हृदय इतना उमड़-घुमड़ रहा था।

बच्चा क्षीण भाव से किलबिला और चूँ-चूँ की धीमी आवाज़ कर रहा था जो भारी ऊनी कोट और सेमागा के भारी पंजे से दबी वहीं खो जाती थी। कोट के नीचे फटी कमीज़ के सिवा सेमागा और कुछ नहीं पहने था, सो उसे बच्चे के नन्हे बदन की गरमाई अनुभव करने में देर नहीं लगी।

"एइयू, नन्हे बरखुरदार!" बर्फ़ के बीच बढ़ते हुए वह बुदबुदाया, "राह में मिले मेरे साथी, तेरा मामला सचमुच में गड़बड़ है। आसार अच्छे नज़र नहीं आते। भला बता तो सही, तेरा मैं क्या करूँगा? और तेरी वह माँ...बस...बस, चुपचाप पड़ा रह। कहीं नीचे न गिर पड़ना!"

लेकिन बच्चा किलबिलाता रहा और अपनी कमीज़ के छेद में से उसके होंठों के गर्म स्पर्श का उसने अनुभव किया। उसके होंठ उसकी छाती पर कसमसा रहे थे।

सेमागा सहसा रुककर एकदम निश्चल खड़ा हो गया और चकित आवाज़ में ज़ोरों से कह उठा –

"अरे, यह स्तन की टोह में है। अपनी माँ के स्तन की! ओ भगवान! अपनी माँ के स्तन की!"

और, जाने क्यों, सेमागा का समूचा बदन थरथरा उठा – शायद लज्जा से, शायद भय से – किसी ऐसे भाव से, जो विचित्र था, बहुत ही प्रबल, दुखद और हृदयविदारक।

"मुझे अपनी माँ समझता है, जंगली कहीं का, इतनी भी अक़्ल नहीं! आख़िर तेरा इरादा क्या है? और तू मुझसे चाहता क्या है? भाई मेरे, मैं एक फ़ौजी आदमी हूँ, और एक चोर, अगर तू जानना ही चाहता है तो!"

हवा की सायँ-सायँ में एक अजब वीरानगी महसूस हो रही थी।

"तुम्हें अब सो जाना चाहिए। समझे, अब चुपचाप सो जाओ। ऊँ-हुक, चीं-चीं न करो, सो जाओ। होंठों को क्या कसमसाते हो, एक बूँद पल्ले नहीं पड़ेगी। बस, सो जाओ। यह देखो, मैं तुम्हें एक लोरी सुनाता हूँ, हालाँकि यह काम मेरा नहीं, तुम्हारी माँ का है। हाँ तो, सो जा रे लल्ला, सो जा रे। बस, बस, अब सो जा, मैं कोई आया थोड़े ही हूँ!"

और सहसा सेमागा, अपने सिर को बच्चे की ओर ख़ूब नीचे झुकाये, धीमे और विलम्बित स्वरों में, हृदय की समूची कोमलता बटोरकर, गाने लगा –

तू हरजाई ज़रा न माई
करे क्यों कोई तुझसे प्यार

और इन बोलों को उसने ऐसे गाना शुरू किया जैसे लोरी गा रहा हो।

सफ़ेद अँधेरा अभी भी चारों ओर उमड़-घुमड़ रहा था और सेमागा बच्चे को अपने कोट में छिपाये पटरी पर बढ़ता जा रहा था। बच्चे का चिचियाना जारी था और चोर सेमागा कोमल स्वरों में गा रहा था –

जब होगी सुहानी रात,
करूँगा तुझसे दो-दो बात,
फिर खाकर तगड़ी लात
काँपेगा थरथर गात!

और उसके गालों पर से बूँदे लुढ़ककर नीचे तिरती आ रही थीं। हो न हो, यह पिघलती बर्फ़ की बूँदे थीं। रह-रहकर उसके बदन में एक

कँपकँपी-सी उठती, गला रुँध-सा और छाती पर एक बोझ-सा मालूम होता। इतनी वीरानगी का उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था जितनी की वह अब – इस सूनी सड़क पर, तूफ़ान के बीच, कोट के भीतर चूँ-चूँ करते बच्चे को छिपाये – चलते समय अनुभव कर रहा था।

लेकिन वह, फिर भी, बढ़ता ही गया।

पीछे से टापों की धुँधली आवाज़ सुनायी दी। घुड़सवार पुलिसमैनों की छाया-आकृतियाँ अँधेरे में उभरीं और देखते न देखते उसके बराबर में आ पहुँची।

एक साथ दो आवाज़ों ने पूछा –

"ऐ, कौन जा रहा है?"

"तेरा नाम क्या है?"

"और यह भीतर क्या छिपाये है? इसे बाहर निकाल, जल्दी!" अपने घोड़े को एकदम पटरी से सटाते हुए एक पुलिसमैन ने आदेश दिया।

"यह क्या? – अरे, यह तो बच्चा है!"

"तेरा नाम?"

"सेमागा...आख़्तीर-निवासी।"

"ओ-हो! वही जिसकी हमें टोह थी। सीधे, मेरे घोड़े के आगे-आगे चले चलो!"

"मैं और बच्चा, घरों की ओट में ही चलें तो अच्छा हो। यहाँ सड़क पर हवा बहुत तेज़ है। बीच सड़क हमारे लिए ज़रा भी ठीक जगह नहीं है, हम तो ऐसे ही जाम हो रहे हैं।"

पुलिसमैनों के कुछ पल्ले नहीं पड़ा कि वह क्या कह रहा है, लेकिन उन्होंने उसे घरों की ओट में ही चलने दिया जबकि वह ख़ुद, जहाँ तक बन सकता था, निकट रहते हुए अपने घोड़ों पर उसके साथ-साथ चलने लगे।

इस प्रकार उनकी निगरानी में सेमागा ने पुलिस स्टेशन तक समूचा रास्ता पार किया।

"सो तुम लोगों ने उसे गिरफ़्तार कर लिया, कर लिया न? यह बहुत अच्छा हुआ," दफ़्तर प्रवेश करने पर पुलिस-चीफ़ ने उनसे कहा।

"और यह बच्चा? इसका मैं क्या करूँ?" अपने सिर को झटकाते

हुए सेमागा ने पूछा।

"यह क्या? कैसा बच्चा?"

"यह है। सड़क पर पड़ा था। यह देखिये।"

और सेमागा ने कोट के भीतर से उसे बाहर निकाल लिया। बच्चा उसके हाथों में लिंजबिज पड़ा था।

"लेकिन यह मरा है!" पुलिस-चीफ़ चिल्ला उठा।

"मरा है?" सेमागा ने दोहराया। झुककर उसने नन्हे बण्डल की ओर देखा और फिर उसे मेज़ पर रख दिया।

"क्या तमाशा है," उसाँस भरते हुए उसने कहा, "और मैं भी इसे एकदम सीधे उठा लाया। कौन जाने, अगर मैं इसे वहीं...लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। मैंने इसे उठाया और इसके बाद फिर नीचे रख दिया।"

"यह क्या बड़बड़ा रहे हो?" पुलिस-चीफ़ ने पूछा।

सेमागा ने अपने इधर-उधर खोई हुई नज़र से देखा।

बच्चे के मरने के साथ-साथ वे सब भाव भी ज़्यादातर मर चुके थे जिनका कि सड़क पर चलते समय उसने अनुभव किया था।

यहाँ वह सर्द अफ़सरशाही से घिरा था, जेल और अदालत के सिवा उसे और कुछ नज़र नहीं आता था। आहत होने की चेतना ने उसके हृदय को उमेठा। बच्चे के मृत शरीर की ओर उसने देखा। उसकी नज़र में विक्षोभ था। एक आह भरते हुए बोला –

"तुम भी एक ही रहे! तुम्हारी ख़ातिर मैं पकड़ा गया और नतीजा कुछ नहीं। मैं था कि सोच रहा था...लेकिन तुम अपनी करनी से बाज़ न आये और मेरे शरीर पर ही मर गये। वाह!"

और सेमागा ज़ोरों से अपनी कनपटी खुजलाने लगा।

"इसे ले जाओ!" सेमागा की ओर गरदन से इशारा करते हुए चीफ़ ने कहा।

सो वे उसे ले गये।

और बस।

(1895)

कहानी - एक पाठक

रात काफ़ी हो गयी थी जब मैं उस घर से विदा हुआ जहाँ मित्रों की एक गोष्ठी के सम्मुख अपनी प्रकाशित कहानियों में से एक का मैंने अभी पाठ किया था। उन्होंने तारीफ़ के पुल बाँधने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी और मैं धीरे-धीरे मगन भाव से सड़क पर चल रहा था। मेरा हृदय आनन्द से छलछला रहा था और जीवन के सुख का एक ऐसा अनुभव मैं कर रहा था जैसकि पहले कभी नहीं किया था।

फ़रवरी का महीना था, रात साफ़ थी और खूब तारों से जड़ा बादलरहित आकाश धरती पर स्फूर्तिदायक शीतलता का संचार कर रहा था जो नई गिरी बर्फ़ से सोलहों सिंगार किये थी। बाड़ों के ऊपर से पेड़ों की टहनियाँ झूल आयी थीं और मेरे पथ पर छायादार बेलबूटों के अजीब व ग़रीब नमूने डाल रही थीं। चाँद की कोमल नीली रोशनी में हिम-कण आनन्द से चमचमा रहे थे। आस-पास कोई भी जीव नज़र नहीं आ रहा था और मेरे जूतों के नीचे बर्फ़ के कचरने की आवाज़ के सिवा अन्य कोई आवाज़ उस स्वच्छ और स्मरणीय रात की निस्तब्ध ता को भंग नहीं कर रही थी।

"इस धरती पर, लोगों की नज़रों में, कुछ होना कितना अच्छा लगता है," मैंने सोचा।

और अपने भविष्य के चित्र में उजले रंग भरने में मेरी कल्पना ने कोई कोताही नहीं की।

"हाँ, तुमने बहुत ही बढ़िया एक नन्ही प्यारी-सी चीज़ लिखी है, इसमें कोई शक नहीं," मेरे पीछे कोई गुनगुना उठा।

मैं अचरज से चौंका और घूमकर देखा।

काले कपड़े पहने एक छोटे कद का आदमी आगे बढ़कर निकट आ गया और पैनी लघु मुस्कान के साथ मेरे चेहरे पर उसने अपनी आँखें जमा दीं। उसकी हर चीज़ पैनी मालूम होती थी – उसकी नज़र, उसकी गालों की हड्डियाँ, उसकी दाढ़ी, जो बकरी की भाँति नोकदार थी, उसका समूचा छोटा और मुरझाया-सा ढाँचा, जो कुछ इतना विचित्र

नोक-नुकीलापन लिये था कि आँखों में गड़ता था। उसकी चाल हल्की और नि:शब्द थी, ऐसा मालूम होता था जैसे बर्फ़ पर तिर रहा हो। गोष्ठी में जो लोग मौजूद थे, उनमें वह मुझे नज़र नहीं आता था और इसीलिए उसकी टिप्पणी ने मुझे चकित कर दिया था। वह कौन था? और कहाँ से आया था?

"क्या आपने...मतलब...मेरी कहानी सुनी थी?" मैंने पूछा।

"हाँ, मुझे उसे सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

उसकी आवाज़ तेज़ थी। उसके पतले होंठ और छोटी काली मूँछे थीं जो उसकी मुस्कुराहट को नहीं छिपा पाती थीं। मुस्कुराहट उसके होंठों से विदा होने का नाम नहीं लेती थी और यह मुझे बड़ा अटपटा मालूम हो रहा था। ऐसा लगता था जैसे वह मुस्कान मेरे बारे में उसके आलोचनात्मक मूल्यांकन पर – जो कि एकदम तीखा और अप्रिय था – पर्दा डाल रही हो। लेकिन उस समय मेरा चित कुछ इतना प्रसन्न था कि अपने साथी की इस विशिष्टता से मैं अधिक देर तक उलझा नहीं रह सका। एक छाया की भाँति वह मेरी आँखों के सामने उभरी और मेरी आत्मश्लाघा के उजले प्रकाश में तेज़ी के साथ विलीन हो गयी। मैं उसके साथ-साथ चल रहा था और अचरज कर रहा था कि जाने क्या वह कहेगा, साथ ही अपने हृदय में यह गुप्त आशा भी सँजोये था कि वह उन सुखद क्षणों में और अधिक वृद्धि ही करेगा जिनका कि उस साँझ में मैंने उपभोग किया था। ऐसे सुखद क्षणों का किसे लालच नहीं?

"अपनेआप को अन्य सबसे अनोखा अनुभव करना बड़ा सुखद मालूम होता है। क्यों, ठीक है न?" मेरे साथी ने पूछा।

मुझे इस प्रश्न में ऐसी कोई बात नहीं मालूम हुई जो साधारण से बाहर या अलग हो। सो मुझे सहमति प्रकट करने में देर नहीं लगी।

"हो-हो-हो!" वह तीखी हँसी हँसा, पंजेनुमा पतली उँगलियों से अपने छोटे हाथों को खुजलाते हुए।

"तुम बड़े हँसमुख जीव मालूम होते हो," मैंने रूखी आवाज़ में कहा। कारण, उसकी हँसी ने मुझे अपमानित कर दिया था।

"अरे हाँ, बहुत," मुस्कुराते और सिर हिलाते हुए उसने पुष्टि की, "साथ ही मैं बाल की खाल निकालनेवाला भी हूँ क्योंकि मैं हमेशा

चीज़ों को जानना चाहता हूँ, हर चीज़ को जानना चाहता हूँ। मेरी यह जिज्ञासा भी मेरा साथ नहीं छोड़ती और वही मुझे इतना अधिक मगन रखती है। फ़िलहाल, मिसाल के लिए, मैं जानना चाहूँगा कि क्या मूल्य चुकाकर तुमने अपनी यह सफलता प्राप्त की है?"

मैंने सिर झुकाकर उसके छोटे कद पर एक नज़र डाली और बिना किसी उछाह के जवाब दिया –

"क़रीब एक मास की मेहनत। शायद इससे कुछ अधिक।"

पंजे फैलाकर वह मेरे शब्दों पर झपटा –

"ओह, ज़रा-सी मेहनत और ज़रा-सा जीवन का अनुभव, जिसके लिए हमेशा थोड़ा बहुत मूल्य चुकाना पड़ता है। लेकिन उस कृति का यह कोई भारी मूल्य नहीं है जिसे पढ़कर हज़ारों हज़ार लोग आज तुम्हारे विचारों को अपने मस्तिष्क में उतार रहे हैं। तिसपर तुर्रा यह कि तुम अपने मन में इस आशा के भी पुल बाँध रहे हो कि आगे चलकर – हो-हो-हो! – शायद उस समय, जब तुम मर जाओगे – हो-हो-हो! आशा की जा सकती थी कि ऐसी कृतियों की उपलब्धि के एवज़ में तुम अधिक दोगे – अधिक, यानी उससे अधिक, जो कि अब तक तुमने दिया है। क्यों, क्या तुम ऐसा नहीं सोचते?"

और वह फिर अपनी तीखी हँसी हँसा और बींध डालने वाली अपनी काली आँखों से मेरी ओर देखता रहा। मैंने, अपने क़द की ऊँचाई से, एक नज़र उस पर डाली और ठण्डी आवाज़ में पूछा –

"माफ़ करना, लेकिन क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझे यह किससे बातें करने का सौभाग्य..."

"मैं कौन हूँ? क्या तुम अनुमान नहीं लगा सकते? जो हो, मैं फ़िलहाल तुम्हें नहीं बताऊँगा। क्या तुम्हें आदमी का नाम उस बात से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मालूम होता है जो कि वह कहने जा रहा है?"

"निश्चय ही नहीं, लेकिन यह कुछ...बहुत ही अजीब है," मैंने जवाब दिया।

उसने मेरी आस्तीन पकड़ उसे एक हल्का-सा झटका दिया।

"होने दो अजीब," शान्त हँसी के साथ उसने कहा, "निश्चय ही आदमी कभी कदास जीवन की साधारण और आम सीमाओं को लाँघने में आनाकानी नहीं करता। अगर तुम्हें आपत्ति न हो तो आओ, दोनों

एक-दूसरे से खुलकर बातें करें। समझ लो कि मैं तुम्हारा एक पाठक हूँ – एक विचित्र प्रकार का पाठक, जो यह जानना चाहता है कि कैसे और किस उद्देश्य के लिए कोई पुस्तक लिखी गयी है, मिसाल के लिए जैसे तुम्हारी अपनी लिखी हुई पुस्तक। बोलो, इस तरह की बातचीत पसन्द करोगे?"

"ओह, ज़रूर," मैंने कहा, "मुझे ख़ुशी होगी। ऐसे आदमी से बात करने का अवसर रोज़-रोज़ नहीं मिलता।" लेकिन मैंने यह झूठ कहा। कारण कि मुझे यह सब अत्यन्त नागवार मालूम हो रहा था। "आख़िर उसकी मन्शा क्या है?" मैंने सोचा, "फिर इसमें क्या तुक है कि पूर्णतया अजनबी आदमी के साथ अपनी इस आकस्मिक भेंट को लेकर एक वाद-विवाद को जन्म दिया जाये?"

फिर भी मैं उसके साथ-साथ चलता रहा – धीमे डगों से, शिष्टाचार के नाते ऐसी मुद्रा बनाये मानो मैं उसकी बात ध्यान से सुन रहा हूँ और यह – मुझे याद है – एक कठिन काम था। लेकिन चूँकि मेरा वह प्रसन्न मूड अभी तक बना हुआ था और बातचीत से इन्कार करके उस भले आदमी को मैं आहत नहीं करना चाहता था, इसलिए मैं किसी तरह अपनेआप को सँभाले रहा।

चाँद हमारे पीछे – पीठ की ओर – चमक रहा था और हमारी परछाइयों को सामने – आगे की ओर – फेंक रहा था। वे मिलकर एकाकार हो गयी थीं – एक काला धब्बा, जो हमारे आगे-आगे बर्फ़ पर फिसल रहा था। उसे देखते समय मुझे लगा जैसे मेरे हृदय में कोई ऐसी चीज़ उभर और उमड़-घुमड़ रही है जो हमारी परछाइयों की भांति अस्पष्ट तथा पकड़ में न आने वाली थी – एक ऐसी चीज़, जो, उन्हीं की भाँति, सप्रयास सदा आगे बढ़ती मालूम होती थी।

मेरा साथी क्षणभर के लिए चुप हो गया और फिर, उस आदमी के विश्वास के साथ, जो अपने विचारों का पूर्ण स्वामी होता है, उसने कहा –

"मानवीय व्यवहार में निहित उद्देश्यों-इरादों से अधिक विचित्र और महत्त्वपूर्ण चीज़ इस दुनिया में और कोई नहीं है। तुम यह मानते हो न?"

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी।

"ठीक। तब आओ, ज़रा खुलकर बातें करें, और तुम्हें – अपनी इस किशोरावस्था के रहते – खुलकर बात कहने का एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।"

"अजीब पंछी है," मैंने सोचा, लेकिन उसके शब्दों ने मुझे उलझा लिया था।

"सो तो ठीक," मैंने मुस्कुराते हुए कहा, "लेकिन हम बातें किस चीज़ के बारे में करेंगे?"

पुराने परिचित की भाँति उसने घनिष्ठता से मेरी आँखों में देखा।

"साहित्य के उद्देश्यों के बारे में, क्यों, ठीक है न?"

"अच्छी बात है। डर केवल यही है कि देर काफ़ी हो गयी है..."

"ओह, तुम्हारे लिए अभी देर नहीं हुई।"

मैं ठिठक गया। उसके शब्दों ने मुझे स्तब्ध कर दिया था। इतनी गम्भीरता के साथ उसने इन शब्दों का उच्चारण किया था कि वे भविष्य का उद्घोष मालूम होते थे। मैं ठिठक गया, अपने होंठों पर एक प्रश्न लिए, लेकिन उसने मेरी बाँह पकड़ी और चुपचाप किन्तु दृढ़ता से आगे बढ़ चला।

"रुको नहीं। मेरे साथ तुम सही रास्ते पर हो," उसने कहा, "काफ़ी भूमिका बाँध चुके, मुझे अब यह बताओ – साहित्य का उद्देश्य क्या है? तुम उस लक्ष्य को साधते हो, सो तुम्हें मालूम होना चाहिए।"

मेरा अचरज बढ़ता और अपनेआप को सँभाले रखने का मेरा प्रयत्न खटाई में पड़ता जा रहा था। आख़िर यह आदमी मुझसे चाहता क्या है? और वह है कौन?

"देखो," मैंने कहा, "तुम उससे इन्कार नहीं कर सकते जो कि हम दोनों के बीच घट रहा है..."

"मेरा विश्वास करो, यह अकारण ही नहीं है। सच तो यह है कि बिना कारण इस दुनिया में कोई भी चीज़ नहीं घटती। लेकिन छोड़ो, अब ज़रा जल्दी करें – आगे की ओर बढ़ने की नहीं, बल्कि गहराई में उतरने की।"

बिलाशक वह एक दिलचस्प नमूना था, लेकिन मैं उससे खीझ उठा। धीरज का बाँध तोड़ मैं फिर आगे की ओर लपका। लेकिन वह भी पीछे न रहा। साथ आते हुए शान्त भाव से बोला –

"मैं समझता हूँ। एकाएक साहित्य के उद्देश्य की व्याख्या करना तुम्हारे लिए कठिन है। सो मैं ही इसकी कोशिश कर दूँगा।"

उसने एक गहरी साँस ली और मुस्कुराते हुए आँखें ऊँची कर मेरी ओर देखा।

"शायद मेरी बात से तुम सहमत होगे अगर मैं कहूँ कि साहित्य का उद्देश्य है – ख़ुद अपने को जानने में मानव की मदद करना, उसके आत्मविश्वास को दृढ़ बनाना और सत्य का पता लगाने की उसकी कोशिशों का समर्थन करना, लोगों में जो अच्छाई है उसका उद्घाटन करना और बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकना, लोगों के हृदयों में शर्म, गुस्सा और साहस की चिंगारी जगाना, ऊँचे उद्देश्यों के लिए शक्ति बटोरने में उनकी मदद करना और सौन्दर्य की पवित्र भावना से उनके जीवन को शुभ्र बनाना। तो यह है मेरी व्याख्या। स्पष्ट ही यह एक ख़ाका-मात्र और अधूरी है, तुम इसमें जीवन को परिष्कृत करने वाली अन्य चीज़ें भी जोड़ सकते हो, लेकिन मुझे यह बताओ – क्या तुम इसे मानते हो?"

"हाँ," मैंने कहा, "कमोबेश यह सही है। यह सभी मानते हैं कि साहित्य का उद्देश्य लोगों को और अच्छा बनाना है।"

"देखो न, कितने ऊँचे लक्ष्य को तुम साधते हो?" मेरे साथी ने गम्भीरता के साथ बल देते हुए कहा और फिर अपनी वही तेज़ाबी हँसी हँसने लगा, "हो-हो-हो!"

"लेकिन मुझे यह सब बताने का तुम्हारा मतलब क्या है?" उसकी हँसी के प्रति उपेक्षा जताते हुए मैंने पूछा।

"तुम ख़ुद क्या समझते हो?"

"एकदम साफ़ बात सुनना चाहते हो तो," मैंने कहना शुरू किया और कोई ऐसी बात मैं सोचने लगा जो उसे झुलसाकर रख दे, लेकिन ऐसी बात मुझे मिली नहीं। लेकिन एकदम साफ़ बात कहते किसे हैं? यह आदमी मूर्ख तो था नहीं। उससे क्या यह छिपा होगा कि एक आदमी कितनी तेज़ी से साफ़ बात की सीमा-रेखा पर पहुँच जाता है और कितनी ईर्ष्या के साथ व्यक्ति के गर्व की भावना इस सीमा-रेखा की रक्षा करती है? मैंने अपने साथी की आँखों में झाँककर देखा और उसकी मुस्कुराहट से घायल हो मुँह फेर लिया। कितना व्यंग्य और घृण

ा भरी थी उसमें। मुझे लगा जैसे भय ने मेरे हृदय में सिर उठाना शुरू कर दिया हो, और इस भय के कारण मैं वहाँ से खिसकना चाहने लगा।

"अच्छा तो विदा," मैंने थोड़े में कहा और अपना हैट उठा लिया।

"लेकिन क्यों?" वह चकित भाव से बोला।

"व्यावहारिक मज़ाक़ मुझे एक सीमा तक ही अच्छे लगते हैं।"

"और इसलिए तुम जा रहे हो? अच्छी बात है, तुम्हारी मर्ज़ी। लेकिन अगर तुम इस वक़्त मुझे छोड़कर चले गये तो तुम और मैं फिर कभी नहीं मिल सकेंगे।"

उसने 'कभी नहीं' शब्दों पर ख़ास तौर से बल दिया, इस हद तक कि वे मातमी घण्टे की ध्वनि की भाँति मेरे कानों में गूँज उठे। मैं इन शब्दों में घिन्नाता और डरता हूँ, मुझे वे सर्द और बोझिल मालूम होते हैं, लोगों की आशाओं को चकनाचूर करनेवाले हथौड़े की भाँति। सो मेरे पाँवों में उसने बेड़ियाँ-सी डाल दीं और मैं रुक गया।

"आख़िर तुम मुझसे चाहते क्या हो?" मैं दुख और खीझ से चीख़ उठा।

"बैठ जाओ," उसने फिर एक लघु हँसी हँसते और मेरा हाथ पकड़कर मुझे नीचे की ओर खींचते हुए कहा।

तब हम नगर-बाग़ की एक वीथिका में थे। चारों ओर बबूल और लिलक की नंगी बर्फ़ की परत चढ़ी टहनियाँ दिखायी पड़ रही थीं। वे चाँद की रोशनी में चमचमाती मेरे सिर के ऊपर भी छाई थीं और ऐसा मालूम होता था जैसे ये कड़कीली टहनियाँ, बर्फ़ का कवच पहने, मेरे सीने को बेध सीधे हृदय तक पहुँच गयी हों।

मैंने बिना एक शब्द कहे अपने साथी की ओर देखा। उसके व्यवहार ने मुझे उलझन और चक्कर में डाल दिया था।

"इसके दिमाग़ का कोई पुर्ज़ा ढीला मालूम होता है," मैंने सोचा और उसके व्यवहार की इस व्याख्या से अपने मन को सन्तोष देने की कोशिश की।

"शायद तुम सोचते हो कि मेरा दिमाग़ कुछ चल गया है," उसने जैसे मेरे भावों को ताड़ते हुए कहा, "लेकिन ऐसे ख़याल को अपने दिमाग़ से निकाल दो। यह नुक़सानदेह और तुम्हारे योग्य नहीं है। बजाय इसके कि हम उस आदमी को समझने की कोशिश करें जो हमसे भिन्न है,

इस बहाने की ओट लेकर हम कितनी जल्दी छुट्टी पा जाना चाहते हैं। मानव के प्रति मानव की दुखद उदासीनता का यह एक बहुत ही पुष्ट प्रमाण है।"

"ओह, ठीक है," मैंने कहा। मेरी खीझ बराबर बढ़ती ही जा रही थी, "लेकिन माफ़ करना, मैं अब चलूँगा। काफ़ी समय हो गया।"

"जाओ," अपने कन्धों को बिचकाते हुए उसने कहा, "जाओ, लेकिन यह जान लो कि तुम ख़ुद अपने से भाग रहे हो।" उसने मेरा हाथ छोड़ दिया और मैं वहाँ से चल दिया।

वह बाग़ में ही टीले पर रुक गया। वहाँ से वोल्गा नज़र आती थी जो अब बर्फ़ की चादर ताने थी और ऐसा मालूम होता था जैसे बर्फ़ की उस चादर पर सड़कों के काले फ़ीते टँके हों। सामने दूर तट के निस्तब्ध और उदासी में डूबे विस्तृत मैदान फैले थे। वह नहीं हिला और वहाँ पड़े बेंचों में से एक पर बैठा सूने मैदानों की ओर ताकता रहा। लेकिन मैं – अपने हृदय की इस पूर्व चेतना के बावजूद कि मैं उसे छोड़ नहीं सकता – वहाँ से चल दिया। और मैंने, बाग़ के गलियारे में चलते-चलते, सोचा, "अपने डगों को तेज़ करना ज़्यादा अच्छा होगा अथवा धीमा करना जिससे कि उसे – उस आदमी को, जो वहाँ बेंच पर बैठा है, यह मालूम हो जाय कि मुझे उसकी रत्तीभर भी परवाह नहीं है?"

सीटी की आवाज़ में, धीमे-धीमे वह एक परिचित गीत की धुन गुनगुना रहा था। वह एक उदास और मज़ेदार गीत था जिसमें एक अन्धा दूसरे अन्धे को रास्ता दिखाने का काम करता है। मुझे यह बड़ा अजीब मालूम हुआ कि उसने ठीक इसी गीत को क्यों चुना।

और तब, अचानक, मैंने अनुभव किया कि उसी क्षण से, जब इस छोटे-से आदमी से मेरी भेंट हुई, मैं विचित्र और असाधारण अनुभूतियों की एक अँधेरी भूल-भुलैया में भटक रहा हूँ। वह शान्त आनन्द, जिसका अभी कुछ देर पहले तक मेरा मन उपभोग कर रहा था, अब आशंकाओं के कुहरे में लिपट गया। ऐसा मालूम होता था जैसे कोई दुखद और बहुत भारी घटना घटने वाली हो।

मुझे उस गीत के बोल याद हो आये जिसे वह सीटी की आवाज़ में गुनगुना रहा था –

हमें क्या राह दिखाओगे
भटक जाते हो जब तुम ख़ुद?

मैंने घूमकर उसकी ओर देखा। अपनी कोहनी को घुटने पर और ठोड़ी को हथेली पर टिकाये, सीटी की आवाज़ में गुनगुनाता, वह मेरी ओर ही नज़र जमाये था और चाँदनी से चमकते उसके चेहरे पर उसकी नन्ही काली मूँछें फड़क रही थीं। मुझे लगा जैसे यह होनहार है, और मैंने उसके पास लौटने का निश्चय कर लिया। तेज़ डगों से मैं वहाँ पहुँचा और उसके बराबर में बैठ गया।

"देखो, अगर हमें बात करनी है तो सीधे-सादे ढंग से करनी चाहिए," मैंने आवेश से लेकिन अपने को सँभाले हुए कहा।

"लोगों को हमेशा सीधे-सादे ढंग से बातें करनी चाहिए," उसने सिर हिलाते हुए स्वीकार किया।

"यह मैं जानता हूँ कि मुझे प्रभावित करने की एक विचित्र शक्ति तुममें मौजूद है, और यह भी साफ़ है कि तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो। क्यों, मैं ठीक कहता हूँ न?"

"आख़िर तुमने मेरी बात सुनने का साहस तो प्रकट किया," उसने हँसते हुए कहा। लेकिन इस बार उसकी हँसी कर्कश नहीं थी और मुझे तो उसमें आह्लाद तक का आभास का अनुभव हुआ।

"हाँ तो अब अपनी बात शुरू करो," मैंने कहा, "और अगर हो सके तो अपने विचित्र रंग-ढंग को ज़रा दूर ही रखना।"

"ओह, बड़ी ख़ुशी से!" उसने कहा, "लेकिन यह तुम्हें भी मानना पड़ेगा कि अपने उस ढंग से काम लिए बिना मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित नहीं कर सकता था। आजकल सीधी-सादी और साफ़ बातों को अति नीरस और रूखी कहकर नज़रन्दाज़ कर दिया जाता है, लेकिन असल बात यह है कि हम ख़ुद ठण्डे और कठोर हो गये हैं और इसीलिए हम किसी भी चीज़ में गरमाई या कोमलता लाने में असमर्थ रहते हैं। हम तुच्छ कल्पनाओं और दिवा-स्वप्नों में रमना तथा अपनेआप को कुछ विचित्र और अनोखा जताना चाहते हैं। कारण कि जिस जीवन की हमने रचना की है, वह नीरस, बेरंग और उबा देने वाला है। जिस जीवन को हम कभी इतनी लगन और आवेश के साथ बदलने चले थे, उसने हमें कुचल और तोड़ डाला है। ऐसी हालत जब सामने हो

तब हम क्या करें? यही हमें देखना है। हो सकता है कि कल्पना, केवल संक्षिप्त काल के लिए ही सही, मानव को इस दुनिया से ऊपर उठने और उसमें अपनी खोई हुई जगह की थाह लेने में मदद दे। वह अब धरती का स्वामी नहीं रहा, बल्कि उसका एक दास-मात्र रह गया है। वह ख़ुद अपने सिरजे तथ्यों की पूजा करता है, उनसे नतीजे निकालता है और इसके बाद अपनेआप से कहता है – 'देखो, यह है अपरिवर्तनीय क़ानून।' और इस क़ानून के आगे सिर झुकाते समय वह नहीं जानता कि ऐसा करके उसने अपने रास्ते में एक दीवार खड़ी कर ली है जो उसे आज़ादी के साथ जीवन को बदलने से रोकेगी, उसके उस संघर्ष में बाधक होगी जो कि वह दीवारों को गिराने के अपने अधिकार के लिए करना चाहता है ताकि नये का निर्माण किया जा सके, और सच तो यह है कि वह अब संघर्ष का नाम तक नहीं लेता, बल्कि केवल परिस्थितियों के साथ अपनी पटरी बैठाने की – उनके अनुसार अपनेआप को ढालने की – कोशिश करता है। वह संघर्ष क्यों करे? वे आदर्श कहाँ हैं जो उसे वीरतापूर्ण कृत्यों की प्रेरणा दें? सो जीवन नीरस और अनाकर्षक बन गया है। और कुछ लोग हैं जो आँखें बन्द कर किसी ऐसी चीज़ को टोहते हैं जो उनके दिमाग़ों में पर लगाकर उन्हें आकाश में उड़ने योग्य बना दे और इस प्रकार उनके अपने आत्मविश्वास को फिर से जमा दे। लेकिन होता अक्सर यह है कि ऐसे लोग उस जगह से दूर भटक जाते हैं जहाँ ख़ुदा निवास करता है और जहाँ समूची मानव-जाति को एकजुट करनेवाले चिरन्तन सत्यों की खान मौजूद है। सचाई के पथ से जो भटके सो गये। उनका विनाश निश्चित है। मरने दो उन्हें। उनके बीच में न कोई दख़ल देने की ज़रूरत है, न उनपर व्यर्थ अपनी दया दिखाने की। यही करना हो तो अन्य लोग मौजूद हैं, सारी दुनिया उनसे भरी है। लेकिन महत्त्वपूर्ण चीज़ है ख़ुदा को खोजने-पाने की आकांक्षा, और जब तक ख़ुदा से लौ लगाने वाली आत्माएँ मौजूद हैं, वह उन्हें अपना अंश प्रदान करेगा और उनका साथ देगा, कारण कि वह पूर्णता के लिए किये जा रहे चिरन्तन प्रयास के सिवा और कुछ नहीं है। क्यों, मैं ठीक कहता हूँ न?"

"हाँ," मैंने कहा, "तुम्हारा कहना ठीक है।"

"तुम बड़ी जल्दी घुटने टेक देते हो," तीखी हँसी हँसते हुए मेरे

प्रतिवादी ने रिमार्क कसा। इसके बाद वह चुप हो गया और उसकी दृष्टि शून्य विस्तारों में खो गयी। वह इतनी देर तक चुप रहा कि मैंने उकताकर एक लम्बी उसाँस छोड़ी। इस पर – उसकी आँखें अभी भी शून्य में भटक रही थीं – उसने कहा –

"तुम्हारा ख़ुदा कौन है?"

अब तक वह मृदु और कोमल अन्दाज़ में बोल रहा था और उसे सुनना अच्छा मालूम हो रहा था। सोच-विचार के आदी सभी लोगों की भाँति वह भी कुछ उदासी में डूबा था। मैं उसकी ओर आकर्षित हुआ, मैंने उसे समझा और मेरी वह खीझ ग़ायब हो गयी। लेकिन उसने एक ऐसे घातक सवाल को निकालकर बाहर क्यों रखा जिसका जवाब देने में हमारे समय का कोई भी आदमी, जो अपने प्रति ईमानदारी बरतना चाहता है, कठिनाई का अनुभव करेगा? मेरा ख़ुदा कौन है? ओह, अगर मैं यह जानता होता!

मैं पस्त हो गया, और सच तो यह है – मेरी जगह अगर कोई अन्य होता तो क्या वह अपने को सँभाले रखता? अब उसने अपनी पैनी नज़र मुझपर जमा दी और मुस्कुराता हुआ मेरे उत्तर का इन्तज़ार करने लगा।

"अगर तुम्हारे पास इस सवाल का जवाब होता तो तुम इतनी देर न करते। अपने सवाल को अगर मैं इस तरह से रखूँ तो शायद तुम कुछ जवाब दे सको – तुम लेखक हो, और तुम जो लिखते हो उसे हज़ारों लोग पढ़ते हैं। तुम किस चीज़ का प्रचार करते हो? और क्या तुमने कभी अपने से यह पूछा है कि दूसरों को सीख देने का तुम्हें क्या अधिकार है?"

जीवन में पहली बार मैंने अपनी आत्मा को टटोला, उसे जाँचा-परखा। इससे कोई यह न सोचे कि लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए मैं अपनेआप को बड़ा या गिरा हुआ दिखाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, नहीं, भिखारियों से भीख नहीं माँगी जाती। और मैंने देखा कि उदार भावनाओं और आकांक्षाओं का मुझमें अभाव हो, ऐसा नहीं है, मुझमें भी अपने हिस्से के वे गुण मौजूद हैं जो आमतौर से अच्छे गुण कहे जाते हैं, लेकिन वे बिखरे हुए थे, किसी सर्वप्रभावशाली भावना के साथ – किसी ऐसी सुस्पष्ट और संगतिपूर्ण कल्पना के साथ, जो जीवन को उसके सम्पूर्ण रूप में देखती हो, एकजुट नहीं थे। घृणा का मेरे हृदय

में बाहुल्य था, वह हर घड़ी धुआँ देती रहती थी और कभी-कभी गुस्से की तेज़ लपटों में भड़क उठती थी। लेकिन इससे भी अधिक प्राधन्य था सन्देह का, जो कभी-कभी मेरे मस्तिष्क को इस हद तक बेकार कर देता था, मेरी आत्मा को इस हद तक कचोट डालता था कि मेरा जीवन, लम्बी अवधियों के लिए, शून्य बनकर रह जाता था। कोई चीज़ ऐसी नहीं थी जो जीवन में मेरी दिलचस्पी को जगा सकती। मेरा हृदय मौत की भाँति सर्द और मेरा मस्तिष्क जड़ हो जाता, मेरी कल्पना दु:स्वप्नों के चंगुल में फँस जाती। इस प्रकार लम्बे दिन और लम्बी रातें मैं बिताता – गूँगा, बहरा और अन्धा, इच्छाओं से शून्य, समझने की शक्ति से शून्य। मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मेरा यह शरीर लोथ बन चुका है और केवल किसी अनबूझ ग़लतफ़हमी के कारण दफ़नाने से बचा हुआ है। और यह चेतना कि मुझे जीवित रहना है – क्योंकि मौत और भी ज़्यादा अन्धकारपूर्ण, और भी ज़्यादा निरर्थक थी – जीवन की उस भयानकता को और भी विकट बना देती। जीवन की वह एक ऐसी स्थिति थी जो, बिला शक, मानव को घृणा करने के सुख से भी वंचित कर देती है।

हाँ, तो मैं – जैसा और जो कुछ भी मैं था – किस चीज़ का प्रचार करता था? लोगों से कहने के लिए मेरे पास क्या था? क्या वे ही सब चीज़ें, जिन्हें युगों-युगों तक कहा गया और हमेशा कहा जाता तथा हमेशा सुना जाता है, लेकिन आदमी को बदले और अच्छा बनाये बिना? और इन विचारों तथा नीति-वचनों का प्रचार करने का मुझे क्या हक़ है जबकि मैं खुद – घुट्टी के साथ उन्हें पेट में उतारने के बाद भी – अक्सर उनकी सीखों के अनुसार अमल नहीं कर पाता? और जब खुद मैंने उनके ख़िलाफ़ आचरण किया, तब क्या यह सिद्ध नहीं होता कि उनकी सचाई में मेरा विश्वास एक सच्चा विश्वास नहीं है, उसकी जड़ें सीधे मेरे अहम की नींव में गहरी नहीं जमी हैं? इस आदमी को मैं क्या जवाब दूँ जो मेरी बग़ल में बैठा है?

लेकिन उसने, मेरे जवाब की प्रतीक्षा से ऊबकर, अब फिर बोलना शुरू कर दिया था –

"मैं तुमसे ये सवाल न करता अगर मैं यह न देखता होता कि महत्त्वाकांक्षा ने आत्मसम्मान की तुम्हारी भावना को अभी तक नष्ट

नहीं किया है। तुममें मेरी बात सुनने का साहस है, और इससे मैं यह नतीजा निकालता हूँ कि तुम्हारा अहं-प्रेम संगत है। कारण कि उसमें वृद्धि करने की तुममें इतनी गहरी लगन है कि तुम यन्त्रणा तक से बचकर नहीं भागते। इसलिए तुमपर जो अभियोग मैंने लगाये थे, उन्हें मैं मुलायम कर दूँगा और तुम्हें अब एक ऐसा आदमी मानकर सम्बोधित करूँगा जो निर्दोष तो नहीं है, लेकिन फिर भी जिसे अपराधी नहीं कहा जा सकता।"

"एक समय था जब यह धरती लेखन-कला-विशारदों, जीवन और मानव-हृदय के अध्येताओं और ऐसे लोगों से आबाद थी जो दुनिया को अच्छा बनाने की प्रबल आकांक्षा से अनुप्राणित और मानव-प्रकृति में गहरा विश्वास रखते थे। उन्होंने पुस्तकें लिखीं जो कभी विस्मृति के गर्भ में विलीन नहीं होंगी। कारण, वे अमर सचाइयों को अंकित करती हैं और उनके पन्नों से कभी न मलिन होनेवाला सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है। उनमें चित्रित पात्र जीवन के सच्चे पात्र हैं, कारण कि प्रेरणा ने उनमें जान फूँकी है। इन पुस्तकों में साहस है, दहकता हुआ गुस्सा और उन्मुक्त तथा सच्चा प्रेम है, और उनमें एक भी शब्द भर्ती का नहीं है। तुमने, मैं जानता हूँ, ऐसी ही पुस्तकों से अपनी आत्मा के लिए पोषण ग्रहण किया है। लेकिन फिर भी तुम्हारी आत्मा उसे पचा नहीं सकी। कारण कि सत्य और प्रेम के बारे तुम जो लिखते हो, वह झूठा और अनुभूति-शून्य ध्वनित होता है। लगता है जैसे शब्द ज़बरदस्ती मुँह से निकल रहे हो। चाँद की भाँति तुम दूसरे की रोशनी से चमकते हो, और यह रोशनी भी बुरी तरह मलिन है – वह परछाइयाँ ख़ूब डालती है, लेकिन आलोक कम देती है और गरमाई तो उसमें ज़रा भी नहीं है। तुम ख़ुद इतने ग़रीब हो कि दूसरों को ऐसी कोई चीज़ नहीं दे सकते जो वस्तुतः मूल्यवान हो और जब तुम देते भी हो तो सर्वोच्च सन्तोष की इस सजग अनुभूति के साथ नहीं कि तुमने सुन्दर विचारों और शब्दों की निधि में वृद्धि करके जीवन को सम्पन्न बनाया है, बल्कि अपनी सत्ता के सांयोगिक तथ्य को अत्यन्त आवश्यक घटना मानकर उसे ऊँचे सिंहासन पर बैठाने के लिए। तुम केवल इसलिए देते हो कि जीवन और लोगों से अधिकाधिक ले सको। तुम इतने ग़रीब हो कि उपहार भेंट नहीं कर सकते, तुम सूदख़ोर हो और अनुभव के टुकड़ों

का लेन-देन करते हो – इसलिए कि तुम ख्याति के रूप में सूद बटोर सको। तुम्हारी लेखनी चीज़ों की सतह को ही खरोंचती है, जीवन की तुच्छ परिस्थितियों को तुम बेकार में ही कुरेदते-कोंचते हो, और चूँकि तुम साधारण लोगों के साधारण भावों का वर्णन करते हो, इसलिए हो सकता है कि अनेक साधारण-महत्त्वहीन-सचाइयों से उनकी झोली भर जाती हो। लेकिन क्या तुम, नाम-मात्र को ही सही, ऐसे भरम की भी रचना कर सकते हो जो मानव की आत्मा को ऊँचा उठाने की क्षमता रखता हो? नहीं! तो क्या तुम सचमुच इसे इतना महत्त्वपूर्ण समझते हो – इस बात को कि सभी जगह छितरे कूड़े के ढेरों को कुरेदा जाये, जहाँ सत्य के काले टुकड़ों के सिवा और कुछ नहीं मिलता, और सिद्ध किया जाये कि मानव बुरा, मूर्ख और सम्मान की भावना से बेख़बर है, यह कि वह पूर्णतया और हमेशा के लिए बाह्य परिस्थितियों का ग़ुलाम है और यह कि वह कमज़ोर, दयनीय और एकदम अकेला है? अगर तुम मुझसे पूछो तो वे मानव के हृदय में यह विश्वास जमाने में सफल भी हो चुके हैं कि वास्तव में ऐसा ही है। तुम्हीं देखो कि मानव का मस्तिष्क आज कितना ठस और उसकी आत्मा के तार कितने बे-आवाज़ हो गये हैं। और यह कोई अचरज की बात नहीं है। वह अपनेआप को उसी रूप में देखता है जैसाकि वह पुस्तकों में पेश किया जाता है...और पुस्तकें – ख़ास तौर से प्रतिभा का भ्रम पैदा करने वाली वाक्-चपलता से लिखी हुई – पाठकों को हतबुद्धि कर एक हद तक उन्हें अपने वश में कर लेती हैं। पुस्तक में अपने को देखते समय – जैसाकि तुम उसे पेश करते हो – उसे अपना भोंड़ापन तो नज़र आता है, लेकिन यह नज़र नहीं आता कि उसके सुधार की भी कोई सम्भावना हो सकती है। क्या तुममें इस सम्भावना को उभारकर रखने की क्षमता है? लेकिन यह तुम कैसे रख सकते हो जबकि ख़ुद तुम.. .जाने दो, मैं तुम्हारी भावनाओं को चोट नहीं पहुँचाऊँगा। यह इसलिए कि मेरी बात को काटने या अपनेआप को सही ठहराने की कोशिश किये बिना तुम मेरी बात सुन रहे हो। यह अच्छा है एक शिक्षक के लिए, अगर उसमें ईमानदारी है तो वह हमेशा एक अच्छा – ध्यान से सुननेवाला – छात्र होगा। आजकल तुम सब शिक्षक (सीख देनेवाले) लोग जनता को उतना देते नहीं जितना कि उससे लेते हो। कारण कि

तुम केवल उनकी कमज़ोरियों का ही ज़िक्र करते हो, सिवा उनके और कुछ उनमें नहीं देखते। लेकिन निश्चय ही आदमी में गुण भी होते हैं, खुद तुम में क्या नहीं हैं? तुम? सच पूछो तो तुम क्या उन बेरंग लोगों से किसी मानी में भी भिन्न हो जिनका कि तुम इतना कुरेद-कुरेदकर और इतनी निर्ममता से चित्रण करते हो? तुम अपनेआप को मसीहा के रूप में देखते हो। समझते हो कि बुराइयों को खोलकर रखने के लिए खुद ईश्वर ने तुम्हें इस दुनिया में भेजा है ताकि अच्छाइयों की विजय हो। लेकिन बुराइयों को अच्छाइयों से छाँटते समय क्या तुमने यह नहीं देखा कि ये दोनों, धागे के दो गेंदों की भाँति, एक-दूसरे से उलझी हैं? एक गेंद का धागा काला है और दूसरे का सफ़ेद, और चूँकि वे उलझे हैं इसलिए वे भूरे बन गये हैं – दोनों ने एक-दूसरे के रंग पर अपने रंग का असर डाला है। और मुझे तो इसमें भी भारी सन्देह है कि खुदा ने तुम्हें अपना मसीहा बनाकर भेजा है। अगर वह भेजता तो इसके लिए तुमसे कहीं ज़्यादा मज़बूत इन्सानों को चुनता। और उनके हृदयों में जीवन, सत्य और लोगों के प्रति गहरे प्रेम की जोत जगाता ताकि वे अन्धकार में उसके गौरव और शक्ति का उद्घोष करने वाली मशालों की भाँति आलोक फैलायें। तुम लोग तो शैतान की मोहर दाग़ने वाली छड़ की भाँति धुआँ देते हो। और यह धुआँ लोगों के मस्तिष्क और हृदयों में सरसराता हुआ आत्मविश्वासहीनता के भावों से उन्हें भर देता है। मुझे यह बताओ – तुम क्या सीख देते हो?"

मैंने अपने गाल पर उसकी गर्म साँस का स्पर्श अनुभव किया और उसकी आँखों का सामना करने से बचने के लिए मैंने अपना मुँह मोड़ लिया। उसके शब्दों ने अँगारों की भाँति मेरे मस्तिष्क को झुलसा दिया। मैं आतंकित हो उठा – यह सोचकर कि उसके सीधे-सादे सवालों का जवाब देना कितना कठिन है। और मैंने उनका जवाब नहीं दिया।

"और इसलिए मैं – तुमने और तुम्हारी जाति के अन्य लोगों ने जो कुछ भी लिखा है उस सबका एक सचेत पाठक – तुमसे पूछता हूँ – तुम क्यों लिखते हो? संयोगवश तुमने काफ़ी लिखा है। क्या इसलिए कि लोगों के हृदयों में शुभ भावनाएँ जाग्रत हों? लेकिन अपने ठण्डे और थोथे शब्दों से तुम कभी ऐसा नहीं कर सकोगे। केवल इतना ही नहीं कि तुम जीवन में कोई नयी वृद्धि करने में असमर्थ हो, बल्कि

पुराने को भी तुम इतनी चुड़ी-मुड़ी शक्ल में पेश करते हो कि सुस्पष्ट चित्र कहीं उभरकर नहीं आते। तुम्हारी कृतियाँ कुछ नहीं सिखातीं और पाठक सिवा तुम्हारे अन्य किसी चीज़ पर लज्जा का अनुभव नहीं करता। उनकी हर चीज़ आम-साधारण है – आम-साधारण लोग, आम-साधारण विचार, आम-साधारण घटनाएँ। आत्मा के विद्रोह और आत्मा के पुनर्जागरण की आवश्यकता के बारे में लोग कब बोलना शुरू करेंगे? रचनात्मक जीवन की वह ललकार कहाँ है, वीरत्व के दृष्टान्त और प्रोत्साहन के वे शब्द कहाँ हैं जिन्हें सुनकर आत्मा आकाश की ऊँचाइयों को छूती है?

"शायद तुम कहो – 'जो कुछ हम पेश करते हैं, उसके सिवा जीवन में अन्य नमूने मिलते कहाँ हैं?' न, ऐसी बात मुँह से न निकालना। यह लज्जा और अपमान की बात है कि वह, जिसे भगवान ने लिखने की शक्ति प्रदान की है, जीवन के सम्मुख अपनी पंगुता और उससे ऊपर उठने में अपनी असमर्थता को स्वीकार करे। अगर तुम्हारा स्तर भी वही है जो कि जीवन का, अगर तुम्हारी कल्पना ऐसे नमूनों की रचना नहीं कर सकती जो जीवन में मौजूद न रहते हुए भी उसे सुधारने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, तब तुम्हारा कृतित्व किस मर्ज़ की दवा है और तुम्हारे धन्धे की क्या सार्थकता रह जाती है? लोगों के दिमाग़ों को उनके घटनाविहीन जीवन के फ़ोटोग्राफ़िक चित्रों का गोदाम बनाते समय अपने हृदय पर हाथ रखकर पूछो कि ऐसा करके क्या तुम नुक़सान नहीं पहुँचा रहे हो? कारण – और तुम्हें अब यह तुरत स्वीकार कर लेना चाहिए – कि तुम जीवन का ऐसा चित्र पेश करने का ढंग नहीं जानते जो लज्जा की एक प्रतिशोधपूर्ण चेतना को जन्म दे, जीवन के नये रूपों की रचना करने की प्रज्ज्वलित आकांक्षा को उजागर करे। क्या तुम जीवन की नब्ज को तेज़ और उसमें स्फूर्ति का संचार करना जानते हो, जैसाकि अन्य लोग कर चुके हैं?"

मेरा विचित्र सम्भाषणकर्ता रुक गया और मैं, बिना कुछ बोले, उसके शब्दों पर सोचता रहा।

"अपने चारों ओर ऐसे लोग तो मुझे काफ़ी नज़र आते हैं जो चतुर हैं, लेकिन नेक बहुत कम नज़र आते हैं, और ये कम भी ऐसे हैं जिनकी आत्मा खण्डित और रुग्ण है। और, जाने क्यों, मेरा निरीक्षण

मुझे हमेशा एक उसी नतीजे पर पहुँचाता है – एक आदमी जितना अच्छा और उसकी आत्मा जितनी अधिक ईमानदार तथा बेदाग़ होती है उसकी शक्ति का भण्डार उतना ही अधिक क्षीण, उसकी आत्मा उतनी ही अधिक रुग्ण और उसका जीवन उतना ही अधिक कठिनाइयों में फँसा नज़र आता है। ऐसे लोग अदबदाकर एकाकी और दयनीय होते हैं। अपने समूचे हृदय से किसी अच्छे जीवन को आकांक्षा करने के बावजूद उनमें यह शक्ति नहीं होती कि वे उसकी रचना कर सकें। क्या यह सम्भव नहीं है कि उनके इस हद तक पस्त और पंगु होने का कारण केवल यह हो कि ठीक उस समय, जबकि उन्हें बढ़ावा मिलना चाहिए था, आवश्यक शब्द का किसी ने उच्चारण नहीं किया?...

"एक बात और," मेरा विचित्र साथी कहता गया, "क्या तुम ऐसी आह्लादपूर्ण हास्य की रचना कर सकते हो जो आत्मा का सारा मैल धो डाले? देखो न, लोग एकदम भूल गये हैं कि ठीक ढंग से कैसे हँसा जाता है? वे कुत्सा से हँसते हैं, वे कमीनेपन से हँसते हैं, वे अक्सर अपने आँसुओं को बेधकर हँसते हैं, लेकिन वे हृदय के उस समूचे उल्लास से कभी नहीं हँसते जिससे बड़े लोगों के पेट में बल पड़ जाते हैं, पसलियाँ बोलने लगती हैं। अच्छी हँसी एक स्वास्थ्यप्रद चीज़ है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोग हँसें, आख़िर यह क्षमता उन गिनी-चुनी चीज़ों में से एक है जो मानव को पशु से अलग करती है। क्या तुम सिवा फटकार के अन्य किसी प्रकार की हँसी को भी जन्म दे सकते हो – उस बाज़ारू हँसी के, जो मानव जीवधरियों को अपना शिकार बनाती है, और वे केवल इसीलिए, हँसी के पात्र बनते हैं कि उनकी स्थिति दयनीय है? यह समझने की कोशिश करो कि सीख देने का तुम्हारा अधिकार उन सच्चे भावों को जाग्रत करने की तुम्हारी क्षमता पर निर्भर करता है जो, हथौड़े की चोटों की भाँति, जीवन को सीमित करनेवाले पुराने रूपों को चकनाचूर और नष्ट कर दें ताकि अधिक प्रशस्त रूपों का निर्माण किया जा सके। ग़ुस्सा, घृणा, साहस, शर्म उकताना और, सबसे अन्त में, विक्षुब्ध झनझनाती निराशा – ये ऐसे अस्त्र हैं जिनके द्वारा इस धरती पर कोई भी चीज़ नष्ट की जा सकती है। क्या तुम ऐसे अस्त्रों की रचना कर सकते हो? और क्या तुम उनसे काम लेना जानते हो? तुम्हें अपने हृदय में मानव की कमज़ोरियों

के लिए महान घृणा का या साधारण मानव के लिए महान प्रेम का – उसके दुखों की आग में जन्मे प्रेम का – पोषण करना चाहिए। तभी तुम लोगों को सम्बोधित करने के अधिकारी बन सकोगे। अगर तुम इन दोनों में से न इसका अनुभव करते हो और न उसका, तो सिर नीचा रखो और कुछ कहने से पहले सौ बार सोचो।"

सुबह की सफ़ेदी अब फूट चली थी। लेकिन मेरे हृदय में अँधेरा गहरा हो गया था। और यह आदमी, जो मेरे अन्तर के सभी भेदों से वाक़िफ़ था, अभी भी बोल रहा था। रह-रहकर मुझे ख़याल होता कि कहीं यह छलावा तो नहीं है?

लेकिन उसकी बातों ने मुझे इतना उलझा लिया था कि इस सवाल पर मैं अधिक ध्यान नहीं दे सका। उसके शब्द अब फिर सुइयों की भाँति मेरे कानों को बींध रहे थे –

"इस सबके बावजूद जीवन पहले से प्रशस्त और गहरा होता जा रहा है, लेकिन यह बढ़ती धीमी गति से हो रही है। कारण कि इस गति को तेज़ बनाने योग्य न तो तुम्हारे पास शक्ति है, न ज्ञान है। जीवन बढ़ रहा है और लोग दिन प्रतिदिन अधिक और अधिक जानना और पूछताछ करना चाहते हैं। उनके सवालों का जवाब कौन दे? यह तुम्हारा – तुम्हारे जैसे लोगों का, जो अपनेआप मसीहा बन बैठे हैं, काम है। लेकिन क्या तुम जीवन में इतने गहरे पैठे हो कि उसे दूसरों के सामने खोलकर रख सको? क्या तुम जानते हो कि समय की माँग क्या है, क्या तुम्हें भविष्य की जानकारी है और क्या तुम अपने शब्दों से उस आदमी में नयी जान फूँक सकते हो जिसे जीवन की नीचता ने भ्रष्ट और निराश कर दिया है? उसका हृदय पस्त है, जीवन की कोई उमंग उसमें नहीं है, भला जीवन बिताने की आकांक्षा तक को उसने विदा कर दिया है और केवल सुअर की भाँति वह अब जीवन बिताना चाहता है, और – सुन रहे हो न – उपहास से भरी मुसकुराहट उसके होंठों पर खेल जाती है जब 'आदर्श' शब्द का कोई उसके सामने उच्चारण करता है। ह्रास-ग्रस्त वह हड्डियों का एक पुंज बन गया है जो मांस और मोटी चमड़ी से ढँका है, और हड्डियों का यह पुंज आत्मा से नहीं बल्कि लालसा से – वासना से – हिलता-डोलता और हरक़त करता है। उसे तुम्हारी बेहद ज़रूरत है। जल्दी करो और इससे पहले कि

उसका मानवीय रूप अन्तिम रूप से उससे विदा हो उसे जीने का ढंग बताओ। लेकिन तुम किस प्रकार उसमें जीवन की चाह जगा सकते हो जबकि तुम बुदबुदाने और भुनभुनाने और रोने-झींकने या उसके पतन की एक निष्क्रिय तस्वीर खींचने के सिवा और कुछ नहीं करते? ह्रास की गन्ध धरती को घेरे है, लोगों के हृदयों में कायरता और दासता समा गयी है, काहिली की नरम ज़ंजीरों ने उनके दिमाग़ों और हाथों को जकड़ लिया है, और इस घिनौने जंजाल को तोड़ने के लिए तुम क्या करते हो? तुम कितने छिछले और कितने नगण्य हो, और कितनी बड़ी संख्या है तुम जैसे लोगों की! ओह, अगर एक भी ऐसी आत्मा का उदय हुआ होता – कठोर और प्रेम में पगी, मशाल की भाँति प्रकाश देने वाले हृदय और सर्वव्यापी महान मस्तिष्क से सज्जित! तब भविष्यगर्भित शब्द घण्टे की ध्वनि की भाँति इस शर्मनाक ख़ामोशी में गूँज उठते और शायद इन जीवित मुर्दों की घिनौनी आत्माओं में भी कुछ सरसराहट दौड़ती..."

यह कह वह फिर चुप हो गया। मैंने उसकी ओर नहीं देखा। याद नहीं पड़ता कि कौन-सा भाव मेरे हृदय में तब छाया था – शर्म का अथवा डर का।

"बोलो, तुम्हें मुझसे कुछ कहना है?" उसने असंलग्न भाव से पूछा।

"कुछ नहीं," मैंने जवाब दिया।

इसके बाद फिर ख़ामोशी छा गयी।

"तुम्हारे जीवन का अब क्या कार्यक्रम है?"

"मैं नहीं जानता," मैंने जवाब दिया।

"तुम क्या लिखोगे?"

मैं चुप रहा।

"मौन उच्चतम बुद्धिमानी का मन्त्र है।"

उसके इन शब्दों और उनके बाद में प्रकट होने वाली उसकी हँसी के बीच जो शून्य बीता उसने मेरे मस्तिष्क की तमाम शिराओं को झँझोड़कर रख दिया। और जब वह हँसा तो आह्लाद से छलछलाता हुआ – उस आदमी की हँसी की भाँति, जो इतने सहज भाव और आनन्द के साथ हँसने के अवसर की प्रतीक्षा में जाने कब से अपनेआप को रोके हुए था। उसकी यह मारू हँसी सुनकर मेरा हृदय ख़ून के आँसू रो उठा।

"हो-हो-हो! और तुम्हारा यह हाल है – तुम्हारा, जिसे दूसरों को जीने का ढंग सिखाना है? तुम्हारा, जो इतनी जल्दी सकपका जाते हो? लेकिन यह मैं अब दावे के साथ कहता हूँ कि तुम मन ही मन जान गये हो कि मैं कौन हूँ? हो-हो-हो! और तुम अन्य युवक भी, जो माँ के पेट से बुढ़ापा लेकर आते हैं, मुझसे वास्ता पड़ने पर इसी प्रकार सकपका उठेंगे। केवल वही, जो झूठ, उद्धतपन और बेशर्मी का कवच धारण किये हैं, अपनी आत्मा के फ़ैसले की आवाज़ सुनकर नहीं मसकते। सो यही है तुम्हारी दृढ़ता – एक धक्का खाया और तुम उलटे हो गये। बोलो अपने बचाव में एक शब्द, केवल एक ही शब्द कहो, मैंने जो कुछ कहा है उसकी सच्चाई से इनकार करो, अपने हृदय से दुख और लज्जा का बोझ उतार फेंको, एक क्षण के लिए ही सही मज़बूती और आत्मविश्वास का परिचय दो, तब मैं वह सबकुछ वापस ले लूँगा जो कि मैंने कहा है। मैं तुम्हारे आगे माथा झुका दूँगा। अपनी आत्मा के उस गुण का कम से कम कुछ तो परिचय दो जिसने तुम्हें शिक्षक बनने का अधिकार दिया है। मैं ख़ुद सीख लेना चाहता हूँ। आख़िर मैं भी एक आदमी ही हूँ। मैं जीवन की इस अन्धी भूल-भुलैया में खो गया हूँ और ऐसे पथ की खोज में हूँ जो मुझे प्रकाश, सचाई, सौन्दर्य और जीवन के एक नये रूप की ओर ले जाये। मुझे वह रास्ता दिखाओ। मैं आदमी हूँ। मुझसे घृणा करो, कोड़ों की मार मुझे दो, लेकिन उदासीनता के इस गर्त से मुझे उबारो। मैं जो कुछ हूँ उससे अच्छा बनना चाहता हूँ, लेकिन कैसे? मुझे सिखाओ कि ऐसा किस प्रकार हो सकता है?"

और मैंने सोचा, "क्या मैं यह कर सकता हूँ? क्या मैं उन माँगों को तुष्ट कर सकता हूँ जिन्हें इस आदमी ने वाजिबी तौर से मेरे सामने रखा है? जीवन की चिंगारियाँ बुझ रही हैं, सन्देह की काली छायाएँ अधिकाधिक घनी होकर लोगों के दिमाग़ों को घेर रही हैं, बाहर निकलने का कोई न कोई रास्ता खोजना होगा, यह रास्ता कौन-सा हो सकता है? एक बात मैं जानता हूँ कि सुख-समृद्धि का मूल्य क्या है। जीवन की सार्थकता सुख-समृद्धि में नहीं है, अपने में भरमाये रहना भी मानव को अधिक देर तक सन्तुष्ट नहीं रख सकता – सबकुछ होते हुए भी, आख़िर, वह उससे ऊपर है। जीवन की सार्थकता किसी

लक्ष्य के लिए मानव की कोशिशों के सौन्दर्य और शक्ति में निहित है, और यह आवश्यक है कि उसके अस्तित्व का प्रत्येक क्षण अपने ऊँचे उद्देश्य से अनुप्राणित हो। और ऐसा होना सम्भव है। लेकिन जीवन के पुराने ढाँचे के रहते नहीं, जो आत्मा को कुण्ठित-सीमित और उसे उसकी आज़ादी से वंचित कर देता है।"

एक बार फिर मेरा साथी हँसा, लेकिन इस बार शान्ति के साथ – उस आदमी की हँसी की भाँति, जिसके हृदय में विचारों का घुन लगा हो।

"इस धरती पर जाने कितने आदमी जन्म लेते हैं, फिर भी अपने पद-चिह्न छोड़ जानेवाले महान आदमियों की संख्या कितनी कम है! ऐसा क्यों है? अतीत में, जहन्नुम में जाये वह अतीत! उसकी याद हृदय में केवल ईर्ष्या का संचार करती है, कारण कि वर्तमान में ऐसा कोई नहीं है जिससे यह आशा हो कि अपने मरने के बाद इस धरती पर वह अपना ज़रा-सा भी चिह्न छोड़ जायेगा। मानव ऊँघ रहा है और उसे जगानेवाला कोई नहीं है। वह ऊँघ रहा है और पलटकर जंगली जीव बनता जा रहा है। उसे कोड़ों की मार की – एक के बाद एक कोड़ों की वर्षा की – और प्रेम में पगे दुलार की ज़रूरत है। इस बात की चिन्ता न करो कि उसे चोट लगेगी। अगर, प्रेम करते हुए, तुम उसे कोड़ों की मार देते हो तो वह बुरा न मानेगा और कोड़ों की मार को सुअर्जित पुरस्कार समझ स्वीकार करेगा। और जब वह यातना तथा लज्जा भुगत चुके, तब उन्मुक्त होकर अपने दुलार से उसे छा दो, वह एक नया आदमी बन जायेगा। लोग निरे बच्चे होते हैं, बावजूद इसके कि कभी-कभी उनके कृत्यों की कुटिलता और उनके मस्तिष्क की विकृति हमें स्तब्ध कर देती हैं। प्रेम और ताज़े तथा स्वस्थ आध्यात्मिक भोजन की उनकी भूख कभी कम नहीं होती। क्या तुम लोगों से प्रेम करने की क्षमता रखते हो?"

"लोगों से प्रेम करना?" मैंने दुविधा से दोहराया। कारण, मुझे बेशक पता नहीं था कि मैं लोगों से प्रेम करता हूँ अथवा नहीं। सचमुच, मुझे यह पता नहीं था। कौन है जो अपने बारे में कह सके, "देखो, तुम्हारे सामने एक ऐसा आदमी हाज़िर है जो लोगों से प्रेम करता है!" अपने व्यवहार की सावधानी से परख करनेवाला आदमी, काफ़ी सोचने के

बाद भी, शायद यह कहने का साहस नहीं करेगा कि "मैं प्यार करता हूँ।" हम सभी जानते हैं कि हर आदमी के और उसके पड़ोसी के बीच कितनी बड़ी खाई ख़ुदी है।

"तुम कुछ जवाब नहीं देते? लेकिन इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। तुम्हें मैं समझता हूँ। अच्छा, तो मैं अब चला।"

"इतनी जल्दी!" मैंने धीमी आवाज़ में कहा। कारण, मैं उससे चाहे जितना भी भयभीत था, लेकिन उससे भी अधिक मैं ख़ुद अपने से डरता था।

"हाँ, मैं जा रहा हूँ। लेकिन मैं फिर लौटकर आऊँगा। मेरी प्रतीक्षा करना!"

और वह चला गया।

लेकिन क्या वह सचमुच चला गया? मैंने उसे जाता हुआ नहीं देखा। वह इतनी तेज़ी और ख़ामोशी से ग़ायब हो गया जैसे छाया। मैं वहीं बाग़ में बैठा रहा – जाने कितनी देर तक, न मुझे ठण्ड का पता था, न इस बात का कि सूरज उग आया है और पेड़ों की बर्फ़ से ढकी टहनियों पर चमक रहा है। और जब मैंने इधर ध्यान दिया जो बड़ा अजीब-सा मालूम हुआ वह उजला दिन, सूरज सदा की भाँति उसी असंलग्न भाव से चमक रहा था और पुरानी धरती, युग-युग के दुखों को अपने हृदय में समेटे, बर्फ़ की चादर ओढ़े पड़ी थी। सूरज की किरणें उस चादर पर पड़ रही थीं और वह इतनी तेज़ी से चमचमा रही थी कि आँखें चौंधिया जाती थीं...

(1895-98)

कहानी – करोड़पति कैसे होते हैं

संयुक्त राज्य अमेरिका के इस्पात और तेल के सम्राटों और बाकी सम्राटों ने मेरी कल्पना को हमेशा तंग किया है। मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि इतने सारे पैसेवाले लोग सामान्य नश्वर मनुष्य हो सकते हैं।

मुझे हमेशा लगता रहा है कि उनमें से हर किसी के पास कम से कम तीन पेट और डेढ़ सौ दाँत होते होंगे। मुझे यकीन था कि हर करोड़पति सुबह छः बजे से आधी रात तक खाना खाता रहता होगा। यह भी कि वह सबसे महँगे भोजन भकोसता होगा: बत्तखें, टर्की, नन्हे सूअर, मक्खन के साथ गाजर, मिठाइयाँ, केक और तमाम तरह के लज़ीज़ व्यंजन। शाम तक उसके जबड़े इतना थक जाते होंगे कि वह अपने नीग्रो नौकरों को आदेश देता होगा कि वे उसके लिए खाना चबाएँ ताकि वह आसानी से उसे निगल सके। आखिरकार जब वह बुरी तरह थक चुकता होगा, पसीने से नहाया हुआ, उसके नौकर उसे बिस्तर तक लाद कर ले जाते होंगे। और अगली सुबह वह छः बजे जागता होगा अपनी श्रमसाध्य दिनचर्या को दुबारा शुरू करने को।

लेकिन इतनी ज़बरदस्त मेहनत के बावजूद वह अपनी दौलत पर मिलने वाले ब्याज का आधा भी खर्च नहीं कर पाता होगा।

निश्चित ही यह एक मुश्किल जीवन होता होगा। लेकिन किया भी क्या जा सकता होगा? करोड़पति होने का फ़ायदा ही क्या अगर आप और लोगों से ज़्यादा खाना न खा सकें?

मुझे लगता था कि उसके अन्तर्वस्त्र बेहतरीन कशीदाकारी से बने होते होंगे। उसके जूतों के तलुवों पर सोने की कीलें ठुकी होती होंगी और हैट की जगह वह हीरों से बनी कोई टोपी पहनता होगा। उसकी जैकेट सबसे महँगी मखमल की बनी होती होगी। वह कम से कम पचास मीटर लम्बी होती होगी और उस पर सोने के कम से कम तीन सौ बटन लगे होते होंगे। छुट्टियों में वह एक के ऊपर एक आठ जैकेटें और छः पतलूनें पहनता होगा। यह सच है कि ऐसा करना अटपटा होने के साथ साथ असुविधापूर्ण भी होता होगा... लेकिन एक करोड़पति जो इतना रईस हो बाकी लोगों जैसे कपड़े कैसे पहन सकता है...

करोड़पति की जेबें एक विशाल गड्ढे जैसी होती होंगी जिनमें वह समूचा चर्च,

संसद की इमारत और अन्य छोटी-मोटी ज़रूरतों को रख सकता होगा। लेकिन जहाँ एक तरफ मैं सोचता था कि इन महाशय के पेट की क्षमता किसी बड़े समुद्री जहाज़ के गोदाम जितनी होती होगी मुझे इन साहब की टाँगों पर फिट आने वाली पतलून के आकार की कल्पना करने में थोड़ी हैरानी हुई। अलबत्ता मुझे यकीन था कि वह एक वर्ग मील से कम आकार की रज़ाई के नीचे नहीं सोता होगा। और अगर वह तम्बाकू चबाता होगा तो सबसे नफीस किस्म का और एक बार में एक या दो पाउण्ड से कम नहीं। अगर वह नसवार सूँघता होगा तो एक बार में एक पाउण्ड से कम नहीं। पैसा अपनेआप को खर्च करना चाहता है...

उसकी उँगलियाँ अद्भुत तरीके से संवेदनशील होती होंगी और उनमें अपनी इच्छानुसार लम्बा हो जाने की जादुई ताकत होती होगी: मिसाल के तौर पर वह साइबेरिया में अंकुरित हो रहे एक डॉलर पर न्यूयार्क से निगाह रख सकता था और अपनी सीट से हिले बिना वह बेरिंग स्टेट तक अपना हाथ बढ़ाकर अपना पसन्दीदा फूल तोड़ सकता था।

अटपटी बात यह है कि इस सब के बावजूद मैं इस बात की कल्पना नहीं कर पाया कि इस दैत्य का सिर कैसा होता होगा। मुझे लगा कि वह सिर मांसपेशियों और हड्डियों का ऐसा पिण्ड होता होगा जिसे फ़कत हर एक चीज़ से सोना चूस लेने की इच्छा से प्रेरणा मिलती होगी। लब्बोलुआब यह कि करोड़पति की मेरी छवि एक हद तक अस्पष्ट थी। संक्षेप में कहूँ तो सबसे पहले मुझे दो लम्बी लचीली बाँहें नजर आती थीं। उन्होंने ग्लोब को अपनी लपेट में ले रखा था और उसे अपने मुँह की भूखी गुफा के पास खींच रखा था जो हमारी धरती को चूसता-चबाता जा रहा था: उसकी लालचभरी लार उसके ऊपर टपक रही थी जैसे वह तन्दूर में सिंका कोई स्वादिष्ट आलू हो।

आप मेरे आश्चर्य की कल्पना कर सकते हैं जब एक करोड़पति से मिलने पर मैंने उसे एक निहायत साधारण आदमी पाया।

एक गहरी आरामकुर्सी पर मेरे सामने एक बूढ़ा सिकुड़ा-सा शख्स बैठा हुआ था जिसके झुरीर्दार भूरे हाथ शान्तिपूर्वक उसकी तोंद पर धरे हुए थे। उसके थुलथुल गालों पर करीने से हज़ामत बनायी गयी थी और उसका ढुलका हुआ निचला होंठ बढ़िया बनी हुई उसकी बत्तीसी दिखला रहा था जिसमें कुछेक दांत सोने के थे। उसका रक्तहीन और पतला ऊपरी होंठ उसके दाँतों से चिपका हुआ था और जब वह बोलता था उस ऊपरी होंठ में ज़रा भी गति नहीं होती

थी। उसकी बेरंग आँखों के ऊपर भौंहें बिल्कुल नहीं थीं और सूरज में तपे हुए उसके सिर पर एक भी बाल नहीं था। उसे देखकर महसूस होता था कि उसके चेहरे पर थोड़ी और त्वचा होती तो शायद बेहतर होता या लाली लिए हुए वह गतिहीन और मुलायम चेहरा किसी नवजात शिशु के जैसा लगता था। यह तय कर पाना मुश्किल था कि यह प्राणी दुनिया में अभी अभी आया है या यहाँ से जाने की तैयारी में है...

उसकी पोशाक भी किसी साधारण आदमी की ही जैसी थी। उसके बदन पर सोना घड़ी, अँगूठी और दाँतों तक सीमित था। कुल मिलाकर शायद वह आधे पाउण्ड से कम था। आम तौर पर वह यूरोप के किसी कुलीन घर के पुराने नौकर जैसा नज़र आ रहा था...

जिस कमरे में वह मुझसे मिला उसमें सुविधा या सुन्दरता के लिहाज़ से कुछ भी उल्लेखनीय नहीं था। फर्नीचर विशालकाय था पर बस इतना ही था।

उसके फर्नीचर को देखकर लगता था कि कभी-कभी हाथी उसके घर तशरीफ लाया करते थे।

"क्या आप... आप... ही करोड़पति हैं?" अपनी आँखों पर अविश्वास करते हुए मैंने पूछा।

"हाँ, हाँ!" उसने सिर हिलाते हुए जवाब दिया।

मैंने उसकी बात पर विश्वास करने का नाटक किया और फैसला किया कि उसकी गप्प का उसी वक्त इम्तहान ले लूँ।

"आप नाश्ते में कितना गोश्त खा सकते हैं?" मैंने पूछा।

"मैं गोश्त नहीं खाता," उसने घोषणा की, "बस सन्तरे की एक फाँक, एक अण्डा और चाय का छोटा प्याला..."

बच्चों जैसी उसकी आँखों में धुँधलाए पानी की दो बड़ी बूँदों जैसी चमक आयी और मैं उनमें झूठ का नामोनिशान नहीं देख पा रहा था।

"चलिए ठीक है," मैंने संशयपूर्वक बोलना शुरू किया। "मैं आपसे विनती करता हूँ कि मुझे ईमानदारी से बताइए कि आप दिन में कितनी बार खाना खाते हैं?"

"दिन में दो बार," उसने ठण्डे स्वर में कहा। "नाश्ता और रात का खाना। मेरे लिए पर्याप्त होता है। रात को खाने में मैं थोड़ा सूप, थोड़ा चिकन और कुछ मीठा लेता हूँ। कोई फल। एक कप कॉफी। एक सिगार..."

मेरा आश्चर्य कद्दू की तरह बढ़ रहा था। उसने मुझे सन्तों की-सी निगाह से

देखा। मैं साँस लेने को ठहरा और फिर पूछना शुरू कियाः

"लेकिन अगर यह सच है तो आप अपने पैसे का क्या करते हैं?"

उसने अपने कन्धों को ज़रा उचकाया और उसकी आँखें अपने गड्ढों में कुछ देर लुढ़कीं और उसने जवाब दियाः

"मैं उसका इस्तेमाल और पैसा बनाने में करता हूँ..."

"किस लिए?"

"ताकि मैं और अधिक पैसा बना सकूँ..."

"लेकिन किसलिए?" मैंने हठपूर्वक पूछा।

वह आगे की तरफ झुका और अपनी कोहनियों को कुर्सी के हत्थे पर टिकाते हुए तनिक उत्सुकता से पूछाः

"क्या आप पागल हैं?"

"क्या आप पागल हैं?" मैंने पलटकर जवाब दिया।

बूढ़े ने अपना सिर झुकाया और सोने के दाँतों के बीच से धीरे-धीरे बोलना शुरू कियाः

"तुम बड़े दिलचस्प आदमी हो... मुझे याद नहीं पड़ता मैं कभी तुम्हारे जैसे आदमी से मिला हूँ..."

उसने अपना सिर उठाया और अपने मुँह को करीब-करीब कानों तक फैलाकर ख़ामोशी के साथ मेरा मुआयना करना शुरू किया। उसके शान्त व्यवहार को देख कर लगता था कि स्पष्टतः वह अपनेआप को सामान्य आदमी समझता था। मैंने उसकी टाई पर लगी एक पिन पर जड़े छोटे-से हीरे को देखा। अगर वह हीरा जूते की एड़ी जितना बड़ा होता तो मैं शायद जान सकता था कि मैं कहाँ बैठा हूँ।

"और अपने खुद के साथ आप क्या करते हैं?"

"मैं पैसा बनाता हूँ।" अपने कन्धों को तनिक फैलाते हुए उसने जवाब दिया।

"यानी आप नकली नोटों का धन्धा करते हैं" मैं ख़ुश होकर बोला मानो मैं रहस्य पर से परदा उठाने ही वाला हूँ। लेकिन इस मौके पर उसे हिचकियाँ आनी शुरू हो गयीं। उसकी सारी देह हिलने लगी जैसे कोई अदृश्य हाथ उसे गुदगुदी कर रहा हो। वह अपनी आँखों को तेज़-तेज़ झपकाने लगा।

"यह तो मसखरापन है," ठण्डा पड़ते हुए उसने कहा और मेरी तरफ एक सन्तुष्ट निगाह डाली। "मेहरबानी कर के मुझसे कोई और बात पूछिए," उसने निमंत्रित करते हुए कहा और किसी वजह से अपने गालों को जरा सा फुलाया।

मैंने एक पल को सोचा और निश्चित आवाज़ में पूछाः

"और आप पैसा कैसे बनाते हैं?"

"अरे हाँ! ये ठीकठाक बात हुई!" उसने सहमति में सिर हिलाया। "बड़ी साधारण-सी बात है। मैं रेलवे का मालिक हूँ। किसान माल पैदा करते हैं। मैं उनका माल बाजार में पहुँचाता हूँ। आपको बस इस बात का हिसाब लगाना होता है कि आप किसान के वास्ते बस इतना पैसा छोड़ें कि वह भूख से न मर जाये और आपके लिए काम करता रहे। बाकी का पैसा मैं किराये के तौर पर अपनी जेब में डाल लेता हूँ। बस इतनी-सी बात है।"

"और क्या किसान इससे सन्तुष्ट रहते हैं?"

"मेरे ख्याल से सारे नहीं रहते!" बालसुलभ साधारणता के साथ वह बोला "लेकिन वो कहते हैं ना, लोग कभी सन्तुष्ट नहीं होते। ऐसे पागल लोग आपको हर जगह मिल जायेंगे जो बस शिकायत करते रहते हैं..."

"तो क्या सरकार आपसे कुछ नहीं कहती?" आत्मविश्वास की कमी के बावजूद मैंने पूछा।

"सरकार?" उसकी आवाज़ थोड़ा गूँजी फिर उसने कुछ सोचते हुए अपने माथे पर उँगलियाँ फिरायीं। फिर उसने अपना सिर हिलाया जैसे उसे कुछ याद आया होः "अच्छा... तुम्हारा मतलब है वो लोग... जो वाशिंगटन में बैठते हैं? ना वो मुझे तंग नहीं करते। वो अच्छे बन्दे हैं... उनमें से कुछ मेरे क्लब के सदस्य भी हैं। लेकिन उनसे बहुत ज़्यादा मुलाकात नहीं होती... इसी वजह से कभी-कभी मैं उनके बारे में भूल जाता हूँ। ना वो मुझे तंग नहीं करते।" उसने अपनी बात दोहरायी और मेरी तरफ उत्सुकता से देखते हुए पूछाः

"क्या आप कहना चाह रहे हैं कि ऐसी सरकारें भी होती हैं जो लोगों को पैसा बनाने से रोकती हैं?"

मुझे अपनी मासूमियत और उसकी बुद्धिमत्ता पर कोफ्त हुई।

"नहीं," मैंने धीमे से कहा "मेरा ये मतलब नहीं था... देखिए सरकार को कभी-कभी तो सीधी-सीधी डकैती पर लगाम लगानी चाहिए ना..."

"अब देखिए!" उसने आपत्ति की। "ये तो आदर्शवाद हो गया। यहाँ यह सब नहीं चलता। व्यक्तिगत कार्यों में दखल देने का सरकार को कोई हक नहीं..."

उसकी बच्चों जैसी बुद्धिमत्ता के सामने मैं खुद को बहुत छोटा पा रहा था।

"लेकिन अगर एक आदमी कई लोगों को बर्बाद कर रहा हो तो क्या वह

व्यक्तिगत काम माना जायेगा?" मैंने विनम्रता के साथ पूछा।

"बबार्दी?" आँखें फैलाते हुए उसने जवाब देना शुरू किया। "बर्बादी का मतलब होता है जब मज़दूरी की दरें ऊँची होने लगें। या जब हड़ताल हो जाये। लेकिन हमारे पास आप्रवासी लोग हैं। वो ख़ुशी-ख़ुशी कम मज़दूरी पर हड़तालियों की जगह काम करना शुरू कर देते हैं। जब हमारे मुल्क में बहुत सारे ऐसे आप्रवासी हो जायेंगे जो कम पैसे पर काम करें और ख़ूब सारी चीजें ख़रीदें तब सब कुछ ठीक हो जायेगा।"

वह थोड़ा-सा उत्तेजित हो गया था और एक बच्चे और बूढ़े के मिश्रण से कुछ कम नज़र आने लगा था। उसकी पतली भूरी उँगलियाँ हिलीं और उसकी रूखी आवाज़ मेरे कानों पर पड़पड़ाने लगीः

"सरकार? ये वास्तव में दिलचस्प सवाल है। एक अच्छी सरकार का होना महत्वपूर्ण है। उसे इस बात का ख़्याल रहता है कि इस देश में उतने लोग हों जितनों की मुझे ज़रूरत है और जो उतना ख़रीद सकें जितना मैं बेचना चाहता हूँ; और मज़दूर बस उतने हों कि मेरा काम कभी न थमे। लेकिन उससे ज़्यादा नहीं! फिर कोई समाजवादी नहीं बचेंगे। और हड़तालें भी नहीं होंगी। और सरकार को बहुत ज़्यादा टैक्स भी नहीं लगाने चाहिए। लोग जो देना चाहें वह ले ले। इसको मैं कहता हूँ अच्छी सरकार।"

"वह बेवकूफ़ नहीं है। यह एक तयशुदा संकेत है कि उसे अपनी महानता का भान है।" मैं सोच रहा था। "इस आदमी को वाकई राजा ही होना चाहिए..."

"मैं चाहता हूँ," वह स्थिर और विश्वासभरी आवाज़ में बोलता गया "कि इस मुल्क में अमन-चैन हो। सरकार ने तमाम दार्शनिकों को भाड़े पर रखा हुआ है जो हर इतवार को कम से कम आठ घण्टे लोगों को यह सिखाने में ख़र्च करते हैं कि क़ानून की इज़्ज़त की जानी चाहिए। और अगर दार्शनिकों से यह काम नहीं होता तो सरकार फौज बुला लेती है। तरीका नहीं बल्कि नतीजा ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है। ग्राहक और मज़दूर को कानून की इज़्ज़त करना सिखाया जाना चाहिए। बस!" अपनी उँगलियों से खेलते हुए उसने अपनी बात पूरी की।

...

"और धर्म के बारे में आप का क्या ख्याल है?" अब मैंने प्रश्न किया जबकि वह अपना राजनीतिक दृष्टिकोण स्पष्ट कर चुका था।

"अच्छा!" उसने उत्तेजना के साथ अपने घुटनों को थपथपाया और बरौनियों

को झपकाते हुए कहा: "मैं इस बारे में भली बातें सोचता हूँ। लोगों के लिए धर्म बहुत ज़रूरी है। इस बात पर मेरा पूरा यकीन है। सच बताऊँ तो मैं ख़ुद इतवारों को चर्च में भाषण दिया करता हूँ... बिल्कुल सच कह रहा हूँ आपसे।"

"और आप क्या कहते हैं अपने भाषणों में?" मैंने सवाल किया।

"वही सब जो एक सच्चा ईसाई चर्च में कह सकता है!" उसने बहुत विश्वस्त होकर कहा। "देखिए मैं एक छोटे चर्च में भाषण देता हूँ और ग़रीब लोगों को हमेशा दयापूर्ण शब्दों और पितासदृश सलाह की ज़रूरत होती है... मैं उनसे कहता हूँ..."

"ईसामसीह के बन्दो! ईर्ष्या के दैत्य के लालच से ख़ुद को बचाओ और दुनियादारी से भरी चीज़ों को त्याग दो। इस धरती पर जीवन संक्षिप्त होता है: बस चालीस की आयु तक आदमी अच्छा मज़दूर बना रह सकता है। चालीस के बाद उसे फैक्ट्रियों में रोज़गार नहीं मिल सकता। जीवन कतई सुरक्षित नहीं है। काम के वक्त आपके हाथों की एक गलत हरकत और मशीन आपकी हड्डियों को कुचल सकती है। लू लग गयी और आपकी कहानी खत्म हो सकती है। हर कदम पर बीमारी और दुर्भाग्य कुत्ते की तरह आपका पीछा करते रहते हैं। एक ग़रीब आदमी किसी ऊँची इमारत की छत पर खड़े अन्धे आदमी जैसा होता है। वह जिस दिशा में जायेगा अपने विनाश में जा गिरेगा जैसा जूड के भाई फरिश्ते जेम्स ने हमें बताया है। भाइयो, आप को दुनियावी चीज़ों से बचना चाहिए। वह मनुष्य को तबाह करने वाले शैतान का कारनामा है। ईसामसीह के प्यारे बच्चो, तुम्हारा साम्राज्य तुम्हारे परमपिता के साम्राज्य जैसा है। वह स्वर्ग में है। और अगर तुम में धैर्य होगा और तुम अपने जीवन को बिना शिकायत किये, बिना हल्ला किये बिताओगे तो वह तुम्हें अपने पास बुलायेगा और इस धरती पर तुम्हारी कड़ी मेहनत के परिणाम के बदले तुम्हें ईनाम में स्थाई शान्ति बख़्शेगा। यह जीवन तुम्हारी आत्मा की शुद्धि के लिए दिया गया है और जितना तुम इस जीवन में सहोगे उतना ज़्यादा आनन्द तुम्हें मिलेगा जैसा कि ख़ुद फरिश्ते जूड ने बताया है।"

उसने छत की तरफ इशारा किया और कुछ देर सोचने के बाद ठण्डी और कठोर आवाज़ में कहाः

"हाँ, मेरे प्यारे भाइयो और बहनो, अगर आप अपने पड़ोसी के लिए चाहे वह कोई भी हो, इसे कुर्बान नहीं करते तो यह जीवन खोखला और बिल्कुल साधारण है। ईर्ष्या के राक्षस के सामने अपने दिलों को समर्पित मत करो। किस

चीज से ईर्ष्या करोगे? जीवन के आनन्द बस धोखा होते हैं; राक्षस के खिलौने। हम सब मारे जायेंगे। अमीर और ग़रीब, राजा और कोयले की खान में काम करने वाले मज़दूर, बैंकर और सड़क पर झाड़ू लगाने वाले। यह भी हो सकता है कि स्वर्ग के उपवन में आप राजा बन जायें और राजा झाड़ू लेकर रास्ते से पत्तियाँ साफ कर रहा हो और आपकी खायी हुई मिठाइयों के छिलके बुहार रहा हो। भाइयो, यहाँ इस धरती पर इच्छा करने को है ही क्या? पाप से भरे इस घने जंगल में जहाँ आत्मा बच्चों की तरह पाप करती रहती है। प्यार और विनम्रता का रास्ता चुनो और जो तुम्हारे नसीब में आता है उसे सहन करो। अपने साथियों को प्यार दो, उन्हें भी जो तुम्हारा अपमान करते हैं...”

उसने फिर से आँखें बन्द कर लीं और अपनी कुर्सी पर आराम से हिलते हुए बोलना जारी रखाः

“ईर्ष्या की उन पापी भावनाओं और लोगों की बात पर ज़रा भी कान न दो जो तुम्हारे सामने किसी की ग़रीबी और किसी दूसरे की सम्पन्नता का विरोधाभास दिखाती हैं। ऐसे लोग शैतान के कारिन्दे होते हैं। अपने पड़ोसी से ईर्ष्या करने से भगवान ने तुम्हें मना किया हुआ है। अमीर लोग भी निर्धन होते हैं: प्रेम के मामले में। ईसामसीह के भाई जूड ने कहा था अमीरों से प्यार करो क्योंकि वे ईश्वर के चहेते हैं। समानता की कहानियों और शैतान की बाकी बातों पर जरा भी ध्यान मत दो। इस धरती पर क्या होती है समानता? आपको अपने ईश्वर के सम्मुख एक-दूसरे के साथ अपनी आत्मा की शुद्धता की बराबरी करनी चाहिए। धैर्य के साथ अपनी सलीब धारण करो और आज्ञापालन करने से तुम्हारा बोझ हल्का हो जायेगा। ईश्वर तुम्हारे साथ है मेरे बच्चो और तुम्हें उसके अलावा किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है!”

बूढ़ा चुप हुआ और उसने अपने होंठों को फैलाया। उसके सोने के दाँत चमके और वह विजयी मुद्रा में मुझे देखने लगा। “आपने धर्म का बढ़िया इस्तेमाल किया,” मैंने कहा। “हाँ बिल्कुल ठीक! मुझे उसकी कीमत पता है।” वह बोला, “मैं अपनी बात दोहराता हूँ कि गरीबों के लिए धर्म बहुत ज़रूरी है। मुझे अच्छा लगता है यह। यह कहता है कि इस धरती पर सारी चीजें शैतान की हैं। और ऐ इन्सान, अगर तू अपनी आत्मा को बचाना चाहता है तो यहाँ धरती पर किसी भी चीज़ को छूने तक की इच्छा मत कर। जीवन के सारे आनन्द तुझे मौत के बाद मिलेंगे। स्वर्ग की हर चीज़ तेरी है। जब लोग इस बात पर विश्वास करते हैं तो उन्हें सम्हालना आसान हो जाता है। हाँ, धर्म एक चिकनाई की

तरह होता है। और जीवन की मशीन को हम इससे चिकना बनाते रहें तो सारे पुर्जे ठीकठाक काम करते रहते हैं और मशीन चलाने वाले के लिए आसानी होती है..."

"यह आदमी वाकई में राजा है," मैंने फैसला किया।

...

"शायद आप विज्ञान के बारे में कुछ कहना चाहेंगे?" मैंने शान्ति से सवाल किया।

"विज्ञान?" उसने अपनी एक उँगली छत की तरफ उठायी। फिर उसने अपनी घड़ी बाहर निकाली, समय देखा और उसकी चेन को अपनी उँगली पर लपेटते हुए उसे हवा में उछाल दिया। फिर उसने एक आह भरी और कहना शुरू किया:

"विज्ञान... हाँ मुझे मालूम है। किताबें। अगर वे अमेरिका के बारे में अच्छी बातें करती हैं तो वे उपयोगी हैं। मेरा विचार है कि ये कवि लोग जो किताबें-वितावें लिखते हैं बहुत कम पैसा बना पाते हैं। ऐसे देश में जहाँ हर कोई अपने धन्धे में लगा हुआ है किताबें पढ़ने का समय किसी के पास नहीं है...। हाँ और ये कवि लोग गुस्से में आ जाते हैं कि कोई उनकी किताबें नहीं खरीदता। सरकार को लेखकों को ठीकठाक पैसा देना चाहिए। बढ़िया खाया-पिया आदमी हमेशा ख़ुश और दयालु होता है। अगर अमेरिका के बारे में किताबें वाकई ज़रूरी हैं तो अच्छे कवियों को भाड़े पर लगाया जाना चाहिए और अमरीका की ज़रूरत की किताबें बनायी जानी चाहिए... और क्या।"

"विज्ञान की आपकी परिभाषा बहुत संकीर्ण है।" मैंने विचार करते हुए कहा।

उसने आँखें बन्द कीं और विचारों में खो गया। फिर आँखें खोलकर उसने आत्मविश्वास के साथ बोलना शुरू किया:

"हाँ, हाँ... अध्यापक और दार्शनिक... वह भी विज्ञान होता है। मैं जानता हूँ प्रोफेसर, दाइयाँ, दाँतों के डाक्टर, ये सब। वकील, डाक्टर, इंजीनियर। ठीक है, ठीक है। वो सब ज़रूरी हैं। अच्छे विज्ञान को ख़राब बातें नहीं सिखानी चाहिए। लेकिन मेरी बेटी के अध्यापक ने एक बार मुझे बताया था कि सामाजिक विज्ञान भी कोई चीज़ है...। ये बात मेरी समझ में नहीं आयी...। मेरे ख्याल से ये नुकसानदेह चीजें हैं। एक समाजशास्त्री अच्छे विज्ञान की रचना नहीं कर सकता। उनका विज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं होता। एडीसन बना रहा है ऐसा

विज्ञान जो उपयोगी है। फोनोगाफ और सिनेमा – वह उपयोगी है। लेकिन विज्ञान की इतनी सारी किताबें? ये तो हद है। लोगों को उन किताबों को नहीं पढ़ना चाहिए जिनसे उनके दिमागों में सन्देह पैदा होने लगें। इस धरती पर सब कुछ वैसा ही है जैसा होना चाहिए और उस सबको किताबों के साथ नहीं गड़बड़ाया जाना चाहिए।"

मैं खड़ा हो गया।

"अच्छा तो आप जा रहे हैं?"

"हाँ," मैंने कहा "लेकिन शायद चूँकि अब मैं जा रहा हूँ क्या आप मुझे बता सकते हैं करोड़पति होने का मतलब क्या है?"

उसे हिचकियाँ आने लगीं और वह अपने पैर पटकने लगा। शायद यह उसके हँसने का तरीका था।

"यह एक आदत होती है," जब उसकी साँस आयी तो वह ज़ोर से बोला।

"आदत क्या होती है?" मैंने सवाल किया।

"करोड़पति होना... एक आदत होती है भाई!"

कुछ देर सोचने के बाद मैंने अपना आखिरी सवाल पूछाः

"तो आप समझते हैं कि सारे आवारा, नशेड़ी और करोड़पति एक ही तरह के लोग होते हैं?"

इस बात से उसे चोट पहुँची होगी। उसकी आँखें बड़ी हुईं और गुस्से ने उन्हें हरा बना दिया।

"मेरे ख़्याल से तुम्हारी परवरिश ठीकठाक नहीं हुई है।" उसने ग़ुस्से में कहा।

"अलविदा," मैंने कहा।

वह विनम्रता के साथ मुझे पोर्च तक छोड़ने आया और सीढ़ियों के ऊपर अपने जूतों को देखता खड़ा रहा। उसके घर के आगे एक लॉन था जिस पर बढ़िया छँटी हुई घनी घास थी। मैं यह विचार करता हुआ लॉन पर चल रहा था कि शुक्र है मुझे इस आदमी से फिर कभी नहीं मिलना पड़ेगा। तभी मुझे पीछे से आवाज़ सुनायी दी:

"सुनिए!"

मैं पलटा। वह वहीं खड़ा था और मुझे देख रहा था।

"क्या यूरोप में आपके पास ज़रूरत से ज़्यादा राजा हैं?" उसने धीरे-धीरे पूछा।

"अगर आप मेरी राय जानना चाहते हैं तो हमें उनमें से एक की भी ज़रूरत

नहीं है।" मैंने जवाब दिया।

वह एक तरफ को गया और उसने वहीं थूक दिया।

"मैं अपने लिए दो-एक राजाओं को किराये पर रखने की सोच रहा हूँ," वह बोला। "आप क्या सोचते हैं?"

"लेकिन किसलिए?"

"बड़ा मज़ेदार रहेगा। मैं उन्हें आदेश दूँगा कि वे यहाँ पर मुक्केबाज़ी करके दिखाएँ..."

उसने लॉन की तरफ इशारा किया और पूछताछ के लहजे में बोला:

"हर रोज एक से डेढ़ बजे तक। कैसा रहेगा? दोपहर के खाने के बाद कुछ देर कला के साथ समय बिताना अच्छा रहेगा... बहुत ही बढ़िया।"

वह ईमानदारी से बोल रहा था और मुझे लगा कि अपनी इच्छा पूरी करने के लिए वह कुछ भी कर सकता है।

"लेकिन इस काम के लिए राजा ही क्यों?"

"क्योंकि आज तक किसी ने इस बारे में नहीं सोचा" उसने समझाया।

"लेकिन राजाओं को तो खुद दूसरों को आदेश देने की आदत पड़ी होती है" इतना कहकर मैं चल दिया।

"सुनिए तो," उसने मुझे फिर से पुकारा।

मैं फिर से ठहरा। अपनी जेबों में हाथ डाले वह अब भी वहीं खड़ा था। उसके चेहरे पर किसी स्वप्न का भाव था।

उसने अपने होंठों को हिलाया जैसे कुछ चबा रहा हो और धीमे से बोला:

"तीन महीने के लिए दो राजाओं को एक से डेढ़ बजे तक मुक्केबाज़ी करवाने में कितना खर्च आयेगा आपके विचार से?"

कहानी - 'हिम्मत न हारना, मेरे बच्चो!'

पावन शान्ति में सूर्योदय हो रहा है और सुनहरे भटकटैया पुष्पों की मधुर सुगन्ध से लहका-महका हुआ नीला-सा कुहासा चट्टानी द्वीप से ऊपर, आकाश की ओर उठ रहा है।

आकाश के नीले चँदोवे के नीचे, अलसाये-उनींदे पानी के काले समतल विस्तार में द्वीप सूर्य भगवान की बलि-वेदी जैसा लगता है।

सितारों की झिलमिलाती पलकें अभी-अभी मुँदी हैं, किन्तु सफ़ेद शुक्र तारा धुँधले-धूमिल आकाश के ठण्डे विस्तार में रोयेंदार बादलों की पारदर्शी पाँत के ऊपर अभी भी जगमगा रहा है। बादलों में हल्का-हल्का गुलाबी रंग घुला हुआ है और पहली सूर्य किरणों में वे हल्के-हल्के चमक रहे हैं। सागर के शान्त वक्ष पर उनका प्रतिबिम्ब बिल्कुल ऐसे लग रहा है मानो कोई सीपी पानी की नीली गहराइयों में से निकलकर ऊपर सतह पर आ गयी हो।

रुपहले ओसकणों से बोझिल हुए घास के डण्ठल और फूलों की पंखुड़ियाँ सूर्य के स्वागत को सिर ऊपर उठाती हैं। शबनम की चमकती हुई बूँदे डण्ठलों के सिरों पर लटकती हैं, बड़ी होती हैं और नींद की गर्मी में पसीने से तर हुई भूमि पर गिर जाती हैं। मन होता है कि उनकी धीमी-धीमी टपटप सुनायी देती रहे और ऐसा न होने पर जी उदास हो जाता है।

पक्षी जाग गये हैं, जैतून के पत्तों के बीच वे इधर-उधर उड़ रहे हैं, चहचहाते हैं और नीचे से सूर्य द्वारा जगा दिये गये सागर की भारी-भारी उसाँसे ऊपर पर्वत तक पहुँच रही हैं।

फिर भी नीरवता है .. लोग अभी सो रहे हैं। सुबह की ताज़गी में फूलों और घासों की गन्ध-सुगन्ध को ध्वनियों की तुलना में अधिक अच्छी तरह से अनुभव किया जा सकता है।

सागर की हरी लहरों से घिरी नाव की भाँति अंगूर-लताओं से घिरे हुए सफ़ेद घर के दरवाज़े से एत्तोरे चेक्को नाम का बूढ़ा सूर्य के स्वागत को बाहर आता है। लोगों से कतराने वाले इस एकाकी बूढ़े के हाथ बन्दरों की तरह लम्बे हैं, उसकी नंगी चाँद किसी बड़े बुद्धिमान जैसी है और उसके चेहरे पर समय ने ऐसा हल चलाया है कि पिलपिली, गहरी झुर्रियों में उसकी आँखें लगभग दिखायी नहीं

देती हैं।

अपने काले बालों से ढँके हाथ को धीरे-धीरे माथे तक उठाकर वह गुलाबी होते हुए आकाश को देर तक देखता है, इसके बाद अपने इर्द-गिर्द नज़र दौड़ाता है। उसके सामने, द्वीप की भूरी-बैंगनी चट्टानों पर विस्तृत हरी और सुनहरी रंग-छटा फैली हुई है, गुलाबी, पीले और लाल फूल अपनी चमक दिखा रहे हैं। बूढ़े का साँवला चेहरा मृदुल-मधुर मुस्कान से सिहर उठता है, वह अपने गोल और भारी सिर को झुकाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है।

बूढ़ा चेक्को पीठ को तनिक झुकाये और पैरों को फैलाये हुए ऐसे खड़ा है मानो उसने कोई बोझ उठा रखा हो। उसके इर्द-गिर्द नवोदित दिन अधिकाधिक सजता-सँवरता जाता है, अंगूर-लताओं की हरियाली में कुछ अधिक चमक आ गयी है, गोल्डफिंच और सिसकिन चिड़िया अधिक जोर से अपना तराना गा रहे हैं, करौंदों और स्पर्ज के झुरमुटों में बटेर अपने पंख फडफ़ड़ा रहे हैं तथा नेपल्ज़वासियों की तरह बाँका-छैला और मस्त-फक्कड़ ब्लैकबर्ड कहीं पर अपनी तान छेड़ रहा है।

बूढ़ा चेक्को अपने थके हुए लम्बे हाथों को सिर के ऊपर उठाकर ऐसे अँगड़ाई लेता है मानो नीचे सागर की ओर उड़ जाना चाहता हो जो जाम में ढली हुई शराब की भाँति शान्त है।

पुरानी हड्डियों को ऐसे सीधा करने के बाद वह दरवाज़े के निकट एक पत्थर पर बैठा जाता है, जाकेट की जेब से एक पोस्टकार्ड निकालता है, पोस्टकार्ड थामे हुए हाथ को आँखों से दूर हटाता है, आँखें सिकोड़ लेता है और कुछ कहे बिना होंठों को हिलाते हुए पोस्टकार्ड को बहुत गौर से देखता है। उसके बड़े, बहुत दिनों से बिना दाढ़ी बने, सफ़ेद खूँटियों के कारण रुपहले-से प्रतीत होने वाले चेहरे पर एक नयी मुस्कान खिल उठती है। इस मुस्कान में प्यार, दुख-दर्द और गर्व – ये सब अजीब ढंग से घुल-मिल गये हैं।

पोस्टकार्ड पर नीली स्याही से चौड़े-चकले कन्धोंवाले दो नौजवानों के चित्र बने हुए हैं। वे कन्धे से कन्धे मिलाये हुए बैठे हैं और मुस्करा रहे हैं। उनके बाल घुँघराले हैं और सिर चेक्को के सिर की तरह बड़े-बड़े। उनके सिरों के ऊपर मोटे-मोटे और साफ अक्षरों में यह छपा हुआ है – "आर्तूरो और एनरीको चेक्को अपने वर्ग-हितों के लिए संघर्ष करने वाले दो शानदार योद्धा। उन्होंने कपड़ा-मिलों के उन 25,000 मज़दूरों को संगठित किया जिनकी मज़दूरी 6 डालर प्रति सप्ताह थी और इसके लिए उन्हें जेल भेज दिया गया।"

"सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करनेवाले जिन्दाबाद!"

बूढ़ा चेक्को अनपढ़ है और उक्त शब्द लिखे भी हुए हैं परायी भाषा में। किन्तु जो कुछ लिखा हुआ है, उसे वह ऐसे ही जानता है मानो हर शब्द से परिचित हो और वह बिगुल की तरह ऊँचे-ऊँचे और गा-गाकर अपना अर्थ बताता हो।

इस नीले पोस्टकार्ड ने बूढ़े के लिए काफ़ी चिन्ता और परेशानी पैदा कर दी थी। यह पोस्टकार्ड उसे दो महीने पहले मिला था और पिता की सहज अनुभूति से उसने उसी क्षण यह अनुभव कर लिया था कि लक्षण कुछ अच्छे नहीं हैं। कारण यह कि गरीब लोगों के फ़ोटो तो तभी छापे जाते हैं जब वे कानून का उल्लंघन करते हैं।

कागज के इस टुकड़े को चेक्को ने अपनी जेब में छिपा लिया, लेकिन वह उसके दिल पर एक बोझ सा बन गया और यह बोझ हर दिन बढ़ता चला गया। कई बार उसका मन हुआ कि पादरी को यह पोस्टकार्ड दिखा दे, किन्तु जीवन के लम्बे अनुभव ने उसे इस बात का विश्वास दिला दिया था कि जनता का यह कहना बिल्कुल सही है – "हो सकता है कि लोगों के बारे में पादरी भगवान को तो सच्चाई बताता है, किन्तु लोगों से कभी सच नहीं बोलता।"

इस पोस्टकार्ड का रहस्यपूर्ण अर्थ उसने सबसे पहले लाल बालों वाले एक विदेशी चित्रकार से ही पूछा। लम्बा-तड़ंगा और दुबला-पतला यह जवान चित्रकार अक्सर चेक्को के घर के पास आता था और चित्र-फलक को सुविधाजनक ढंग से टिकाकर आरम्भ किये हुए चित्र की चौकोर छाया में उसके पास ही लेटकर सोया करता था।

"महानुभाव," उसने चित्रकार से पूछा, "इन लोगों ने क्या हरकत की है?"

चित्रकार ने बूढ़े के बेटों के खिले हुए चेहरों को धयान से देखा और बोला –

"जरूर कोई हँसी-मज़ाक की बात की होगी..."

"इनके बारे में यहाँ क्या छपा हुआ है?"

"यह तो अंग्रेज़ी भाषा में है। अंग्रेज़ों के अलावा उनकी भाषा केवल भगवान ही समझता है। हाँ, मेरी पत्नी भी समझती है, अगर वह इस मामले में सच्चाई बताने की कृपा करेगी। बाकी दूसरे सभी मामलों में तो वह झूठ ही बोलती है..."

चित्रकार सिस्किन पक्षी की तरह ही बातूनी था और शायद किसी भी चीज की गम्भीरता से चर्चा नहीं कर सकता था। बूढ़ा उदास होकर उसके पास से चला गया और अगले दिन उसकी बीवी के पास पहुँचा। बड़ी मोटी-सी यह

श्रीमती चौड़ा और पारदर्शी सफ़ेद फ्राक पहने हुए बाग में झूले वाली खाट पर लेटी हुई मानो गर्मी से पिघल-सी रही थी और उसकी नीली आँखे नीले आकाश को नाराजगी से ताक रही थी।

"इन लोगों को जेल भेज दिया गया है," उसने टूटी-फूटी इतालवी भाषा में बताया।

बूढ़े के पाँव ऐसे काँप उठे मानो किसी झटके से सारा द्वीप ही डोल उठा हो। फिर भी उसने हिम्मत बटोरकर पूछ ही लिया – "इन्होंने चोरी की है या हत्या?"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं। वे तो बस, समाजवादी हैं।"

"कौन होते हैं ये समाजवादी?"

"यह – राजनीति की बात है," श्रीमती ने दबी-सी आवाज में जवाब दिया और आँखे मूँद लीं।

चेक्को जानता था कि विदेशी सबसे ज्यादा बुद्धू लोग हैं, कलाब्रिया के लोगों से भी अधिक नासमझ। किन्तु वह अपने बेटों के बारे में सच्चाई जानना चाहता था और इसलिए देर तक यह प्रतीक्षा करता हुआ श्रीमती के पास खड़ा रहा कि कब वह अपनी बड़ी-बड़ी और अलसायी आँखों को खोलती है। और आखिर जब ऐसा हुआ तो उसने पोस्टकार्ड पर उँगली रखकर पूछा – "यह ईमानदारी का काम है न?"

"मुझे मालूम नहीं," उसने खीझा-सा जवाब दिया। "मैं तुमसे कह चुकी हूँ कि यह राजनीति है, समझे?"

नहीं, बूढ़ा चेक्को यह समझने में असमर्थ था। बात यह थी कि रोम में मंत्री और धनी-मानी लोग राजनीति का इसलिए उपयोग करते थे कि गरीब लोगों से ज्यादा टैक्स ऐंठ सके। लेकिन उसके बेटे तो मज़दूर थे, अमरीका में मज़दूरी करते थे, भले नौजवान थे – उन्हें क्या मतलब हो सकता था राजनीति से?

बेटों का चित्र हाथ में लिये हुए वह रात भर बैठा रहा। चाँदनी में वह और भी अधिक काला लगता था तथा उसके मन में और भी ज्यादा बुरे-बुरे ख़्याल आते थे। सुबह को उसने पादरी से समाजवादी का मतलब पूछने का निर्णय किया। काला लबादा पहने पादरी ने बड़ी कड़ाई से और नपा-तुला यही उत्तर दिया ..

"समाजवादी – वही लोग हैं जो भगवान की इच्छा से इंकार करते हैं। तुम्हारे लिए इतना जान लेना ही काफ़ी है।"

इसके बाद पहले से भी ज्यादा कड़ाई के साथ इतना और जोड़ दिया –

"तुम्हारी उम्र में ऐसी बातों में दिलचस्पी लेना शर्म की बात है!..."

"यही अच्छा हुआ कि मैंने उसे चित्र नहीं दिखाया," चेक्को ने सोचा।

तीन दिन और बीत गये। तब वह बाँके-छैले और चंचल मिज़ाजवाले नाई के पास गया। जवान गधे की तरह हट्टे-कट्टे इस नौजवान के बारे में यह कहा जाता था कि वह पैसों के बदले में उन बूढ़ी अमरीकी औरतों के साथ प्रेम-क्रीडा़ करता था जो मानो सागर-सौन्दर्य का रसपान करने के लिए यहाँ आती थीं, किन्तु जिनका वास्तविक उद्देश्य गरीब इतालवी जवानों के साथ गुलछर्रे उड़ाना होता था।

"हे भगवान!" शीर्षक पढ़ते ही यह घटिया आदमी खुशी से चिल्ला उठा और उसके गालों पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गयी। "ये तो मेरे मित्र आर्तूरो और एनरीको हैं! चाचा एत्तोरे, मैं आपको और खुद अपने को भी सच्चे दिल से बधाई देता हूँ! मेरे अपने ही नगर के दो अन्य मशहूर आदमी – कैसे कोई इन पर गर्व किये बिना रह सकता है?"

"फ़ालतू बातें नहीं करो," बूढ़े ने उसे डाँटा।

लेकिन वह हाथों को जोर से हिलाता-डुलाता हुआ चिल्ला उठा .. "कमाल ही हो गया!"

"उनके बारे में क्या छपा हुआ है?"

"मैं पढ़ तो नहीं सकता, लेकिन मुझे यकीन है कि सच्चाइ ही छपी हुई है। गरीबों के बारे में अगर आखिर सच्चाई छापी गयी है तो वे अवश्य ही बड़े वीर होंगे!"

"चुप रहो, तुम्हारी मिन्नत करता हूँ," चेक्को ने कहा और पत्थरों पर अपने खड़ाउओं को जोर से बजाता हुआ वहाँ से चला गया।

वह उस रूसी महानुभाव के पास गया जिसके बारे में कहा जाता था कि वह दयालु और ईमानदार आदमी है। वह उसकी चारपाई के पास बैठ गया जिस पर लेटा हुआ वह धीरे-धीरे मृत्यु-द्वार की ओर बढ़ रहा था। उसने रूसी से पूछा ..

"इन लोगों के बारे में यहाँ क्या लिखा गया है?"

बीमारी से बुझी-बुझी और दुख में डूबी आँखों को सिकोड़कर रूसी ने धीमी-धीमी आवाज में वह पढ़ा जो पोस्टकार्ड में लिखा हुआ था और फ़िर बूढ़े की ओर देखकर खूब खुलकर मुस्करा दिया। बूढ़े ने रूसी से कहा – "महानुभाव, आप देख रहे हैं कि मैं बहुत बूढ़ा हो चुका हूँ और शीघ्र ही अपने भगवान के

पास चला जाऊँगा। वहाँ जब मदोन्ना मुझसे यह पूछेगी कि मेरे बच्चों का क्या हालचाल है, तो मुझे सब कुछ सच-सच और सविस्तार बताना होगा। इस पोस्टकार्ड में मेरे बेटों की फ़ोटो है, लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा कि उन्होंने क्या किया है और क्यों वे जेल में हैं?"

तब रूसी ने बहुत गम्भीरता से उसे यह सीधी-सादी सलाह दी ..

"मदोन्ना से कह दीजियेगा कि आपके बेटों ने उसके बेटे (यानी ईसा मसीह) के मुख्य आदेश का सार बहुत अच्छी तरह समझ लिया है – वे अपने निकटवालों को सच्चे मन से प्यार करते हैं...."

झूठ को सीधे-सादे ढंग से नहीं कहा जा सकता – उसके लिए भारी-भरकम शब्दों और अनेक अलंकारों की आवश्यकता होती है। इसलिए बूढ़े ने रूसी की बात पर यकीन कर लिया और उसके छोटे से, श्रम से अछूते हाथ से अच्छी तरह हाथ मिलाया।

"तो इसका यह अर्थ है कि जेल में होना उनके लिए कोई शर्म की बात नहीं है?"

"नहीं," रूसी ने उत्तर दिया। "आप तो जानते ही हैं कि अमीरों को सिर्फ़ तभी जेल भेजा जाता है जब वे बहुत ही ज्यादा बुराइयाँ करते हैं और उन पर पर्दा नहीं डाल पाते। लेकिन गरीब जब जरा-सी भी बेहतरी चाहते हैं तो उसी वक्त जेल में बन्द कर दिये जाते हैं। आपसे मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ कि आप बहुत खुशकिस्मत बाप हैं!"

और अपनी क्षीण आवाज में वह देर तक चेक्को को यह बताता रहा कि सच्चे और ईमानदार लोगों के दिमागों में कैसी-कैसी बातें हैं, कैसे वे निर्धनता, मूर्खता-अज्ञानता और उस सभी कुछ को ख़त्म करना चाहते हैं, जो भयानक और बुरा है और जो मूर्खता और निर्धनता को जन्म देता है...

अग्नि-पुष्प की तरह सूर्य आकाश में चमक रहा है, चट्टानों के भूरे वृक्ष पर अपनी किरणों का स्वर्ण-पराग बिखरा रहा है और पत्थर की हर दरार में से जीवन के लिए लालायित हरी घास और आकाश की तरह आसमानी रंग के फूल सूर्य की ओर उठ रहे हैं। सूर्य-प्रकाश की स्वर्ण-रश्मियाँ चमचमा उठती हैं और स्फटिक ओस की मोटी-मोटी बूँदों में लुप्त हो जाती हैं।

बूढ़ा देखता है कि कैसे उसके इर्द-गिर्द सभी कुछ सूर्य के जीवन देने वाले प्रकाश को अपनी साँसों में भरता है, उसे पीता है, पक्षी कैसे दौड़-धूप करते हैं, और घोंसला बनाते हुए गाते-चहचहाते हैं। उसे अपने बेटों की याद आती है,

जो महासागर के पार महानगर की जेल में बन्द हैं। उनके स्वास्थ्य के लिए यह बुरा है, हाँ, बहुत बुरा है...

लेकिन वे सिर्फ़ इसलिए जेल में हैं कि वैसे ही ईमानदार बने हैं जैसा कि वह खुद यानी उनका पिता जीवन भर रहा है। यह उनके लिए और उनके पिता की आत्मा के लिए अच्छा है।

और बूढ़े का साँवला चेहरा गर्वीली मुस्कान में पिघलता-सा प्रतीत होता है।

"धरती समृद्ध है, लोग दरिद्र हैं, सूर्य दयालु हैं, मानव क्रूर है। जिन्दगी भर मैं इसी के बारे में सोचता रहा हूँ और यद्यपि मैंने उनसे कभी कुछ नहीं कहा, फ़िर भी वे मेरे विचारों को समझ गये। हफ्ते में छः डालर – ये तो चालीस लीरा हुए, अरे वाह! लेकिन उन्हें लगा कि यह मजदूरी कम है और उनके जैसे पच्चीस हजार अन्य मजदूर भी उनसे सहमत हो गये कि जो लोग ढंग से रहना चाहते हैं, उनके लिए छः डालर कम हैं...

उसे विश्वास है कि उसके बच्चों के रूप में वे विचार विकसित और फले-फूले हैं जो उसके हृदय में छिपे रहे हैं। उसे बड़ा गर्व है इस बात पर, किन्तु वह जानता है कि हर दिन खुद अपने द्वारा गढ़े गये किस्सों में लोग कितना कम विश्वास करते हैं, इसलिए वह कुछ कहता नहीं, चुप रहता है।

हां, कभी -कभी उसका बूढ़ा विशाल हृदय अपने बेटों के भविष्य से सम्बन्धित विचारों से ओतप्रोत हो उठता है और तब बूढ़ा चेक्को अपनी थकी और श्रम से झुकी हुई पीठ को सीधा करता है, छाती तानता है और अपनी बची-बचायी शक्ति बटोरकर सागर की ओर मुँह करके बहुत दूर, अपने बेटों को सम्बोधित करते हुए चिल्लाता है ..

"वाल्यो-ओ!" ("हिम्मत ना हारना, मेरे बच्चो!")

उस क्षण सागर के गाढ़े और कोमल पानी के ऊपर अधिकाधिक ऊँचा उठता हुआ सूरज हँस देता है तथा अंगूर के बगीचों में काम करने वाले लोग बूढ़े की आवाज़ का उत्तर देते हुए जोर से कहते हैं –

"ओह-हो-हो!"

कहानी - बाज़ का गीत

सीमाहीन सागर तट-रेखा के निकट अलस भाव से छलछलाता और तट से दूर निश्चल, नींद में डूबा, नीली चाँदनी में सराबोर था। क्षितिज के निकट दक्षिणी आकाश की मुलायम और रुपहली नीलिमा में विलीन होता हुआ वह मीठी नींद सो रहा था – रूई जैसे बादलों के पारदर्शी ताने-बाने को प्रतिबिम्बित करता हुआ जो उसकी ही भाँति आकाश में निश्चल लटके थे – तारों के सुनहरे बेल-बूटों पर अपना आवरण डाले, लेकिन उन्हें छिपाये हुए नहीं। ऐसा लगता था, मानो आकाश सागर पर झुका पड़ रहा हो, मानो वह कान लगाकर यह सुनने को उत्सुक हो कि उसकी बेचैन लहरें, जो अलस भाव से तट को पखार रही थीं, फुसफुसाकर क्या कह रही हैं।

आँधी से झुके पेड़ों से आच्छादित पहाड़, अपनी खुरदरी कगारदार चोटियों से ऊपर के नीले शून्य को छू रहे थे, जहाँ दक्खिनी रात का सुहाना और दुलार-भरा अँधेरा अपने स्पर्श से उनके खुरदरे, कठोर कगारों को मुलायम बना रहा था।

पहाड़ गम्भीर चिन्तन में लीन थे। उनके काले साये उमड़ती हुई हरी लहरों पर अवरोधी आवरणों की भाँति पड़ रहे थे, मानो वे ज्वार को रोकना चाहते हों। पानी की निरन्तर छलछलाहट, झागों की सिसकारियों और उन तमाम आवाज़ों को शान्त करना चाहते हों जो अभी तक पहाड़ की चोटियों के पीछे छिपे चाँद की रुपहली-नीली आभा की भाँति समूचे दृश्यपट को प्लावित करने वाली रहस्यमयी निस्तब्धता का उल्लंघन कर रही थीं।

"अल्लाह हो अकबर!" नादिर रहीम ओगली ने धीमे से आह भरते हुए कहाँ वह क्रीमिया का रहने वाला एक वृद्ध गड़ेरिया था – लम्बा कद, सफ़ेद बाल, दक्षिणी धूप में तपा, दुबला-पतला, समझदार बुजुर्ग।

हम रेत पर पड़े थे – साये में लिपटी और काई से ढँकी एक भीमाकार, उदास और खिन्न चट्टान की बग़ल में जो अपने मूल पहाड़ से टूटकर अलग हो गयी थी। उसके समुद्र वाले पहलू पर समुद्री सरकण्डों और जल-पौधों की बन्दनवार थी जो उसे सागर तथा पहाड़ों के बीच रेत की सँकरी पट्टी से जकड़े मालूम होती थी। हमारे अलाव की लपटें पहाड़ों वाले पहलू को आलोकित कर

रही थीं और उनकी काँपती हुई लौ की परछाइयाँ उसकी प्राचीन सतह पर, जो गहरी दरारों से क्षत-विक्षत हो गयी थीं, नाच रही थीं।

रहीम और मैं मछलियों का शोरबा पका रहे थे जिन्हें हमने अभी पकड़ा था और हम दोनों ऐसे मूड में थे जिसमें हर चीज़ स्पष्ट, अनुप्राणित और बोधगम्य मालूम होती हैं, जब हृदय बेहद हल्का और निर्मल होता है – और चिन्तन में डूबने के सिवा मन में और कोई इच्छा नहीं होती।

सागर तट पर छपछपा रहा था। लहरों की आवाज़ ऐसी प्यारभरी थी मानो वे हमारे अलाव से अपने आपको गरमाने की याचना कर रही हों। लहरों के एकरस गुंजन में रह-रहकर एक अधिक ऊँचा और अधिक आह्लादपूर्ण स्वर सुनायी दे जाता – यह अधिक साहसी लहरों में से किसी एक का स्वर होता जो हमारे पाँवों के अधिक निकट रेंग आती थी।

रहीम सागर की ओर मुँह किये पड़ा था। उसकी कोहनियाँ रेत में धँसी थीं, उसका सिर उसके हाथों पर टिका था और वह विचारों में डूबा दूर धुँधलके को ताक रहा था। उसकी भेड़ की खाल की टोपी खिसककर उसकी गुद्दी पर आ गयी थी और समुद्र की ताज़ा हवा झुर्रियों की महीन रेखाओं से ढके उसके ऊँचे मस्तक पर पंखा झल रही थी। उसके मुँह से दार्शनिकी उद्गार प्रकट हो रहे थे – इस बात की चिन्ता किये बिना कि मैं उन्हें सुन भी रहा हूँ या नहीं। ऐसा लगता था जैसे वह समुद्र से बातें कर रहा हो।

" जो आदमी ख़ुदा में अपना ईमान बनाये रखता है, उसे बहिश्त नसीब होती है। और वह, जो ख़ुदा या पैगम्बर को याद नहीं करता? शायद वह वहाँ है, इस झाग में...पानी की सतह पर वे रुपहले धब्बे शायद उसी के हों, कौन जाने!"

विस्तारहीन काला सागर अधिक उजला हो चला था और उसकी सतह पर लापरवाही से जहाँ-तहाँ बिखेर दिये गये चाँदनी के धब्बे दिखायी दे रहे थे। चाँद पहाड़ों की कगारदार झबरीली चोटियों के पीछे से बाहर खिसक आया था और तट पर, उस चट्टान पर, जिसकी बग़ल में हम लेटे हुए थे, और सागर पर, जो उससे मिलने के लिए हल्की उसाँसें भर रहा था, उनीन्दा-सा अपनी आभा बिखेर रहा था।

"रहीम, कोई किस्सा सुनाओ," मैंने वृद्ध से कहाँ

"किस लिए?" अपने सिर को मेरी ओर मोड़े बिना ही उसने पूछा।

"यों ही! तुम्हारे क़िफ़स्से मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।"

"मैं तुम्हें सब सुना चुका। और याद नहीं..." वह चाहता था कि उसकी

ख़ुशामद की जाये और मैंने उसकी ख़ुशामद की।

"अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें एक गीत सुना सकता हूँ," उसने राजी होते हुए कहा।

मैं ख़ुशी से कोई पुराना गीत सुनना चाहता था और उसने मौलिक धुन को कायम रखते हुए एकरस स्वर में गीत सुनाना शुरू कर दिया।

1

"ऊँचे पहाड़ों पर एक साँप रेंग रहा था, एक सीलनभरे दर्रे में जाकर उसने कुण्डली मारी और समुद्र की ओर देखने लगा।

"ऊँचे आसमान में सूरज चमक रहा था, पहाड़ों की गर्म साँस आसमान में उठ रही थी और नीचे लहरें चट्टानों से टकरा रही थीं...

"दर्रे के बीच से, अँधेरे और धुन्ध में लिपटी एक नदी तेज़ी से बह रही थी – समुद्र से मिलने की उतावली में राह के पत्थरों को उलटती-पलटती...

"झागों का ताज पहने, सफ़ेद और शक्तिशाली, वह चट्टानों को काटती, गुस्से में उबलती-उफनती, गरज के साथ समुद्र में छलांग मार रही थी।

"अचानक उसी दर्रे में, जहाँ साँप कुण्डली मारे पड़ा था, एक बाज, जिसके पंख ख़ून से लथपथ थे और जिसके सीने में एक घाव था, आकाश से वहाँ आ गिरा...

"धरती से टकराते ही उसके मुँह से एक चीख़ निकली और वह हताशापूर्ण क्रोध में चट्टान पर छाती पटकने लगा...

"सांप डर गया, तेज़ी से रेंगता हुआ भागा, लेकिन शीघ्र ही समझ गया कि पक्षी पल-दो पल का मेहमान है।

"सो रेंगकर वह घायल पक्षी के पास लौटा और उसने उसके मुँह के पास फुँकार छोड़ी –

"मर रहे हो क्या?"

"हां मर रहा हूँ!" गहरी उसाँस लेते हुए बाज ने जवाब दिया। 'ख़ूब जीवन बिताया है मैंने!...बहुत सुख देखा है मैंने!...जमकर लड़ाइयाँ लड़ी हैं!... आकाश की ऊँचाइयाँ नापी हैं मैंने...तुम उसे कभी इतने निकट से नहीं देख सकोगे!...तुम बेचारे!'

आकाश? वह क्या है? निरा शून्य...मैं वहाँ कैसे रेंग सकता हूँ? मैं यहाँ बहुत मज़े में हूँ...गरमाहट भी है और नमी भी!'

"इस प्रकार साँप ने आज़ाद पंछी को जवाब दिया और मन ही मन बाज की

बेतुकी बात पर हँसा।

"और उसने अपने मन में सोचा – 'चाहे रेंगो, चाहे उड़ो, अन्त सबका एक ही है – सबको इसी धरती पर मरना है, धूल बनना है।'

"मगर निर्भीक बाज़ ने एकाएक पंख फडफ़ड़ाये और दर्रे पर नज़र डाली।

"भूरी चट्टानों से पानी रिस रहा था और अँधेरे दर्रे में घुटन और सड़ान्ध थी।

"बाज़ ने अपनी समूची शक्ति बटोरी और तड़प तथा वेदना से चीख़ उठा –

"काश, एक बार फिर आकाश में उड़ सकता!...दुश्मन को भींच लेता... अपने सीने के घावों के साथ...मेरे रक्त की धारा से उसका दम घुट जाता!... ओह, कितना सुख है संघर्ष में!'...

"सांप ने अब सोचा – 'अगर वह इतनी वेदना से चीख़ रहा है, तो आकाश में रहना वास्तव में ही इतना अच्छा होगा!'

"और उसने आज़ादी के प्रेमी बाज से कहा – 'रेंगकर चोटी के सिरे पर आ जाओ और लुढ़ककर नीचे गिरो। शायद तुम्हारे पंख अब भी काम दे जायें और तुम अपने अभ्यस्त आकाश में कुछ क्षण और जी लो।'

"बाज़ सिहरा, उसके मुँह से गर्व भरी हुँकार निकली और काई जमी चट्टान पर पंजों के बल फिसलते हुए वह कगार की ओर बढ़ा।

"कगार पर पहुँचकर उसने अपने पंख फैला दिये, गहरी साँस ली और आँखों से एक चमक-सी छोड़ता हुआ शून्य में कूद गया।

"और ख़ुद भी पत्थर-सा बना बाज चट्टानों पर लुढ़कता हुआ तेज़ी से नीचे गिरने लगा, उसके पंख टूट रहे थे, रोयें बिखर रहे थे...

"नदी ने उसे लपक लिया, उसका रक्त धोकर झागों में उसे लपेटा और उसे दूर समुद्र में बहा ले गयी।

"और समुद्र की लहरें, शोक से सिर धुनती, चट्टान की सतह से टकरा रही थीं...पक्षी की लाश समुद्र के व्यापक विस्तारों में ओझल हो गयी थी...

2

"कुण्डली मारे साँप, बहुत देर तक दर्रे में पड़ा हुआ सोचता रहा – पक्षी की मौत के बारे में, आकाश के प्रति उसके प्रेम के बारे में।

"उसने उस विस्तार में आँखें जमा दीं जो निरन्तर सुख के सपने से आँखों को सहलाता है।

"'क्या देखा उसने – उस मृत बाज़ ने – इस शून्य में, इस अन्तहीन आकाश में? क्यों उसके जैसे आकाश में उड़ान भरने के अपने प्रेम से दूसरों की आत्मा

को परेशान करते हैं? क्या पाते हैं वे आकाश में? मैं भी तो, बेशक थोड़ा-सा उड़कर ही, यह जान सकता हूँ।'

"उसने ऐसा सोचा और कर डाला। कसकर कुण्डली मारी, हवा में उछला और सूरज की धूप में एक काली धारी-सी कौंध गयी।

"जो धरती पर रेंगने के लिए जन्मे हैं, वे उड़ नहीं सकते!...इसे भूलकर साँप नीचे चट्टानों पर जा गिरा, लेकिन गिरकर मरा नहीं और हँसा –

"'सो यही है आकाश में उड़ने का आनन्द! नीचे गिरने में!...हास्यास्पद पक्षी! जिस धरती को वे नहीं जानते, उस पर ऊबकर आकाश में चढ़ते हैं और उसके स्पन्दित विस्तारों में ख़ुशी खोजते हैं। लेकिन वहाँ तो केवल शून्य है। प्रकाश तो बहुत है, लेकिन वहाँ न तो खाने को कुछ है और न शरीर को सहारा देने के लिए ही कोई चीज़। तब फिर इतना गर्व किसलिए? धिक्कार-तिरस्कार क्यों? दुनिया की नज़रों से अपनी पागल आकांक्षाओं को छिपाने के लिए, जीवन के व्यापार में अपनी विफलता पर पर्दा डालने के लिए ही न? हास्यास्पद पक्षी!...तुम्हारे शब्द मुझे फिर कभी धोखा नहीं दे सकते! अब मुझे सारा भेद मालूम है! मैंने आकाश को देख लिया है...उसमें उड़ लिया, मैंने उसको नाप लिया और गिरकर भी देख लिया, हालाँकि मैं गिरकर मरा नहीं, उल्टे अपने में मेरा विश्वास अब और भी दृढ़ हो गया है। बेशक वे अपने भ्रमों में डूबे रहें, वे, जो धरती को प्यार नहीं करते। मैंने सत्य का पता लगा लिया है। पक्षियों की ललकार अब कभी मुझ पर असर नहीं करेगी। मैं धरती से जन्मा हूँ और धरती का ही हूँ।'

"ऐसा कहकर, वह एक पत्थर पर गर्व से कुण्डली मारकर जम गया।

"सागर, चौंधिया देने वाले प्रकाश का पुंज बना चमचमा रहा था और लहरें पूरे ज़ोर-शोर से तट से टकरा रही थीं।

"उनकी सिह जैसी गरज में गर्वीले पक्षी का गीत गूँज रहा था। चट्टानें काँप रही थीं समुद्र के आघातों से और आसमान काँप रहा था दिलेरी के गीत से –

'साहस के उन्मादियों की हम गौरव-गाथा गाते हैं! गाते हैं उनके यश का गीत!'

'साहस का उन्माद-यही है जीवन का मूलमन्त्र ओह, दिलेर बाज! दुश्मन से लड़कर तूने रक्त बहाया...लेकिन वह समय आयेगा जब तेरा यह रक्त जीवन के अन्धकार में चिनगारी बनकर चमकेगा और अनेक साहसी हृदयों को आज़ादी तथा प्रकाश के उन्माद से अनुप्राणित करेगा!'

'बेशक तू मर गया!...लेकिन दिल के दिलेरों और बहादुरों के गीतों में तू सदा जीवित रहेगा, आज़ादी और प्रकाश के लिए संघर्ष की गर्वीली ललकार बनकर गूँजता रहेगा!'

"हम साहस के उन्मादियों का गौरव-गान गाते हैं!"

...सागर के पारदर्शी विस्तार निस्स्तब्ध हैं, तट से छलछलाती लहरें धीमे स्वरों में गुनगुना रही हैं और दूर समुद्र के विस्तार को देखता हुआ मैं भी चुप हूँ। पानी की सतह पर चाँदनी के रुपहले धब्बे अब पहले से कहीं अधिक हो गये हैं...हमारी केतली धीमे से भुनभुना रही है।

एक लहर खिलवाड़ करती आगे बढ़ आयी और मानो चुनौती का शोर मचाती हुई रहीम के सिर को छूने का प्रयत्न करने लगी।

"भाग यहाँ से! क्या सिर पर चढ़ेगी?" हाथ हिलाकर उसे दूर करते हुए रहीम चिल्लाया और वह, मानो उसका कहना मानकर तुरन्त लौट गयी।

लहर को सजीव मानकर रहीम के इस तरह उसे झिड़कने में, मुझे हँसने या चौंक उठने वाली कोई बात नहीं मालूम हुई। हमारे चारों ओर की हर चीज़ असाधारण रूप से सजीव, कोमल और सुहावनी थी। समुद्र शान्त था और उसकी शीतल साँसों में, जिन्हें वह दिन की तपन से अभी तक तप्त पहाड़ों की चोटियों की ओर प्रवाहित कर रहा था, संयत शक्ति निहित प्रतीत होती थी। आकाश की गहरी नीली पृष्ठभूमि पर सुनहरे बेल-बूटों के रूप में तारों ने कुछ ऐसा गम्भीर चित्र अंकित कर दिया था जो आत्मा को मन्त्र-मुग्ध करता था और हृदय को किसी नये आत्मबोध की मधुर आशा से विचलित करता प्रतीत होता था।

हर चीज़ उनीन्दी थी, लेकिन जागरूकता की गहरी चेतना अपने हृदय में सहेजे, मानो अगले ही क्षण वे सभी नींद की अपनी चादर उतारकर अवर्णनीय मधुर स्वर में समवेत गान शुरू कर देंगी। उनका यह समवेत गान जीवन के रहस्यों को प्रकट करेगा, उन्हें मस्तिष्क को समझायेगा, फिर उसे छलावे की अग्नि-शिखा की भाँति ठण्डा कर देगा और आत्मा को गहरे नीले विस्तारों में उड़ा ले जायेगा, जहाँ तारों के कोमल बेल-बूटे भी आत्मबोध का दिव्य गीत गाते होंगे...

(1895)

कहानी – कोलुशा

कब्रिस्तान का वह कोना, जहाँ भिखारी दफ़नाये जाते हैं। पत्तों से छितरे, बारिश से बहे और आँधियों से जर्जर कब्रों के ढूहों के बीच, दो मरियल-से बर्च वृक्षों के जालीदार साये में, जिघम के फटे-पुराने कपड़े पहने और सिर पर काली शॉल डाले एक स्त्री एक कब्र के पास बैठी थी।

सफ़ेद पड़ चले बालों की एक लट उसके मुरझाये हुए गाल के ऊपर झूल रही थी, उसके महीन होंठ कसकर भिचे थे और उनके छोर उसके मुँह पर उदास रेखाएँ खींचते नीचे की ओर झुके थे, और उसकी आँखों की पलकों में भी एक ऐसा झुकाव मौजूद था जो अधिक रोने और काटे न कटने वाली लम्बी रातों में जागने से पैदा हो जाता है।

वह बिना हिले-डुले बैठी थी – उस समय, जबकि मैं कुछ दूर खड़ा उसे देख रहा था, न ही उसने उस समय कुछ हरकत की जब मैं और अधिक निकट खिसक आया। उसने केवल अपनी बड़ी-बड़ी चमकविहीन आँखों को उठाकर मेरी आँखों में देखा और फिर उन्हें नीचे गिरा लिया। उत्सुकता, परेशानी या अन्य कोई भाव, जोकि मुझे निकट पहुँचता देख उसमें पैदा हो सकता था, नाममात्र के लिए भी उसने प्रकट नहीं किया।

मैंने अभिवादन में एकाध शब्द कहा और पूछा कि यहाँ कौन सोया है।

'मैरा बेटा," उसने भावशून्य उदासीनता से जवाब दिया।

"बड़ा था?"

"बारह बरस का।"

"कब मरा?"

"चार साल पहले।"

उसने एक गहरी साँस ली और बाहर छिटक आयी लट को फिर बालों के नीचे खोंस लिया। दिन गरम था। सूरज बेरहमी के साथ मुर्दों के इस नगर पर आग बरसा रहा था। कब्रों पर उगी इक्की-दुक्की घास तपन और धूल से पीली पड़ गयी थी। और धूल-धूसरित रूखे-सूखे पेड़, जो सलीबों के बीच उदास भाव से खड़े थे, इस हद तक निश्चल थे मानो वे भी मुर्दा बन गये हों।

"वह कैसे मरा?" लड़के की कब्र की ओर गरदन हिलाते हुए मैंने पूछा।

"घोड़ों से कुचलकर," उसने संक्षेप में जवाब दिया और अपना झुर्रियाँ-पड़ा हाथ फैलाकर लड़के की कब्र सहलाने लगी।

"यह दुर्घटना कैसे घटी?"

मैं जानता था कि इस तरह खोदबीन करना शालीनता के ख़िलाफ़ है, लेकिन इस स्त्री की निस्संगता ने गहरे कौतुक और चिढ़ का भाव मेरे हृदय में जगा दिया था। कुछ ऐसी समझ में न आने वाली सनक ने मुझे घेरा कि मैं उसकी आँखों में आँसू देखने के लिए ललक उठा। उसकी उदासीनता में कुछ था, जो अप्राकृतिक था, और साथ ही उसमें बनावट का भी कोई चिह्न नहीं दिखायी देता था।

मेरा सवाल सुनकर उसने एक बार फिर अपनी आँखें उठाकर मेरी आँखों में देखा। और जब वह सिर से पाँव तक मुझे अपनी नज़रों से परख चुकी तो उसने एक हल्की-सी साँस ली और अटूट उदासी में डूबी आवाज़ में अपनी कहानी सुनानी शुरू की।

"घटना इस प्रकार घटी। उसका पिता गबन के अपराध में डेढ़ साल के लिए जेल में बन्द हो गया। इस काल में हमने अपनी सारी जमा पूँजी खा डाली। यूँ हमारी वह जमा पूँजी कुछ अधिक थी भी नहीं। अपने आदमी के जेल से छूटने से पहले ईंधन की जगह मैं हार्स-रेडिश के डण्ठल जलाती थी। जान-पहचान के एक माली ने ख़राब हुए हार्स-रेडिश का गाड़ीभर बोझ मेरे घर भिजवा दिया था। मैंने उसे सुखा लिया और सूखी गोबर-लीद के साथ मिलाकर उसे जलाने लगी। उससे भयानक धुआँ निकलता और खाने का जायका ख़राब हो जाता। कोलुशा स्कूल जाता था। वह बहुत ही तेज़ और किफायतशार लड़का था। जब वह स्कूल से घर लौटता तो हमेशा एकाध कुन्दा या लकड़ियाँ – जो रास्ते में पड़ी मिलतीं – उठा लाता। वसन्त के दिन थे तब। बर्फ पिघल रही थी। और कोलुशा के पास कपड़े के जूतों के सिवा पाँवों में पहनने के लिए और कुछ नहीं था। जब वह उन्हें उतारता तो उसके पाँव लाल रंग की भाँति लाल निकलते। तभी उसके पिता को उन्होंने जेल से छोड़ा और गाड़ी में बैठाकर उसे घर लाये। जेल में उसे लकवा मार गया था। वह वहाँ पड़ा मेरी ओर देखता रहा। उसके चेहरे पर एक कुटिल-सी मुस्कान खेल रही थी। मैं भी उसकी ओर देख रही थी और मन ही मन सोच रही थी – 'तुमने ही हमारा यह हाल किया है, और तुम्हारा यह दोज़ख़ मैं अब कहाँ से भरूँगी? एक ही काम अब मैं तुम्हारे साथ कर सकती हूँ, वह यह कि तुम्हें उठाकर किसी जोहड़ में पटक

दूँ।' लेकिन कोलुशा ने जब उसे देखा तो चीख़ उठा, उसका चेहरा धुली हुई चादर की भाँति सफ़ेद पड़ गया और उसके गालों पर से आँसू ढुरकने लगे। 'यह इन्हें क्या हो गया है, माँ?' उसने पूछा। 'यह अपने दिन पूरे कर चुका', मैंने कहा। और इसके बाद हालत बद से बदतर होती गयी। काम करते-करते मेरे हाथ टूट जाते, लेकिन पूरा सिर मारने पर भी बीस कोपेक से ज़्यादा न मिलते, सो भी तब, जब भाग्य से दिन अच्छे होते। मौत से भी बुरी हालत थी, अक्सर मन में आता कि अपने इस जीवन का अन्त कर दूँ। एक बार, जब हालत एकदम असह्य हो उठी, तो मैंने कहा – 'मैं तो तंग आ गयी इस मनहूस जीवन से। अच्छा हो अगर मैं मर जाऊँ – या फिर तुम दोनों में से कोई एक ख़त्म हो जाये!' – यह कोलुशा और उसके पिता की तरफ़ इशारा था। उसका पिता केवल गरदन हिलाकर रह गया, मानो कह रहा हो – 'झिड़कती क्यों हो? ज़रा धीरज रखो, मेरे दिन वैसे ही करीब आ लगे हैं।' लेकिन कोलुशा ने देर तक मेरी ओर देखा, इसके बाद वह मुड़ा और घर से बाहर चला गया। उसके जाते ही अपने शब्दों पर मुझे बड़ा पछतावा हुआ। लेकिन अब पछताने से क्या होता था? तीर हाथ से निकल चुका था। एक घण्टा भी न बीता होगा कि एक पुलिसमैन गाड़ी में बैठा हुआ आया। 'क्या तुम्हीं शिशेनीना साहिबा हो?' उसने कहा। मेरा हृदय बैठने लगा। 'तुम्हें अस्पताल में बुलाया है', वह बोला – 'तुम्हारा लड़का सौदागर आनोखिन के घोड़ों से कुचल गया है।' गाड़ी में बैठ मैं सीधे अस्पताल के लिए चल दी। ऐसा मालूम होता था जैसे गाड़ी की गद्दी पर किसी ने गर्म कोयले बिछा दिये हों। और मैं रह-रहकर अपने को कोस रही थी – 'अभागी औरत, तूने यह क्या किया?'

"आख़िर हम अस्पताल पहुँचे। कोलुशा पलंग पर पड़ा पट्टियों का बण्डल मालूम होता था। वह मेरी ओर मुस्कुराया, और उसके गालों पर आँसू ढुरक आये.... फिर फुसफुसाकर बोला – 'मुझे माफ़ करना, माँ। पैसा पुलिसमैन के पास है।' 'पैसा....कैसा पैसा? यह तुम क्या कह रहे हो?' मैंने पूछा। 'वही, जो लोगों ने मुझे सड़क पर दिया था और आनोखिन ने भी', उसने कहा। 'किसलिए?' मैंने पूछा। 'इसलिए', उसने कहा और एक हल्की-सी कराह उसके मुँह से निकल गयी। उसकी आँखें फटकर ख़ूब बड़ी हो गयीं, कटोरा जितनी बड़ी। 'कोलुशा', मैंने कहा – 'यह कैसे हुआ? क्या तुम घोड़ों को आता हुआ नहीं देख सके?' और तब वह बोला, बहुत ही साफ़ और सीधे-सीधे, 'मैंने उन्हें देखा था, माँ, लेकिन मैं जान-बूझकर रास्ते में से नहीं हटा। मैंने सोचा कि

अगर मैं कुचला गया तो लोग मुझे पैसा देंगे। और उन्होंने दिया।' ठीक यही शब्द उसने कहे। और तब मेरी आँखें खुलीं और मैं समझी कि उसने – मेरे फ़रिश्ते ने – क्या कुछ कर डाला है। लेकिन मौका चूक गया था। अगली सुबह वह मर गया। उसका मस्तिष्क अन्त तक साफ़ था और वह बराबर कहता रहा – 'दद्दा के लिए यह ख़रीदना, वह ख़रीदना और अपने लिए भी कुछ ले लेना।' मानो धन का अम्बार लगा हो। वस्तुतः वे कुल सैंतालीस रूबल थे। मैं सौदागर आनोखिन के पास पहुँची, लेकिन उसने मुझे केवल पाँच रूबल दिये, सो भी भुनभुनाते हुए। कहने लगा – 'लड़का ख़ुद जान-बूझकर घोड़ों के नीचे आ गया। पूरा बाज़ार इसका साक्षी है। सो तुम क्यों रोज़ आ-आकर मेरी जान खाती हो? मैं कुछ नहीं दूँगा।' मैं फिर कभी उसके पास नहीं गयी। इस प्रकार वह घटना घटी, समझे युवक!"

उसने बोलना बन्द कर दिया और पहले की भाँति अब फिर सर्द तथा निस्संग हो गयी।

कब्रिस्तान शान्त और वीरान था। सलीब, मरियल-से पेड़, मिट्टी के ढूह और कब्र के पास इस शोकपूर्ण मुद्रा में बैठी यह मनोविकारशून्य स्त्री – इन सब चीज़ों ने मुझे मृत्यु और मानवीय दुख के बारे में सोचने के लिए बाध्य कर दिया।

लेकिन आकाश में बादलों का एक धब्बा तक नहीं था और वह धरती पर झुलसा देने वाली आग बरसा रहा था।

मैंने अपनी जेब से कुछ सिक्के निकाले और उन्हें इस स्त्री की ओर बढ़ा दिया जो, दुर्भाग्य की मारी, अभी भी जी रही थी।

उसने सिर हिलाया और विचित्र धीमेपन के साथ बोली –

"कष्ट न करो, युवक। आज के लिए मेरे पास काफ़ी है। आगे के लिए भी मुझे अधिक नहीं चाहिए। मैं एकदम अकेली हूँ। इस दुनिया में एकदम अकेली!"

उसने एक गहरी साँस ली और अपने पतले होंठ एक बार फिर उसी शोक से बल-खाई रेखा में भींच लिये।

(1895)

कहानी - जियोवान्नी समाजवादी कैसे बना

अंगूरों के पुराने बगीचे की घनी अंगूर लताओं के बीच छिपी-सी सफेद कैण्टीन के दरवाजे के पास, हरिणपदी तथा छोटे-छोटे चीनी गुलाबों से जहाँ-तहाँ गुँथी इन्हीं लताओं के चँदवे के नीचे शराब की सुराही सामने रखे हुए दो आदमी मेज़ पर बैठे हैं। इनमें से एक हैं रंगसाज विंचेंत्सो और दूसरा है फिटर जियोवान्नी। रंगसाज नाटा-सा, दुबला-पतला और काले बालोंवाला है। उसकी काली आँखों में स्वप्नदर्शी की चिन्तनशील हल्की-हल्की मुस्कान की चमक है। यद्यपि उसने ऊपरवाले होंठ और गालों की इतनी कसकर हजामत बनायी है कि वे नीले-से हो गये हैं, तथापि मुक्त मुस्कान के कारण उसका चेहरा बच्चों जैसा और भोला-भाला प्रतीत होता है। उसका मुँह लड़की जैसा छोटा-सा और सुन्दर है, कलाइयाँ लम्बी-लम्बी हैं, गुलाब के सुनहरे फूल को वह अपनी चंचल-चपल उँगलियों में घुमा रहा है और फिर उसे अपने फूले-फूले होंठों के साथ सटाकर आँखें मूँद लेता है।

"हो सकता है – मुझे मालूम नहीं – हो सकता है!" कनपटियों पर दबे-से सिर को धीरे-धीरे हिलाते हुए वह कहता है और उसके चैड़े माथे पर ललछौंही केश-कुण्डल लटक आते हैं।

"हाँ, हाँ, ऐसा ही है। हम उत्तर की ओर जितना अधिक बढ़ते जाते हैं, उतने ही ज़्यादा धुन के पक्के लोग हमें मिलते हैं!" बड़े सिर, चैड़े-चकले कन्धों और काले घुँघराले बालोंवाला जियोवान्नी दृढ़तापूर्वक अपनी बात कहता है। उसका चेहरा ताँबे जैसी लालिमा लिये हुए है, उसकी नाक धूप में जली हुई है और उस पर मुरझायी-सी सफ़ेद झिल्ली चढ़ी हुई है। उसकी आँखें बैल की आँखों की तरह बड़ी-बड़ी और दयालु हैं और बाँये हाथ का अँगूठा ग़ायब है। उसका बोलने का ढंग भी मशीनी तेल और लोहे के बुरादे से सने हाथों की धीमी गतिविधि की तरह ही धीमा है। टूटे नाखूनोंवाली साँवली उँगलियों में शराब का गिलास पकड़े हुए वह भारी-भरकम आवाज़ में अपनी बात जारी रखता है:

"मिलान, तूरिन – ये हैं बढ़िया कारख़ाने, जहाँ नये किस्म के लोग ढाले जा रहे हैं, नये विचारोंवाले दिमाग़ जन्म ले रहे हैं। थोड़ा सब्र करो – हमारी दुनिया ईमानदार और समझदार हो जायेगी!"

"हाँ!" नाटे रंगसाज ने कहा और गिलास उठाकर सूर्य-किरण को शराब में घुलाते हुए गाने लगता है:

जीवन के प्रभात में कितनी
सुखद हमें धरती लगती,
किन्तु यही दुखमय बन जाती
उम्र हमारी जब ढलती।

"मैं कहता हूँ कि हम जितना अधिक उत्तर की ओर जाते हैं, काम भी उतना ही अधिक अच्छा होता जाता है। फ्रांसीसी ही वैसी काहिली का जीवन नहीं बिताते जैसा कि हम, उनके आगे जर्मन हैं और फिर रूसी – ये हैं असली लोग!"

"हाँ!"

"अधिकारहीन, आज़ादी और ज़िन्दगी से वंचित हो जाने के डर से उन्होंने बड़े-बड़े शानदार कारनामे कर दिखाये। इन्हीं की बदौलत तो सारे पूरब में ज़िन्दगी की लहर दौड़ गयी है!"

"बहादुरों का देश है!" रंगसाज ने सिर झुकाकर कहा। "यही मन होता है कि उनके साथ रहता..."

"तुम?" अपने घुटने पर हाथ मारते हुए रंगसाज चिल्ला उठा। "एक हफ़्ते बाद बर्फ का डला बनकर रह जाते!"

दोनों ख़ुशमिज़ाजी से खुलकर हँस दिये।

इनके चारों ओर नीले और सुनहरे फूल थे, हवा में सूर्य-किरणों के फीते-से थरथरा रहे थे, सुराही और गिलासों के पारदर्शी शीशे में से गहरे लाल रंग की शराब लौ दे रही थी और दूर से सागर की रेशमी-सी सरसराहट सुनायी पड़ रही थी।

"मेरे नेकदिल दोस्त विंचेंत्सो," खुली मुस्कान के साथ फिटर ने कहा, "तुम कविता में यह बयान करो कि मैं समाजवादी कैसे बना? तुम यह किस्सा जानते हो न?"

"नहीं तो," रंगसाज ने गिलासों में शराब डालते और मदिरा की लाल धारा को देखकर मुस्कराते हुए कहा, "तुमने कभी इसकी चर्चा ही नहीं की। यह तो तुम्हारी हड्डियों में ऐसे रचा हुआ है कि मैंने सोचा – तुम ऐसे ही पैदा हुए थे।"

"मैं वैसे ही नंगा और बुद्धू पैदा हुआ था, जैसे तुम और बाकी सभी लोग। जवानी में मैं अमीर बीवी के सपने देखता रहा और फौज में जाकर इसलिए

ख़ूब पढ़ाई करता रहा कि किसी तरह अफसर बन जाऊँ। मैं तेईस साल का था जब मैंने यह अनुभव किया कि दुनिया में ज़रूर कुछ गड़बड़-घोटाला है और उल्लू बने रहना शर्म की बात है!"

रंगसाज ने मेज़ पर कोहनियाँ टिका दीं, सिर ऊपर को कर लिया और पहाड़ की तरफ़ देखने लगा जिसके सिरे पर अपनी शाखाओं को झुलाते हुए विराट सनोबर खड़े थे।

"हमें यानी हमारी फौज कम्पनी को बोलोन्या भेजा गया। वहाँ किसानों में हलचल हो गयी थी। उनमें से कुछ यह माँग करते थे कि मालगुजारी कम की जाये और दूसरे यह चीख़ते थे कि उनकी मज़दूरी बढ़ायी जाये। मुझे लगा कि दोनों ही ग़लत हैं। मालगुजारी कम की जाये, मज़दूरी बढ़ायी जाये – कैसी बेवकूफ़ी की बात है यह! – मैंने सोचा। ऐसा करने से तो जमींदार तबाह हो जायेंगे। मुझे, शहर के रहनेवाले को तो यह बकवास और बड़ी बेतुकी बात लगी। सो मैं बुरी तरह झल्ला उठा, बेहद गर्मी, एक जगह से दूसरी जगह पर लगातार दौड़-धूप और रातों को पहरेदारी – इन सब चीज़ों ने आग में घी डालने का काम किया। वे किसान पट्ठे तो ज़मींदारों की मशीनें तोड़ते-फोड़ते थे और साथ ही उन्हें अनाज तथा ज़मींदारों की दूसरी चीजों को आग लगा देना भी अच्छा लगता था।"

उसने छोटे-छोटे घूँट भरते हुए शराब पी और पहले से भी ज़्यादा रंग में आकर कहता गया:

"वे भेड़-बकरियों के रेवड़ों की तरह भीड़ बनाकर खेतों में घूमते थे, लेकिन चुपचाप, रौद्र मुद्रा बनाये और काम-काजी ढंग से। हम उन्हें संगीनें दिखाकर और कभी-कभी बन्दूक़ों के कुन्दों से धकेलकर खदेड़ देते। वे तो डरे-सहमे बिना धीरे-धीरे तितर-बितर होते और फिर से इकट्ठे हो जाते। यह दोपहर की प्रार्थना के समान बड़ा ऊबभरा मामला था और जूड़ी के बुखार की तरह क़िस्सा हर दिन लम्बा ही होता चला गया। अब्रूत्से का रहनेवाला हमारा कार्पारल, जो ख़ुद भी किसान था और बहुत भला नौजवान था, बड़ा दुखी हो उठा, उसका रंग पीला पड़ गया, वह दुबला गया और वह बार-बार यह कहता रहता था:

"'बड़ी अटपटी स्थिति है, मेरे प्यारो! बेड़ा गर्क, लेकिन लगता यही है कि हमें गोलियाँ चलानी पड़ेंगी।'

"उसकी ऐसी बड़बड़ाहट से हम और भी बौखला गये। और इसी बीच हर कोने, हर टीले और पेड़ के पीछे से अड़ियल-जिद्दी किसानों के चेहरे दिखायी

देते थे, उनकी ग़ुस्से से जलती आँखें हमें चुभती-सी प्रतीत होतीं। ज़ाहिर है कि वे लोग दुश्मन की नज़र से देखते थे।"

"पियो!" नाटे विंचेंत्सो ने शराब से भरा हुआ गिलास अपने मित्र की तरफ़ स्नेहपूर्वक बढ़ाते हुए कहा।

"शुक्रिया, और ज़िन्दाबाद धुन के पक्के लोग!" फिटर ने एक ही साँस में गिलास खाली कर दिया, हथेली से मूँछें पोंछी और कहानी को आगे कहता चला गया:

"एक दिन मैं जैतून के पेड़ों के झुरमुट के पास खड़ा हुआ पेड़ों की रखवाली कर रहा था। बात यह थी कि किसान पेड़ों को भी नहीं बख़्शते थे। टीले के नीचे के दो किसान – एक बूढ़ा और दूसरा छोकरा-सा काम कर रहे थे, खाई खोद रहे थे। बेहद गर्मी थी, सूरज आग बरसा रहा था, यही मन होता था कि आदमी मछली बन जाये! मुझे बड़ी ऊब महसूस हो रही थी और अभी तक याद है कि बहुत ही ग़ुस्से से मैं इन लोगों की तरफ़ देखता रहा था। दोपहर होने पर इन्होंने काम बन्द किया, डबल रोटी, पनीर और शराब से भरी सुराही निकाली। तुम पर शैतान की मार – मैंने सोचा। अचानक क्या हुआ कि बूढ़े ने, जिसने अब तक मेरी तरफ़ एक बार भी देखने की तकलीफ़ नहीं की थी, छोकरे से कुछ कहा। छोकरे ने इन्कार करते हुए सिर हिला दिया। तब बूढ़ा बहुत कड़ाई से चिल्लाकर बोला:

"'जाओ!'

"छोकरा सुराही हाथ में लिये हुए मेरे पास आया और कहना चाहिए कि बहुत मन मारकर बोला:

"'मेरे पिताजी का ख़याल है कि आपको प्यास लगी है और चाहते हैं कि आप शराब पी लें।'

"बड़ी अजीब, किन्तु सुखद बात थी। मैंने बूढ़े की ओर सिर झुकाकर और इस तरह उसे धन्यवाद देकर शराब पीने से इन्कार कर दिया। बूढ़े ने आकाश की ओर देखते हुए जवाब दिया:

"'पी लीजिये महानुभाव, पी लीजिये। हम सैनिक को नहीं मानव को यह भेंट कर रहे हैं और इसकी तनिक भी आशा नहीं रखते हैं कि हमारी शराब पीकर सैनिक कुछ दयालु हो जायेगा।'

"'ऐसा डंक तो न मारो, शैतान के बच्चे!' मैंने सोचा और कोई तीन घूँट शराब पीकर उन्हें धन्यवाद दिया और वहाँ नीचे, टीले के दामन में वे दोनों

भोजन करने लगे। कुछ ही देर बाद सालेरनो का रहनेवाला ऊगो मेरी जगह ड्यूटी पर आ गया। मैंने उससे कहा कि ये दोनों किसान दयालु हैं। उसी शाम को मैं उस बाड़े के दरवाजे के पास खड़ा था जिसमें मशीनें रखी जाती थीं। तभी क्या हुआ कि छत से एक टाइल मेरे सिर पर आकर लगी। वह तो बहुत ज़ोर से नहीं लगी, लेकिन दूसरी टाइल इतने ज़ोर से कन्धे पर आकर गिरी कि मेरा बायाँ हाथ सुन्न हो गया।"

फिटर ख़ूब मुँह खोलकर और आँखें सिकोड़कर ज़ोर से हँस पड़ा।

"उन दिनों वहाँ टाइलों, पत्थरों और लाठियों में भी मानो जान आ गयी थी," उसने हँसते हुए ही कहा, "इन बेजान चीज़ों ने भी हमारे सिरों की काफ़ी बड़े-बड़े गुमटों से शोभा बढ़ा दी थी। होता क्या था कि कोई सैनिक चला जा रहा है या कहीं खड़ा है, अचानक जमीन फाड़कर कोई लाठी उस पर बरस पड़ती या फिर आसमान से कोई पत्थर उस पर आ गिरता। ज़ाहिर है कि हम ख़ूब जल-भुन गये थे।"

नाटे रंगसाज की आँखों में उदासी झलक उठी, उसका चेहरा फक हो गया और उसने धीमे-से कहा:

"ऐसी बातें सुनकर हमेशा शर्म महसूस होती है..."

"लेकिन किया क्या जाये! लोगों को अक़्ल भी बहुत धीरे-धीरे आती है न! तो आगे सुनो – मैंने मदद के लिए चीख़-फकार की। मुझे एक ऐसे घर में ले जाया गया, जहाँ हमारा एक अन्य सैनिक पहले से ही लेटा हुआ था। पत्थर लगने से उसका चेहरा घायल हो गया था। जब मैंने उससे पूछा कि यह कैसे हुआ तो उसने मरे-मरे ढंग से हँसते हुए जवाब दियाः

"'साथी, सफ़ेद झोंटेवाली एक चुड़ैल बुढ़िया ने पत्थर दे मारा,' और फिर बोली – 'मुझे मार डालो।'

"'उसे गिरफ़्तार कर लिया गया?'

"'नहीं, क्योंकि मैंने कहा कि मैं ख़ुद ही गिर गया था और मुझे ऐसे ही चोट लग गयी है। कमाण्डर ने मेरी बात का यक़ीन नहीं किया, यह उसकी आँखें कह रही थीं। लेकिन आप मेरे साथ सहमत होंगे कि बुढ़िया ने मेरा यह हुलिया बन दिया है, ऐसा मानना भी तो बड़ा अटपटा लगता है। शैतान की नानी! उन पर भारी गुज़रती है और यह समझना भी कुछ मुश्किल नहीं कि हम भी उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाते।'

"'बात ऐसा ही है!' मैंने सोचा। डाक्टर और उसके साथ दो महिलायें पधारीं।

उनमें से एक बहुत ही सुन्दर थी, स्वर्णकेशी, शायद वेनिस की रहनेवाली। दूसरी के बारे में मुझे कुछ याद नहीं। उन्होंने मेरी चोट की जाँच-पड़ताल की। बेशक बड़ी मामूली-सी बात थी, उन्होंने उस पर पट्टी बाँध दी और चले गये।"

फिटर के माथे पर बल पड़ गये, वह कुछ देर तक खामोश रहा और उसने जोर से हाथों को मला। उसके साथी ने गिलास में फिर से शराब डाल दी। शराब डालते समय उसने सुराही को ऊँचा उठाया और शराब लाल, सजीव धारा की तरह हवा में थिरकती रही।

"हम दोनों खिड़की के पास बैठ गये," फिटर उखड़े-उखड़े-से अन्दाज़ में कहता गया, "सो भी धूप से बचकर। अचानक हमें सुनहरे बालोंवाली सुन्दरी की प्यारी-सी आवाज़ सुनायी दी। वह अपनी सहेली और डाक्टर के साथ बाग़ में से जाते हुए फ्रांसीसी भाषा में, जो मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ, यह कह रही थीः

"'आप लोगों ने ध्यान दिया कि उसकी आँखें कैसी हैं? स्पष्ट है कि वह भी किसान है और सैन्य-सेवा ख़त्म होने पर हमारे यहाँ के अन्य सभी किसानों की तरह शायद वह भी समाजवादी बन जायेगा। और ऐसी आँखोंवाले लोग सारी दुनिया को जीत लेना चाहते हैं, जीवन को बिल्कुल नया रंग-रूप देना चाहते है, हमें कहीं खदेड़ देना, नष्ट कर देना चाहते हैं और वह इसलिए किसी अन्धे और ऊबभरे न्याय की जीत का डंका बज जाये!'

"'बुद्धू लोग हैं,' डाक्टर ने राय ज़ाहिर की, 'कुछ-कुछ बच्चे, कुछ-कुछ जानवर।'

"'जानवर हैं – यह तो सही है। लेकिन उनमें बच्चों जैसा क्या है?'

"'सभी की समानता के ये सपने...'

"'ज़रा सोचिये तो – मैं समान हूँ बैल जैसी आँखोंवाले इस नौजवान या परिन्दे जैसे चेहरेवाले उस दूसरे नौजवान के। या फिर हम सभी – आप, मैं और यह, हम समान हैं इन घटिया खूनवालों के! जिन लोगों को अपने जैसों की पिटाई का काम सौपा जा सकता है, वे उन्हीं की तरह जानवर हैं...'

"वह बहुत जोश से बहुत कुछ कहती गयी और मैं सुनता हुआ सोचता रहा – 'अरे वाह, देवी जी!' मैंने उसे कई बार पहले भी देखा था और बेशक तुम तो यह जानते ही हो कि शायद ही कोई सैनिक की तरह औरत के सपने देखता हो। ज़ाहिर है कि मैंने कहीं अधिक दयालु, समझदार और नेकदिल औरत के रूप में उसकी कल्पना की थी। उस समय मुझे ऐसा लगता था कि कुलीन तो

विशेष रूप से बुद्धिमान लोग होते हैं।

"मैंने अपने साथी से पूछा – 'तुम यह भाषा समझते हो?' नहीं, वह फ्रांसीसी नहीं जानता था। तब मैंने उसे वह सबकुछ बताया जो स्वर्णकेशी ने कहा था। मेरा साथी तो गुस्से से लाल-पीला हो गया, अपनी आँख से – दूसरी पर पट्टी बँधी थी – चिंगारियाँ-सी छोड़ते हुए कमरे में गुस्से से उछलने-कूदने लगा।

"'भई वाह!' वह बुदबुदाया। 'भई वाह! वह मुझसे अपना उल्लू सीधा करवाती है और मुझे इन्सान ही नहीं मानती! मैं इसकी ख़ातिर अपनी मान-मर्यादा को अपमानित होने देता हूँ और यही उससे इन्कार करती है! इसकी दौलत-जायदाद की रक्षा के लिए मैं अपनी आत्मा की हत्या का जोख़िम उठा रहा हूँ और...'

"वह कुछ मूर्ख नहीं था और उसने अपने को अत्यधिक अपमानित अनुभव किया, मैंने भी। अगले दिन हमने किसी तरह का संकोच किये बिना इस महिला के बारे में ऊँचे-ऊँचे अपनी राय ज़ाहिर की। लुओतो ने केवल दबी ज़बान में बुदबुदाते हुए कुछ कहा और हमें यह सलाह दी:

"'सावधानी से काम लो, मेरे प्यारो! यह नहीं भूलना कि तुम फौजी हो और तुम्हारे लिये अनुशासन नाम की भी कोई चीज़ है!'

"नहीं, हम यह नहीं भूले थे। लेकिन हममें से बहुतों ने, सच कहा जाये, तो लगभग सभी ने अपने कान बन्द कर लिये, आँखें मूँद लीं और हमारे किसान दोस्तों ने हमारे इस तरह अन्धे-बहरे हो जाने का ख़ूब अच्छा फ़ायदा उठाया। उन्होंने बाजी जीत ली। बहुत ही अच्छी तरह से पेश आते थे वे हमारे साथ। वह सुनहरे बालोंवाली सुन्दरी उनसे बहुत कुछ सीख सकती थी। उदाहरण के लिए वे उसे बहुत ही अच्छी तरह यह सिखा सकते थे कि सच्चे और ईमानदार लोगों का कैसे आदर किया जाना चाहिए। जहाँ हम ख़ून बहाने के इरादे से गये थे, वहीं से जब विदा हुए तो हममें से बहुतों को फूल भेंट किये गये। जब हम गाँव की सड़कों पर से गुज़रते तो अब हम पर पत्थर और टाइलें नहीं, बल्कि फूल बरसाये जाये थे, मेरे दोस्त। मेरे ख़याल में हम इसके लायक़ थे। मधुर विदाई को याद करते हुए बुरे स्वागत को भुलाया जा सकता है!"

वह हँस पड़ा और फिर बोला:

"तुम्हें यह सबकुछ कविता में बयान करना चाहिए, विंचेंत्सो..."

रंगसाज ने सोचभरी मुस्कान के साथ उत्तर दिया:

"हाँ, लम्बी कविता के लिए यह अच्छी सामग्री है। मुझे लगता है कि मैं ऐसा

कर पाऊँगा। पच्चीस बरस की उम्र पार कर लेने के बाद आदमी अच्छे प्रेम-गीत नहीं लिख पाता।"

मुरझा चुके फूल को फेंककर उसने दूसरा फूल तोड़ लिया और सभी ओर नज़र दौड़ाकर धीरे-धीरे कहता गया:

"माँ की छाती से प्रेमिका की छाती तक का रास्ता तय करने के बाद आदमी को दूसरे, नये सुख की ओर बढ़ना चाहिए..."

फिटर ने कोई राय ज़ाहिर नहीं की, गिलास में शराब को ही हिलाता रहा। अंगूर के बग़ीचों के पीछे, वहाँ नीचे, सागर धीरे-धीरे मरमर ध्वनि कर रहा था, गर्म हवा में फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध तैरती आ रही थी।

"यह तो सूरज ही है जो हमें इतना अधिक काहिल और नर्मदिल बना देता है," फिटर बुदबुदाया।

"मुझसे अच्छे प्रेम-गीत नहीं रच जाते, मैं बहुत नाख़ुश हूँ अपने से," अपनी पतली-पतली भौंहे सिकोड़कर विंचेंत्सो ने धीमी आवाज़ में कहा।

"तुमने कुछ नया रचा?"

रंगसाज ने तुरन्त उत्तर नहीं दिया और फिर बोला:

"हाँ, कल 'कोमो' होटल की छत पर।" और धीमी-धीमी, सोच में डूबी तथा लयबद्ध आवाज़ में सुनाने लगाः

सूना तट है, भूरी-भूरी और पुरातन चट्टानों से
शिशिर-सूर्य सस्नेह बिछुड़ता विदा ले रहा पाषाणों से,
आतुर लहरें झपट रहीं हैं काले पाषाणों पर, तट पर
स्नान कराती ये सूरज को नीले सागर में ले जाकर,
ताम्र-पात वे जिनको चंचल पतझर-पवन उड़ाकर लाया
रंग-बिरंगे मृत विहगों-सी झलके जल में उनकी छाया
शोक-व्यथित है पीला अम्बर, है उदाम उद्वेलित सागर
केवल मुस्काता है दिनकर जो विश्राम करेगा थककर।

दोनों बहुत देर तक ख़ामोश रहे, रंगसाज सिर झुकाये हुए ज़मीन को ताकता रहा, हट्टा-कट्टा और लम्बा-तड़ंगा फिटर मुस्कराया और बोलाः

"सभी चीज़ों को सुन्दर अभिव्यक्ति दी जा सकती है, किन्तु अच्छे व्यक्ति, अच्छे लोगों के बारे में सुन्दर शब्दों, सुन्दर गीतों से बढ़कर कुछ भी नहीं!"

कहानी - पारमा के बच्चे

जिनोवा में रेलवे स्टेशन के सामने वाले छोटे-से चौक में लोगों की भारी भीड़ जमा थी। उनमें अधिकतर मज़दूर थे, लेकिन बढ़िया कपड़े पहने और सम्पन्न तथा खाते-पीते लोग भी उनमें शामिल थे। नगरपालिका के सदस्य इस भीड़ में सबसे आगे थे। इनके सिरों के ऊपर रेशमी धागों से बड़े कलात्मक ढंग से कढ़ा हुआ नगर-ध्वज फहरा रहा था। पास ही में मज़दूर-संगठनों के रंग-बिरंगे झण्डे हिल-डुल रहे थे। झण्डों के सुनहरे झब्बे, झालरें और तनियाँ तथा ध्वज-डण्डों के धातु से मढ़े हुए बर्छीनुमा सिरे चमचमा रहे थे, रेशम की सरसराहट सुनायी पड़ रही थी, समारोही मनःस्थिति वाली भीड़ का मन्द गायन सहगान की तरह धीमे-धीमे गूँज रहा था।

एक ऊँचे चबूतरे पर कोलम्बस की मूर्ति भीड़ के ऊपर खड़ी थी, उसी कोलम्बस की मूर्ति जिसने अपने विश्वासों के लिए बहुत दुख-दर्द सहे और विजयी भी इसलिए हुआ कि उनमें विश्वास करता था। इस समय भी वह नीचे खड़े लोगों की ओर देख रहा था और अपने संगमरमर के होंठों से मानो यह कह रहा थाः

"केवल विश्वास करने वाले ही विजयी होते हैं।"

बाजे बजाने वाले काँसे-ताँबे के अपने बाजे चबूतरे के गिर्द मूर्ति के कदमों में रख दिये थे और वे धूप में सोने की तरह चमक रहे थे।

पीछे की ओर ढालू अर्द्ध-चन्द्राकार स्टेशन की संगमरमर की, भारी-भरकम इमारत ऐसे अपनी भुजाएँ फैलाये खड़ी थी मानो लोगों को अपनी बाहों में भर लेना चाहती हो। बन्दरगाह की ओर से भाप-चालित जहाज़ों की भारी फक-फक, पानी में प्रोपेलर की दबी-घुटी आवाज़, जंजीरों की छनक, सीटियाँ और चीख़-चिल्लाहट सुनायी दे रही थी। चौक में शान्ति थी, उमस थी और वह तेज़ धूप से तप रहा था। घरों के छज्जों और खिड़कियों में औरतें फूल लिये खड़ी थीं तथा उनके पास ही पर्व-त्यौहारों के अवसरों की तरह सजे-धजे और फूलों की तरह प्रतीत होने वाले बच्चे खड़े थे।

स्टेशन की ओर बढ़े आ रहे इंजन ने सीटी बजायी, भीड़ हरकत में आयी, मुड़े-मुड़ाये हुए अनेक टोप काले पक्षियों की भाँति हवा में उछल गये, बजवइयों

ने बाजे उठा लिये, कुछ गम्भीर और अधेड़ उम्र के लोग अपने को ठीक-ठाक करके आगे आये, उन्होंने लोगों की ओर मुँह किया और हाथों को दायें-बायें हिलाते-डुलाते हुए भीड़ से कुछ कहने लगे।

धीरे-धीरे और मुश्किल से हटते हुए लोगों ने सड़क पर चौड़ा रास्ता बना दिया।

"किसका स्वागत किया जा रहा है?"

"पारमा नगर के बच्चों का।"

पारमा में हड़ताल चल रही थी। मालिक लोग झुकने को तैयार नहीं थे, मज़दूरों के लिए स्थिति बड़ी कठिन हो गयी थी और इसलिए उन्होंने अपने बच्चों को, जो भूख के कारण बीमार होने लगे थे, जिनोवा में अपने साथियों के पास भेज दिया था।

रेलवे स्टेशन के स्तम्भों के पीछे से बालकों का एक सुव्यवस्थित जुलूस बढ़ा आ रहा था। वे अधनंगे थे और अपने चिथड़ों में झबरीले, अजीब जानवरों की तरह झबरीले-से लग रहे थे। वे पाँच-पाँच की कतारें बनाये और एक-दूसरे के हाथ थामे हुए चले आ रहे थे-बहुत ही छोटे-छोटे धूल-मिट्टी से लथपथ और शायद थके-हारे। उनके चेहरे गम्भीर थे, किन्तु आँखों में सजीवता और निर्मलता की चमक थी और जब बैण्ड ने गैरीबाल्डी स्तुतिगान की धुन बजायी दुबले-पतले, तीखे और क्षुधा-पीड़ित चेहरों पर ख़ुशी की लरह-सी दौड़ गयी, उल्लासपूर्ण मुस्कान खिल उठी।

भीड़ ने भविष्य के इन लोगों का बेहद शोर मचाते हुए स्वागत किया, उनके सम्मुख झण्डे झुका दिये गये। बच्चों की आँखों को चौंधियाते और कानों को बहरे करते हुए बाजे खूब जोरों से बज उठे। ऐसे जोरदार स्वागत से तनिक स्तम्भित होकर घड़ी भर को वे पीछे हटे किन्तु तत्काल ही सँभल गये, मानो लम्बे हो गये, घुल-मिलकर एक शरीर बन गये और सैकड़ों कण्ठों से, किन्तु मानो एक ही छाती से निकलती आवाज में चिल्ला उठेः

"इटली ज़िन्दाबाद!"

"नव पारमा नगर ज़िन्दाबाद!" बच्चों की ओर दौड़ती हुई भीड़ ने ज़ोरदार नारा लगाया।

"गैरीबाल्डी ज़िन्दाबाद!" भूरे पच्चड़ की भाँति भीड़ में घुसते और उसी में लुप्त होते हुए बच्चे चिल्लाए।

होटलों की खिड़कियों में और घरों की छतों पर सफेद परिन्दों की तरह

रूमाल हिल रहे थे, वहाँ से लोगों के सिरों पर फूलों की बारिश हो रही थी और ऊँची-ऊँची आवाज़ें सुनायी दे रही थी।

सभी कुछ समारोही बन गया, सभी कुछ में सजीवता आ गयी, भूरे रंग का संगमरमर तक किरण-बिन्दुओं से खिल उठा।

झण्डा लहरा रहे थे, टोप-टोपियाँ और फूल हवा में उड़ रहे थे। वयस्कों के सिरों के ऊपर बच्चों के छोटे-छोटे सिर दिखायी देने लगे, लोगों का स्वागत करते और फूलों को लोकते हुए बच्चों के छोटे-छोटे, गन्दे-मैले हाथ झलक दिखाने लगे और हवा में ये नारे लगातार ऊँचे-ऊँचे गूँज रहे थेः

"समाजवाद ज़िन्दाबाद!"

"इटली ज़िन्दाबाद!"

लगभग सभी बच्चों को गोद में उठा लिया गया था, वे वयस्कों के कन्धों पर बैठे थे, कठोर से प्रतीत होने वाले मुच्छल लोगों की चौड़ी छातियों से चिपके हुए थे। शोर-शराबे, हँसी-ठहाकों और हो-हल्ले में बैण्ड की आवाज़ मुश्किल से सुनायी दे रही थी।

शेष रह गये बालकों को लेने के लिए नारियाँ भीड़ में इधर-उधर भाग रही थीं और एक-दूसरी से कुछ इस तरह के प्रश्न कर रही थीं:

"अन्नीता, तुम तो बच्चे ले रही हो न?"

"हाँ। आप भी ?"

"लँगड़ी मार्गारीता के लिए भी एक बच्चा ले लेना..."

सभी ओर उल्लासपूर्ण और पर्व के रंग में रंगे हुए चेहरे थे, दयालु और नम आँखे थीं और कहीं-कहीं हड़तालियों के बच्चे रोटी भी खाने लगे थे।

"हमारे वक़्तों में किसी को यह नहीं सूझा!" चोंच जैसी नाक और दाँतों के बीच काला सिगार दबाये हुए एक बूढ़े ने कहा।

"और कितना सीधा-सादा उपाय है..."

"हाँ! सीधा-सादा और समझदारी का।"

बूढ़े ने मुँह से सिगार निकाला, उसके सिरे को गौर से देखा और आह भरकर राख झाड़ी। इसके बाद पारमा के दो बच्चों को, जो शायद भाई थे, अपने निकट देखकर ऐसी भयानक-सी सूरत बना ली मानो उन पर हमला करने को तैयार हो। बच्चे गम्भीर मुद्रा बनाये उसकी तरफ देख रहे थे। इसी समय उसने टोपी आँखों पर खींच ली और हाथ फैला दिये। बच्चे माथे पर बल डालकर कुछ पीछे हटते हुए एक-दूसरे के साथ सट गये। बूढ़ा अचानक उकड़ूँ बैठ

गया और उसने मुर्गे से बहुत मिलती-जुलती आवाज़ में ज़ोर से बाँग दी। नंगे पैरों को पत्थरों पर पटकते हुए बच्चे खिलखिलाकर हँस दिये। बूढ़ा उठा, उसने अपना टोप ठीक किया और यह मानते हुए कि अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है, लड़खड़ाते पैरों पर डोलता हुआ वहाँ से चल दिया।

पके बालोंवाली एक कुबड़ी औरत, जो चुड़ैल बाबा-यागा जैसी लगती थी और जिसकी हड़ीली ठोड़ी पर कड़े, भूरे बाल थे, कोलम्बस की मूर्ति के पास खड़ी थी और अपनी बदरंग शाल के पल्लू से, रोने के कारण लाल हुई आँखों को पोंछ रही थी। इस उत्तेजित भीड़ में यह काली-काली और बदसूरत औरत अजीब ढंग से अकेली-सी प्रतीत हो रही थी...

जिनोआ की काले बालोंवाली एक औरत सात साल के एक बच्चे की उँगली थामे हुए थिरकती-सी चली जा रही थी। बालक खड़ाऊँ और कन्धों को छूता हुआ भूरे रंग का टोप पहने था। वह टोप को गुद्दी पर करने के लिए सिर को पीछे की ओर झटकता था, लेकिन वह फिर से चेहरे पर आ जाता था। औरत ने लड़के के छोटे-से सिर से उसे उतारकर कुछ गाते तथा हँसते हुए हवा में लहराया, बेहद ख़ुश लड़का सिर ऊपर की ओर करके टोप को देखता रहा, फिर उसे पकड़ने के लिए उछला और फिर ये दोनों आँखों से ओझल हो गये।

बड़ी-बड़ी नंगी भुजाओंवाला लम्बा-तड़ंगा व्यक्ति, जो चमड़े का पेशबन्द बाँधे था, भूरे रंग की चुहिया जैसी छह वर्षीया बालिका को कन्धे पर बिठाये था। उसने आग की लपट जैसे लाल बालोंवाले लड़के की उँगली थामे हुए अपने निकट जाती औरत से कहाः

"समझती हो न, अगर हमारे इस ढंग ने गहरी जड़ जमा ली... तो हमें जीतना मुश्किल होगा। ठीक है न?"

इतना कहकर उसने ज़ोरदार, ऊँचा और विजयी ठहाका लगाया और अपने हल्के-से बोझ को नीली हवा में उछालकर नारा लगायाः

"पारमा ज़िन्दाबाद!"

बच्चों को उठाये या उनके हाथ थामे हुए लोग चले गये और चौक में रह गये कुचले-मुरझाये फूल, टॉफियों के कागज और प्रफुल्ल हमालों के दल और उनके ऊपर थी नयी दुनिया को खोजनेवाले उदात्त व्यक्ति की मूर्ति।

और सड़कों पर से नवजीवन की ओर बढ़ते लोगों की प्रसन्नतापूर्ण ऊँची-ऊँची आवाज़ें ऐसे सुनायी दे रही थीं मानो बहुत बड़े-बड़े बिगुल बज रहे हों।

कहानी - एक पतझड़

एक बार पतझड़ के मौसम में मैंने अपने को बड़ी ही बेढब और कष्टकारी परिस्थिति में फँसा हुआ पाया: उस शहर में मैं अभी पहुँचा ही था और वहाँ किसी को नहीं जानता था। मेरी जेब में एक कोपेक भी नहीं था और न ही सिर छुपाने को कोई जगह थी।

शुरू के कुछ दिनों मैंने अपने वे कपड़े बेच डाले जिनके बिना काम चलाया जा सकता था। फिर मैं वह शहर छोड़कर उस्तिए नामक जगह चला गया जहाँ जहाज़ी घाट थे और, सीज़न में, जब पानी नावों-स्टीमरों के आने-जाने लायक़ होता था तो वहाँ की रोज़मर्रे की ज़िन्दगी हलचलपूर्ण व्यस्तता से भरपूर होती थी, लेकिन अब वहाँ सन्नाटा और वीरानी का आलम था। अक्टूबर का महीना बीत रहा था।

नम बालू को पैरों की ठोकर से छितराते हुए और कुछ खाने लायक़ सामान पा लेने की उम्मीद में खोजी निगाहों से लगातार उसे निरखते-परखते हुए मैं अकेले निर्जन मकानों और ट्रेडिंग-बूथों के बीच भटक रहा था और इस बारे में सोच रहा था कि पेट का भरा होना कितनी शानदार चीज़ होती है...

सांस्कृतिक विकास की इस मंज़िल पर शारीरिक भूख बुझाने के मुक़ाबले आध्यात्मिक भूख बुझाना अधिक आसान है। आप घरों से घिरी हुई सड़कों पर भटकते रहते हैं। घर, जो बाहर से सन्तोषजनक सीमा तक सुन्दर होते हैं और भीतर से – हालाँकि यह लगभग एक अनुमान ही है – सन्तोषजनक सीमा तक आरामदेह होते हैं; ये आपके भीतर वास्तुकला, स्वास्थ्य विज्ञान और बहुतेरे दूसरे उदात्त और बुद्धिमत्तापूर्ण विषयों पर सुखद विचार पैदा कर सकते हैं; सड़कों पर आप गर्म और आरामदेह कपड़े पहने लोगों से मिलते हैं – वे विनम्र होते हैं, अक्सर किनारे हटकर आपके लिए रास्ता छोड़ देते हैं और आपके वजूद के अफ़सोसनाक़ तथ्य पर ध्यान देने से कुशलतापूर्वक इन्कार कर देते हैं। निश्चय ही, एक भूखे आदमी की आत्मा एक भरे पेट वाले की आत्मा की अपेक्षा बेहतर ढंग से और अधिक स्वास्थ्यप्रद ढंग से पोषित होती है – यह एक ऐसा विरोधाभास है जिससे, निस्सन्देह, भरे पेट वालों के पक्ष में कुछ निहायत चालाकी भरे नतीजे निकाल लेना मुमकिन है!...

...शाम ढल रही थी। बारिश हो रही थी और उत्तर से आती हवा मनमौजी अन्दाज़ में बह रही थी। वह ख़ाली बूथों और स्टालों के बीच से सीटी बजाती हुई गुज़रती थी, होटलों की बन्द खिड़कियों से टकराती थी और नदी की लहरों पर कोड़ों-सी चोट करती हुई झाग के ऊँचे सफ़ेद तरंग-श्रृंगों का निर्माण करती थी। लहरें एक के बाद एक तेज़ी से भागती हुई अँधेरे विस्तार में समा जाती थीं...ऐसा लगता था मानो नदी जाड़े के आगमन को महसूस कर रही थी और बर्फ़ के बन्धनों से आतंकित भागती जा रही थी, जो उत्तरी हवा की मदद से उसी रात भी पड़ सकती थी। आसमान भारी और अँधेरा था और उससे लगातार बारिश की इतनी बारीक बूँदें गिर रहीं थी कि आँखों से मुश्किल से ही देखा जा सकता था। दो टूटे हुए और विकराल भिंसा के पेड़ और उनकी जड़ों के पास एक उल्टी पड़ी नाव – इनसे मेरे आसपास की उदासी और कारुणिकता और अधिक बढ़ जा रही थी।

टूटे पेंदे वाली उल्टी पड़ी नाव और ठण्डी हवा द्वारा नंगे कर दिये पेड़, बूढ़े और विषादमय...मेरे इर्द-गिर्द की हर चीज़ टूटी हुई थी, बंजर थी और मृत थी और आकाश लगातार रोता जा रहा था, आँसू बहाता जा रहा था। मेरे आसपास एकदम निर्जन अँधेरा फैला था – लग रहा था जैसे सबकुछ मर रहा हो, लग रहा था जैसे जल्दी ही सिर्फ़ मैं अकेला जीवित बचा रह जाऊँगा। और ठण्डी मृत्यु मेरी भी प्रतीक्षा कर रही थी।

और उस समय मैं सत्रह साल का था – एक शानदार उम्र!

ठण्डी, नम रेत पर मैं चलता रहा, चलता रहा। मेरे दाँत कट-कट करते हुए भूख और ठण्ड के सम्मान में गिटकिरी बजा रहे थे और, अचानक, खाने लायक़ किसी चीज़ की बेसूद तलाश करते हुए जब मैं एक बूथ के पीछे घूम रहा था – मैंने औरत की पोशाक पहने एक आकृति को ज़मीन पर एकदम दोहरी लेटी हुई कुछ करते देखा। वह बारिश से एकदम सराबोर थी और कन्धे मोड़े झुकी हुई थी। उसके पीछे ठहरकर, मैंने यह देखने के लिए नीचे देखा कि वह कर क्या रही है। ऐसा जान पड़ा कि बूथ के नीचे से सुरंग बनाने के लिए वह अपने हाथों से ही बालू में एक गड्ढा खोद रही है।

"यह तुम किसलिए कर रही हो?" मैंने उसकी बग़ल में एड़ियों के बल नीचे उकड़ूँ बैठते हुए पूछा।

उसने एक घुटी हुई चीख़ निकाली और तेज़ी से उछलकर अपने पैरों पर खड़ी हो गयी। अब, जब वह खड़ी हो गयी थी और भयभीत, फटी आँखों से

मुझे घूर रही थी तो मैंने देखा कि वह मेरी ही उम्र की, बहुत प्यारी-सी दीखने वाली, छोटे-से चेहरे वाली एक लड़की है। उसके चेहरे पर, दुर्भाग्य से, चोट के तीन बड़े निशान थे। यह उसके चेहरे की सुन्दरता के प्रभाव को कम कर रहा था, हालाँकि चोट के ये निशान सन्तुलन के गहरे बोध के साथ सुनिश्चित दूरियों पर अंकित थे – एक-एक दोनों आँखों के नीचे, दोनों समान आकार के, और तीसरा, कुछ बड़ा, ललाट पर, नकबाँसा के ठीक ऊपर। इस सन्तुलन में, किसी आदमी की सुन्दरता चौपट करने के काम में, एक कलाकार के कला कर्म की वास्तविक परिष्कृति देखी जा सकती थी।

लड़की मेरी ओर देखती रही और उसकी आँखों से भय का भाव धीरे-धीरे ग़ायब हो गया…फटाफट उसने हाथ से रेत झाड़ी, सिर पर बँधे सूती स्कार्फ को ठीक किया और हवा से बचने के लिए सिकुड़ते हुए बोली:

"तुम भी भूखे हो, है न? तो अब तुम खोदो थोड़ी देर। मेरे हाथ थक गये हैं। इसके भीतर रोटी है," उसने बूथ की ओर इशारा किया, "यह स्टॉल अभी तक खुलता रहा है…"

मैंने खोदना शुरू किया। वह थोड़ी देर इन्तज़ार करती रही और कुछ समय तक मुझे देखने के बाद, बग़ल में उकड़ूँ बैठकर मेरी मदद करने लगी।

हम चुपचाप काम करते रहे। मैं बता नहीं सकता कि मैं उस समय अपराध-संहिता, नैतिकता, सम्पत्ति और ऐसी उन तमाम चीज़ों के बारे में सोच रहा था या नहीं जिन्हें, जो जानते हैं उनका कहना है कि, हमें अपनी ज़िन्दगी में हर क्षण अपने दिमाग़ में रखना चाहिए। भरसक मैं सच्चाई को यथावत बयान करना चाहता हूँ, और इसलिए, मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि, जहाँ तक मुझे याद है, मैं बूथ की दीवार के नीचे से सुरंग बनाने के काम में इतना तल्लीन हो गया था कि उस चीज़ के अलावा सबकुछ पूरी तरह भूल चुका था, जिसकी हमें बूथ के भीतर मिलने की उम्मीद थी…

शाम गहराती जा रही थी। हमारे इर्द-गिर्द नम, ठण्डा, निर्मम अँधेरा गाढ़ा होता जा रहा था। लहरों का शोर अब पहले से कम प्रचण्ड था लेकिन बूथ की टिन की छत पर बारिश की बूँदें ज़्यादा से ज़्यादा कोलाहल करती हुई बजने लगी थीं। दूर कहीं से चौकीदार की सीटी की आवाज़ आ रही थी।

"वहाँ कोई फ़र्श है या नहीं?" मेरी सहायक ने धीरे से पूछा। मैं समझ नहीं पाया कि वह किस चीज़ के बारे में पूछ रही है और कुछ नहीं बोला।

"मेरा मतलब है, बूथ के भीतर फ़र्श तो नहीं बना है? अगर है तो हमारी सारी

मेहनत बेकार जायेगी। पूरी सुरंग खोदने के बाद हमें मोटे पटरे मिलेंगे...उन्हें कैसे तोड़ोगे? बेहतर होगा कि ताला तोड़ दिया जाये...ताला कोई मज़बूत नहीं है..." शानदार विचार औरतों के दिमाग़ में कम ही आते हैं। फिर भी, जैसा कि आप देख रहे हैं, ऐसा हुआ। अच्छे विचारों की मैं हमेशा से ही क़द्र करता रहा हूँ और यथासामर्थ्य उन पर अमल करने की अधिकतम सम्भव कोशिशें करता रहा हूँ।

ताले को खोजने के बाद मैंने उसे ज़ोर का झटका दिया और वह कड़ियों सहित हाथ में आ गया। मेरी सहयोगी झुकी और शटर के नीचे की आयताकार जगह से साँप की तरह रेंगकर बूथ के अन्दर घुस गयी।

"बहुत अच्छे!" वह शाबासी देते हुए चिल्लायी।

किसी औरत के मुँह से प्रशंसा का एक शब्द सुनना मुझे किसी पुरुष द्वारा प्रस्तुत दूरी सम्बोध-गीति से भी अधिक प्रीतिकर लगता है। चाहे भले ही वह पुरुष अपनी वक्तृता-कला में, प्राचीन काल के सभी वक्ताओं को मिला दिया जाये, और उन सबसे भी अधिक पटु क्यों न हो! लेकिन उस क्षण, इस उपहार पर मैंने बहुत ज़्यादा ध्यान नहीं दिया, और उससे संक्षेप में और डरते हुए पूछा:

"कुछ है?"

एकरस आवाज़ में भीतर से उसने अपनी खोजों को गिनाना शुरू कर दिया:

"एक टोकरी पुराने बोतल...थैले, ख़ाली...एक छाता...एक लोहे की बाल्टी।"

कुछ भी खाने लायक नहीं। मेरी उम्मीदें डूबने लगीं, लेकिन तभी, अचानक वह जोशीली आवाज़ में चिल्लायी:

"आह! मिल गया..."

"क्या?"

"रोटी...पावरोटी का पूरा पैकेट, सफ़ेद पावरोटी का...भीगा है, हालाँकि... पकड़ो!"

पावरोटियों का पैकेट मेरे पैरों के पास लुढ़का आया और ठीक पीछे से अपराध में मेरी सहयोगी बाहर निकली, विजयी मुद्रा में। तब तक पावरोटी का एक टुकड़ा मैं तोड़कर मुँह में डाल भी चुका था और चबाने लगा था...

"ये बात हुई! मुझे भी दो थोड़ा...अब हमें यहाँ से हट जाना चाहिए। कहाँ चला जाये?" अँधेरे को भेदने के लिए अपनी आँखों पर ज़ोर देते हुए उसने अपने चारों ओर देखा...भीगा हुआ, आवाज़ों से भरा हुआ अन्धकार चतुर्दिक

व्याप्त था...“वहाँ, वो उल्टी नाव पड़ी है...उसके बारे में क्या ख़याल है?”

“चलो, चलें!” और हम चल पड़े। बीच-बीच में अपनी लूट के माल में से तोड़-तोड़कर हम मुँह में ठूँसते रहे और चलते रहे...बारिश तेज़ थी, नदी दहाड़ रही थी और दूर कहीं से एक लम्बी उपहासपूर्ण सीटी की आवाज़ आ रही थी जैसे कोई दीर्घकाय प्राणी, जो भय का अर्थ न जानता हो, हर चीज़ का, हर व्यक्ति का, यहाँ तक कि शरद की उस वीभत्स रात्रि का और हमारा – इस रात के दो नायकों का मज़ाक़ उड़ा रहा हो...उस सीटी की हर आवाज़ पर कोई चीज़ मेरे दिल को जैसे जकड़-सी लेती थी, लेकिन मैं लोलुपता के साथ खाता जा रहा था और वह लड़की थी, जो मेरे बायें, साथ-साथ चल रही थी।

“तुम्हारा नाम क्या है?” किसी चीज़ ने मुझे पूछने के लिए प्रेरित किया।

“नताशा!” ख़ूब तेज़-तेज़ चपर-चपर करते हुए उसने उत्तर दिया।

मैंने उसे देखा और मेरा दिल मानो दर्द से सिकुड़ने लगा। मैंने सामने अँधेरे में देखा और मुझे लगा कि मेरी नियति की कुरूप, विडम्बनापूर्ण रीति मेरे ऊपर मुस्कुरा रही है – एक रहस्यमय ठण्डी मुस्कुराहट...

...लकड़ी की नाव पर बारिश लगातार बज रही थी, उसकी दबी-घुटी-सी आवाज़ उदास विचारों को उकसा रही थी, हवा नाव की टूटी तली की चौड़ी दरार से, जिसमें पटरे का एक ढीला टुकड़ा फड़फड़ा रहा था, होकर सीटी बजाती हुई गुज़रती थी और पटरे का टुकड़ा मानो आशंकित होकर शिकायताना अन्दाज़ में चरचरा रहा था। नदी की लहरें तट पर थपेड़े मार रही थीं और एकरस, निराशा भरी आवाज़ पैदा कर रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे वे अवर्णनीय हद तक उबाऊ और अप्रिय किसी चीज़ के बारे में कुछ कह रही हों, किसी ऐसी चीज़ के बारे में जिससे वे विरक्ति की हद तक ऊब चुकी हों, किसी ऐसी चीज़ के बारे में जिससे वे दूर भाग जाना चाहती हों, लेकिन फिर भी उसके बारे में कुछ कहना अपरिहार्य हो। बारिश की आवाज़ लहरों के उन थपेड़ों की आवाज़ के साथ मिल गयी थी और उलटी हुई नाव के ऊपर धरती के सीने में लम्बे समय तक दबा रहने के बाद निकले दीर्घ निःश्वास की आवाज़ तैर रही थी। ऐसा लगा था मानो चमकदार, उष्ण ग्रीष्म से ठण्डे, सीलनभरे, कुहासाच्छन्न पतझड़ में परिवर्तन की चिरन्तन रीति से वह ऊबी और खीझी हुई हो। निर्जन तट पर हवा अन्धाधुन्ध झकोरे मार रही थी और उफनाती नदी, लगातार, लगातार उदास गीत गाये जा रही थी।

नाव के नीचे हमारा आवास आरामदेह नहीं था: यह तंग और सीलनभरा था

और तले की छेद से बारिश की बूँदे टपक रही थीं और हवा के तेज़ झोंके हमारे ऊपर लगातार आक्रमण कर रहे थे...हम चुपचाप बैठे थे और ठण्ड से काँप रहे थे। मुझे याद है, मैं सोना चाहता था। नताशा नाव के बाज़ू से पीठ टिकाये एक छोटी-सी गेंद की तरह गुड़ी-मुड़ी होकर बैठी थी। अपने घुटनों को ठुड्डी से सटाये, वह टकटकी बाँधे नदी की ओर देख रही थी, उसकी आँखें पूरी-पूरी खुली हुईं थीं – सफ़ेद धब्बे जैसे उसके चेहरे पर वे अपने ठीक नीचे की चोटों के कारण काफ़ी बड़ी लग रही थीं। वह एकदम नहीं हिल रही थी। जड़ता और ख़ामोशी – मैंने महसूस किया – मेरे भीतर अपने साथी के बारे में एकतरह की आशंका पैदा कर रही थी...मैं उससे बातचीत करना चाह रहा था लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे शुरू करूँ।

पहले वही बोली।

"कितनी बेहूदी ज़िन्दगी है!" उसने स्पष्ट, दो टूक शब्दों में, गहरे विश्वास के साथ, घोषणा की।

लेकिन यह शिकायत नहीं थी। इन शब्दों में जो असम्पृक्ता थी, वह शिकायत में नहीं होती। ऐसा महसूस होता था कि उसने चीज़ों के बारे में अपने ही ढंग से सोचा था। चीज़ों के बारे में उसने सोचा था और एक सुनिश्चित नतीज़े पर पहुँची थी, जिसको उसने मुखर अभिव्यक्ति दी और यदि मैं इसे ग़लत ठहराता तो यह ख़ुद से झूठ बोलना होता। इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा। और वह, जैसे कि मेरी उपस्थिति से अनजान हो, एकदम निश्चल बैठी रही।

"लेट जाओ और मर जाओ, मैं सोचती हूँ, यह एक रास्ता हो सकता है..." नताशा फिर बोली, इस बार नरमी से और सोचने के अन्दाज़ में। और इस बार फिर उसके शब्दों में शिकायत की गन्ध नहीं थी...स्पष्ट था कि आमतौर पर ज़िन्दगी के बारे में समुचित विचार प्रकट करने के बाद, उसने अपनी ख़ुद की ज़िन्दगी का सर्वेक्षण किया था और ठण्डे ढंग से इस नतीज़े पर पहुँची थी कि ज़िन्दगी के अत्याचारों से अपने को बचाने के लिए सिवाय इसके वह और कोई भी क़दम उठाने की स्थिति में नहीं थी कि, जैसा कि उसने अभी ख़ुद कहा था, "लेट जाओ और मर जाओ।"

मैंने इस विचार की इस क़दर सुस्पष्टता पर अपने भीतर से जुगुप्सा की असह्य लहर-सी उठते हुए महसूस की और मुझे लगा कि यदि मैं जल्दी से कुछ बोलूँगा नहीं तो निश्चित ही रुलाई फूट पड़ेगी...और एक औरत के सामने मैं ऐसा चाहता नहीं था, ख़ासतौर पर तब जबकि वह ख़ुद नहीं रो रही थी। मैंने उससे

बातचीत करने की कोशिश करने का फ़ैसला किया।

"तुम्हें पीटा किसने?"

"जाहिर है, पाश्का ने, हमेशा की तरह..." उसने शान्ति के साथ ऊँची आवाज़ में कहा।

"वह कौन है?"

"मेरा बॉय-फ्रेण्ड...एक नानबाई..."

"क्या वह तुम्हें अक्सर पीटता है?..."

"जब भी ज़्यादा पी लेता है..."

फिर, अचानक, वह सरककर मेरे पास बैठ गयी और मुझे अपने बारे में, पाश्का के बारे में तथा अपने और उसके बीच के रिश्तों के बारे में बताने लगी। वह "एक वैसी लड़की" थी, "आप समझ रहे हैं, कैसी..." और वह हल्के लाल रंग की मूँछों वाला एक नानबाई था जो एकॉडियन बहुत अच्छा बजाता था। वह "मैडम के वहाँ" उसके पास आया करता था और वह उसे बहुत पसन्द करती थी क्योंकि उसका साथ अच्छा लगता था और उसके कपड़े साफ़ होते थे। उसका कोट कम से कम पन्द्रह-रूबल का था और वह हल्की सलवटों वाले चमड़े के बूट पहनता था। इन सब कारणों से वह उसके प्रेम में पड़ गयी और वह उसका फ़्वास दोस्त" बन गया। जैसे ही वह उसका "ख़ास दोस्त" बन गया, उसने उससे वे पैसे लेने शुरू कर दिये जो दूसरे ग्राहक उसे मिठाई खाने के लिए देते थे और उन पैसों से वह पीने लगा और उसे पीटने लगा – और यह भी उतना बुरा नहीं होता, यदि वह उसकी ही आँखों के सामने दूसरी लड़कियों के साथ नहीं जाने लगता तो... "और यह बात भला मेरे दिल को क्यों नहीं लगती? ऐसा वह इसलिए नहीं करता था कि मैं दूसरी लड़कियों से बुरी थी...ऐसा वह सिर्फ़ मुझे जलाने के लिए करता था, सूअर! परसों मैंने मैडम से टहलने के लिए छुट्टी ली और उसके घर पहुँची और वहाँ दून्का को बैठे हुए पाया। वह नशे में थी और वह भी काफ़ी धुत्त था। मैंने उससे कहा: 'तुम सूअर हो, असली सूअर! तुम धोखेबाज हो!' और उसने मुझे पीट-पीटकर बेहाल कर दिया। उसने लातों से पीटा, मेरे बाल खींचे – बहुत कुछ किया... लेकिन यह भी उतना बुरा नहीं होता, यदि वह सबकुछ फाड़ नहीं डालता तो... और अब मैं क्या करूँगी? मैं मैडम को मुँह कैसे दिखाऊँगी? सबकुछ फाड़ दिया: मेरे कपड़े और जैकेट – एकदम नई थी वह...और मेरे सिर से स्कार्फ नोच लिया...हे भगवान! अब मैं क्या करूँगी?" अचानक उसकी आवाज़ टूट

गयी और एक विषण्ण विलाप फूट पड़ा।

और हवा भी विलाप करती रही, ज़्यादा से ज़्यादा तेज़ और ठण्डी होती हुई...मेरे कटकटाते दाँत फिर नृत्य करने लगे। वह भी ठण्ड से एकदम सिकुड़ गयी थी और मेरे इतने नज़दीक सरक आयी थी कि मैं अँधेरे में चमकती उसकी आँखें देख सकता था।

"तुम सभी बहुत बुरे होते हो, तुम मर्द लोग। मैं तुम सबको पैरों तले रौंद-कुचल देना चाहती हूँ, एकदम! तुम लोगों की बोटी-बोटी काट देना चाहती हूँ। तुममें से कोई यदि पड़ा मरता रहे...तो मैं उसके घिनौने चेहरे पर थूक दूँगी, थूक दूँगी और उसके लिए मुझे कभी अफ़सोस नहीं होगा! निकम्मे जानवर! तुम लोग रिरियाते हो और रिरियाते हो और गन्दे कुत्तों की तरह अपनी पूँछें हिलाते हो, लेकिन जब तुम्हें तुम्हारे ऊपर रहम करने वाली कोई मूर्ख औरत मिल जाती है, तो बस, सबकुछ ख़त्म। इसके पहले कि वह कुछ समझे, तुम उसे पैरों से रौंद डालते हो, कुचल डालते हो...गन्दे भड़वे!"

उसकी गालियाँ अत्यधिक विविधतापूर्ण थीं, पर शब्दों में ताक़त नहीं थी: "गन्दे भड़वों" के प्रति जो ग़ुस्सा या असली नफ़रत होनी चाहिए, वह मैं उनमें नहीं देख पा रहा था। वास्तव में कह रही थी, उसके अनुपात में सामान्यतः उसके बोलने का लहजा बहुत शान्त था और उसकी आवाज़ में उदासीभरी एकरसता थी।

फिर भी उसकी इन बातों ने मुझे उन सर्वाधिक अर्थगर्भित और सर्वाधिक विश्वसनीय दुखपूर्ण पुस्तकों से और भाषणों से भी अधिक प्रभावित किया, जो मैंने उसके पहले, और उसके बाद भी, पढ़े और सुने थे और आज के दिन तक जो पढ़ और सुन रहा हूँ, और, आप जानते हैं, कि ऐसा इसलिए है कि मरने की यन्त्रणा हमेशा ही, मृत्यु के सर्वाधिक सटीक और कलात्मक वर्णन से भी अधिक स्वाभाविक और प्रभावशाली होती है।

मैं बहुत बुरा महसूस कर रहा था, शायद अपने सह-निवासी की बातों से उतना नहीं, जितना कि ठण्ड की वजह से। मैं धीरे से कराहा और मेरे दाँत बज उठे।

तब, लगभग ऐन उसी समय, मैंने दो ठण्डे नन्हें हाथों का स्पर्श महसूस किया – एक मेरी गरदन को छूता हुआ और दूसरा मेरे चेहरे पर आकर रुका हुआ और इसके साथ ही एक चिन्तापूर्ण, मद्धम और नरमी भरी आवाज़ में यह सवाल:

"क्या बात है? तुम्हें हुआ क्या है?"

मैं यह सोचना चाहता था कि मुझे कोई और ही सम्बोधित कर रहा है, नताशा नहीं, जो अभी-अभी ऐलान कर रही थी कि सभी मर्द सूअर होते हैं और उन सबके सत्यानाश की कामना कर रही थी। लेकिन वह पहले ही जल्दी-जल्दी और हड़बड़ाई-सी बोलने लगी थी...

"क्या बात है? ऐं? ठण्ड लग रही है? कुड़कुड़ा गये हो तुम तो! तुम भी एक ही चीज़ हो, नहीं? वहाँ बैठे हो और कुछ नहीं बोल रहे हो...उल्लू की तरह! तुम ठण्डा गये हो, यह तुम्हें पहले ही बताना चाहिए था न!...वहाँ...ज़मीन पर लेट जाओ, हाथ-पैर फैलाकर...और मैं लेटती हूँ ऊपर...हाँ, अब ठीक है! अब मुझे पकड़ लो ...और कसकर...अब ठीक है, अब तुम जल्दी ही गर्मी महसूस करने लगोगे...

और उसके बाद हम दोनों चित्त लेट जायेंगे...किसी तरह से रात काटनी है...क्या गड़बड़ हो गया है तुम्हारे साथ, क्या पीने को नहीं मिला? क्या तुम्हारी नौकरी छूट गयी है?...कोई बात नहीं!"

वह मुझे दिलासा देने की कोशिश कर रही थी...मेरे भीतर एक नया दिल डालने की कोशिश कर रही थी...

क्या मुझ पर लानत भेजी जानी चाहिए? यह सबकुछ कितना विडम्बनापूर्ण था! ज़रा सोचिए, कहाँ तो ऐसी तरह-तरह की भयंकर विद्वतापूर्ण पुस्तकें, जिनकी प्रकाण्डता शायद उनके लेखकों की समझ से भी परे थी, मैं मानवता की नियति के बारे में, पूरी सामाजिक व्यवस्था को पुनर्गठित करने के सपने देखने के बारे में, राजनीति और क्रान्ति के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार रहा था और अपने-आप को एक "भारी-भरकम सक्रिय शक्ति" बनाने के लक्ष्य को समर्पित करने की तैयारी कर रहा था, और यहाँ, एक वेश्या के शरीर द्वारा मुझे गर्म किया जा रहा था, जो एक दयनीय, पिटी हुई, हताश इन्सान थी, जिसका ज़िन्दगी में कोई स्थान नहीं था, जिसे किसी काम का नहीं समझा जाता था और जिसके द्वारा सहारा मिलने से पहले मुझे यह सूझा तक नहीं था कि मुझे उसको सहारा देना चाहिए और यदि यह बात मेरे दिमाग़ में आती भी तो शायद मैं यह नहीं समझ पाता कि यह मैं करूँ कैसे।

ओह, मैं यह सोचना चाहता था कि मेरे साथ यह सबकुछ सपने में हो रहा है, एक बेतुका, असुखकर सपना...

लेकिन अफ़सोस! मुझे यह सोचने का अधिकार नहीं था, क्योंकि बारिश

की ठण्डी बूँदे मेरे ऊपर चू रही थीं, औरत की छाती मेरे सीने को सख़्ती से दबाये हुए थी, मैं उसकी गर्म साँसों को अपने चेहरे पर महसूस कर सकता था, हालाँकि उनमें से वोदका की बू आ रही थी...फिर भी – वे इतनी जीवनदायी थीं...हवा हुहुआ रही थी और कराह रही थी, बारिश नाव पर चोटें बरसा रही थी, लहरें थपेड़े मार रही थीं और आपस में प्रगाढ़ आलिगनबद्ध होकर भी हम ठण्ड से कँपकँपा रहे थे। यह सबकुछ एकदम वास्तविक था और मुझे विश्वास है कि इस वास्तविकता जितना बुरा और दुख़पूर्ण सपना किसी ने नहीं देखा होगा।

और नताशा थी कि बात किये जा रही थी, बात किये जा रही थी, कभी किसी चीज़ के बारे में, तो कभी किसी चीज़ के बारे में, ऐसी कोमलता और सहानुभूति के साथ, जिनके साथ सिर्फ़ औरतें ही बातें कर सकती हैं। जैसे बचकानी और कोमल बातें वह कर रही थी, उनसे एक तरह की मद्धम, नन्हीं लौ मेरे भीतर जल उठी थी, जिसकी गर्मी से मेरा हृदय पिघल रहा था।

फिर मेरी आँखों से धारासार आँसू बहने लगे, मेरे हृदय की उन सभी कड़वाहटों, लालसाओं, मूर्खताओं और गन्दगी को धोते हुए, जो उस रात तक मैल की तरह उस पर जमे हुए थे...नताशा ने मुझे ख़ुश करने की कोशिशें जारी रखीं:

"सब ठीक हो जायेगा, मेरे प्यारे, रोओ मत! सब ठीक हो जायेगा। ईश्वर की कृपा से इस सबसे उबर जाओगे। तुम्हें फिर से तुम्हारी नौकरी मिल जायेगी..." और इसी तरह की ढेर सारी बातें।

और उसने मुझे चूमना जारी रखा, मुझपर उष्ण, उदार चुम्बनों की बरसात करती रही।

वे औरत के पहले चुम्बन थे, जिन्हें ज़िन्दगी ने मुझे अता फ़र्माया था और वे सर्वोष्कृष्ट थे, क्योंकि बाक़ी सभी तो मेरे लिए भयंकर रूप से महँगे साबित हुए और वस्तुतः उनसे मुझे कुछ भी हासिल नहीं हुआ।

"मत रोओ, चुप हो जाओ, बेवक़ूफ़! कल यदि तुम्हारा कोई जुगाड़ नहीं हो पायेगा, तो मैं तुम्हें कहीं न कहीं लगवा दूँगी..." मैं उसकी मद्धम, सान्त्वना भरी फुसफुसाहट मानो नींद में सुन रहा था।

...पौ फटने तक हम एक-दूसरे की बाँहों में पड़े रहे।

जब रोशनी हुई तो हम नाव के नीचे से रेंगकर निकले और शहर की ओर चल दिये...वहाँ हमने एक-दूसरे से दोस्ताना ढंग से विदा ली और फिर कभी

नहीं मिलने के लिए अलग हो गये, हालाँकि छह माह तक उस प्यारी नताशा को ढूँढ़ने के लिए मैं तमाम झुग्गी-झोंपड़ियों की खाक छानता रहा, जिसके साथ मैंने, एक पतझड़ के दौरान, वह रात गुज़ारी थी जिसका मैंने अभी बयान किया है।

यदि वह मर चुकी है – तो इससे शानदार चीज़ उसके लिए भला क्या होगी – उसकी आत्मा को शान्ति मिले! और यदि वह ज़िन्दा है – तो भी उसे शान्ति नसीब हो! और उसकी अन्तरात्मा में पाप का अहसास कभी न जगे, क्योंकि उसके लिए वह अतिरिक्त रूप से दुखदायी होगा और उसकी ज़िन्दगी के तौर-तरीक़ों में कोई फ़र्क़ नहीं ला पायेगा...

(1894)

कॉमरेड: एक कहानी

इस शहर की प्रत्येक वस्तु बड़ी अद्भुत और बड़ी दुर्बोध थी। इसमें बने हुए बहुत-से गिरजाघरों के विभिन्न रंगों के गुम्बज आकाश की ओर सिर उठाये खड़े थे परन्तु कारख़ानों की दीवारें और चिमनियाँ इन घण्टाघरों से भी ऊँची थीं। गिरजे इन व्यापारिक इमारतों की ऊँची-ऊँची दीवारों से छिपे, पत्थर की उन निर्जीव चहारदीवारियों में इस प्रकार डूबे हुए थे जैसे मिट्टी और मलबे के ढेर में भद्दे, कुरूप फूल खिल रहे हों। और जब गिरजों के घण्टे प्रार्थना के लिए लोगों को बुलाते तो उनकी झनकारती हुई आवाज़ लोहे की छतों से टकराती और मकानों के बीच बनी लम्बी और संकरी गलियों में खो जाती।

इमारतें विशाल और अपेक्षाकृत कम आकर्षक थीं परन्तु आदमी कुरूप थे। वे सदैव नीचतापूर्ण व्यवहार किया करते थे। सुबह से लेकर रात तक वे भूरे चूहों की तरह शहर की पतली टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में इधर-से-उधर भागा करते और अपनी उत्सुक तथा लालची आँखें फाड़े कुछ रोटी के लिए तथा कुछ मनोरंजन के लिए भटकते रहते। इतने पर भी कुछ लोग चौराहों पर खड़े हो, निर्बल मनुष्यों पर यह देखने के लिए द्वेषपूर्ण निगाहें जमाये रहते कि वे सबल व्यक्तियों के सामने नम्रतापूर्वक झुकते हैं या नहीं। सबल व्यक्ति धनवान थे और वहाँ के प्रत्येक प्राणी का यह विश्वास था कि केवल धन ही मनुष्य को शक्ति दे सकता है। वे सब अधिकार के भूखे थे, क्योंकि सब गुलाम थे। धनवानो का विलासिता ग़रीबों के हृदय में द्वेष और घृणा उत्पन्न करती थीं। वहाँ किसी भी व्यक्ति के लिए स्वर्ण की झनकार से अधिक सुन्दर और मधुर दूसरा कोई भी संगीत नहीं था और इसी कारण वहाँ का हरेक आदमी दूसरे का दुश्मन बन गया था। सब पर क्रूरता का शासन था।

कभी-कभी सूर्य उस शहर पर चमकता परन्तु वहाँ का जीवन सदैव अन्धकारपूर्ण रहता और मनुष्य छाया की तरह दिखायी देते। रात होने पर वे असंख्य चमकीली बत्तियाँ जलाते परन्तु उस समय भूखी औरतें पैसों के लिए अपना कंकालवत शरीर बेचने को सड़कों पर निकल आतीं। विभिन्न प्रकार के सुगन्धित भोजनों की सुगन्धि उन्हें अपनी ओर खींचती और चारों ओर भूखे मानव की भूखी आँखें, चुपचाप चमकने लगतीं। नगर के ऊपर दुख और

विषाद की एक धीमी कराहट, जो ज़ोर से चिल्लाने में असमर्थ थी, प्रतिध्वनित होकर मँडराने लगती।

जीवन नीरस और चिन्ताओं से भरा हुआ था। मानव एक-दूसरे का दुश्मन था और हर इन्सान ग़लत रास्ते पर चल रहा था। केवल कुछ व्यक्ति ही यह अनुभव करते थे कि वे ठीक मार्ग पर हैं परन्तु वे पशुओं की तरह रूखे और क्रूर थे। वे दूसरों से अधिक भयानक और कठोर थे...

हरेक जीना चाहता था परन्तु यह कोई नहीं जानता था कि कैसे जिये। कोई भी अपनी इच्छोंओ का अनुसरण स्वतन्त्र रूप से करने में समर्थ नहीं था। भविष्य की ओर बढ़ा हुआ प्रत्येक क़दम उन्हें पीछे मुड़कर उस वर्तमान की ओर देखने के लिए बाध्य कर देता था, जो एक लालची राक्षस के शक्तिशाली और क्रूर हाथों द्वारा मनुष्यों को अपने रास्ते पर आगे बढ़ने से रोक देता और अपने चिपचिपे आलिंगन के जाल में फाँस लेता।

मनुष्य जब ज़िन्दगी के चेहरे पर कुरूप दुर्भाग्य की रेखाएँ देखता तो कष्ट और आश्चर्य से विजड़ित हो निस्सहाय के समान ठिठक जाता, ज़िन्दगी उसके हृदय में अपनी हज़ारों उदास और असहाय आँखों से झाँकती, और निश्शब्द उससे प्रार्थना करती जिसे सुन भविष्य की सुन्दर आकांक्षाएँ उसकी आत्मा में मर जातीं और मनुष्य की नपुंसकता की कराहट, उन दुखी और दीन मनुष्यों की कराह और चीख़-पुकारों के लयहीन संगीत में डूब जाती जो ज़िन्दगी के शिकंजे में पड़े तड़फड़ा रहे थे।

वहाँ सदैव नीरसता और उद्विग्नता तथा कभी-कभी भय का वातावरण छाया रहता और वह अन्धकारपूर्ण अवसाद में लिपटा नगर अपने एक से विद्रोही पत्थरों के ढेर को लिए जो मन्दिरों को कलंकित कर रहे थे। मनुष्यों को एक कारागृह के समान घेरे तथा सूर्य की किरणों को ऊपर ही ऊपर लौटाते हुए, चुपचाप खड़ा था।

वहाँ जीवन के संगीत में क्रोध और दुख की चीख़, छिपी हुई घृणा की एक धीमी फुसकार, क्रूरता का भयभीत करने वाला कोलाहल और हिंसा की भयंकर पुकार भरी हुई थी।

2

दुख और दुर्भाग्य के अवसादपूर्ण कोलाहल के बीच लालच और इच्छाओं के दृढ़ बन्धन में जकड़े, दयनीय गर्व की कीचड़ में फँसे थोड़े-से एकाकी स्वप्नदृष्टा उन झोंपड़ियों की ओर चुपचाप, छिपकर चले जा रहे थे जहाँ वे निर्धन व्यक्ति

रहते थे जिन्होंने नगर की समृद्धि को बढ़ाया था। तिरस्कृत और उपेक्षित होते हुए भी मानव में पूर्ण आस्था रख वे विद्रोह की शिक्षा देते थे। वे दूर प्रज्वलित सत्य की विद्रोही चिनगारियों के समान थे। वे उन झोंपड़ियों में अपने साथ छिपाकर एक सादे परन्तु उच्च सिद्धान्त की शिक्षा के फल देने वाले बीज लाये थे और कभी अपनी आँखों में कठोरता की ठण्डी चमक भरकर और कभी सज्जनता और प्रेम द्वारा उन गुलाम मनुष्यों के हृदय में इस प्रकाशवान प्रज्वलित सत्य की जड़ रोपने का प्रयत्न करते, उन मनुष्यों के हृदय में, जिन्हें क्रूर और लालची व्यक्तियों ने अपने लाभ के लिए अन्धे और गूँगे हथियारों में बदल दिया था।

और ये अभागे, पीड़ित मनुष्य अविश्वासपूर्वक इन नवीन शब्दों के संगीत को सुनते, एक ऐसे संगीत को जिसके लिए उनके क्लान्त हृदय युगों से प्रतीक्षा कर रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपने सिर उठाये और अपने को उन चालाकी से भरी हुई झूठी बातों के जाल से मुक्त कर लिया जिसने उनके शक्तिशाली और लालची अत्याचारियों ने उन्हें फँसा रखा था।

उनके जीवन में, जिसमें उदासी से भरा हुआ दमित असन्तोष व्याप्त था, उनके हृदयों में जो अनेक अत्याचार सहकर विषाक्त बन चुके थे, उनके मस्तिष्क में जो शक्तिशालियों की धूर्ततापूर्ण चतुरता से जड़ हो गया था – उस कठोर और दीन अस्तित्व में जो भयंकर अत्याचारों से सूख चुका था – एक सीधा सा दीप्तिमान शब्द व्याप्त हो उठा:

"कॉमरेड!"

यह शब्द उनके लिए नया नहीं था। उन्होंने इस सुना था और स्वयं भी इसका उच्चारण किया था। परन्तु तब तक इसमें भी वही रिक्तता और उदासी भरी हुई थी जो ऐसे ही अन्य परिचित और साधारण शब्दों में भरी रहती है जिन्हें भूले जाने से कोई नुकसान नहीं होता।

परन्तु अब इसमें एक नयी झंकार थी...सशक्त और स्पष्ट झंकार। एक नये अर्थ का संगीत व्याप्त था और एक हीरे के समान कठोर चमक और दिगन्तव्यापी ध्वनि थी।

उन्होंने इसे अपनाया और इसका उच्चारण किया...सावधानी से नम्रतापूर्वक और इसे अपने हृदय से इतने स्नेहपूर्वक चिपटा लिया जैसे माता अपने बच्चे को पालने में झुलाती है।

और जैसे-जैसे इस शब्द की जाज्वल्यमान आत्मा के भीतर प्रविष्ट होते गये

वह उन्हें उतना ही अधिक उज्ज्वल और सुन्दर दिखायी देता गया।

"कॉमरेड!" उन्होंने कहा।

और उन्होंने अनुभव किया कि यह शब्द सम्पूर्ण संसार को एक सूत्र में संगठित करने के लिए, सब मनुष्यों को आज़ादी की सबसे ऊँची चोटी तक उठा उन्हें नये बन्धनों में बाँधने के लिए – एक दूसरे का सम्मान करने के लिए तथा मनुष्य को स्वतन्त्रता के बन्धन में लिये हुए – इस संसार में आया है।

जब इस शब्द ने गुलामों के हृदय में जड़ जमा ली तब वे गुलाम नहीं रहे और एक दिन उन्होंने शहर और उसके शक्तिशाली शासकों से पुकारकर कहा –

"बस, बहुत हो चुका!"

इससे जीवन रुक गया क्योंकि ये लोग ही अपनी शक्ति से इसका संचालन करते थे – केवल यही लोग, और कोई नहीं। पानी बहना बन्द हो गया, आग बुझ गयी, नगर अन्धकार में डूब गया और शक्तिशाली लोग बच्चों के समान असहाय हो उठे।

अत्याचारियों की आत्मा में भय समा गया। अपने ही मल-मूत्र की दम घोंटने वाली दुर्गन्ध से व्याकुल हो उन्होंने विद्रोहियों के प्रति अपनी घृणा का गला घोंट दिया और उनकी शक्ति को देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये।

भूख का पिशाच उनका पीछा करने लगा और उनके बच्चे अन्धकार में आर्त स्वर से रोने लगे।

घर और गिरजे अवसाद में डूब गये और पत्थर और लोहे के क्रूर अट्टहास में घिरी हुई सड़कों पर मृत्यु की-सी भयावनी निस्तब्धता छा गयी। जीवन गतिहीन हो गया क्योंकि जिस शक्ति ने इसे उत्पन्न किया था वह अब अपने अस्तित्व के प्रति सजग हो उठी थी और गुलाम मनुष्य ने अपनी इच्छा को प्रकट करने वाले चमत्कारपूर्ण और अजेय शब्द को पा लिया था। उसने अपने को अत्याचार से मुक्त कर अपनी शक्ति को, जो विधाता की शक्ति थी, पहचान लिया था।

शक्तिशालियों के लिए वे दिन दूर न थे क्योंकि वे लोग अपने को इस जीवन का स्वामी समझते थे। वह रात हज़ार रातों के समान थी, दुख के समान गहरी। मुर्दे के समान उस नगर में चमकने वाली बत्तियाँ अत्यन्त धूमिल और अशक्त थीं। वह नगर शताब्दियों के परिश्रम से बना था। वह राक्षस जिसने मनुष्यों का रक्त चूस लिया था अपनी सम्पूर्ण कुरूपता को लेकर उनके सामने खड़ा हो गया था – पत्थर और काठ के एक दयनीय ढेर के समान। मकानों की अँधेरी खिड़कियाँ भूखी और दुखी-सी सड़क की ओर झाँक रही थीं जहाँ जीवन के

सच्चे स्वामी हृदय में एक नया उत्साह लिये चल रहे थे। वे भी भूखे थे, वास्तव में दूसरों से अधिक भूखे, परन्तु उनकी यह भूख की वेदना उनकी परिचित थी! उनका शारीरिक कष्ट उन्हें इतना असह्य नहीं था जितना कि जीवन के उन स्वामियों को। न इसने उनकी आत्मा में प्रज्वलित उस ज्वाला को ही कम किया था। वे अपनी शक्ति का परिचय पाकर उत्तेजित हो रहे थे। आने वाली विजय का विश्वास उनकी आँखों में चमक रहा था।

वे नगर की सड़कों पर घूम रहे थे जो उनके लिए एक उदास, दृढ़ कारागृह के समान थीं। जहाँ उनकी आत्मा पर असंख्य चोटें पहुँचायी गयी थीं। उन्होंने अपने परिश्रम के महत्त्व को देखा और इसने उनको जीवन का स्वामी बनने के पवित्र अधिकार के प्रति सजग बना दिया, जीवन के नियम बनाने वाला तथा उसे उत्पन्न करने वाला। और फिर एक नयी शक्ति के साथ, एक चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाली चमक के साथ, सबको संगठित करने वाला वह जीवनदायी, शब्द गूँज उठा।

"कॉमरेड!"

यह शब्द वर्तमान के झूठे शब्दों के बीच भविष्य के सुखद सन्देश के समान गूँज उठा, जिसमें एक नया जीवन सबकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह जीवन दूर था या पास? उन्होंने महसूस किया कि वे ही इसका निर्णय करेंगे। वे आज़ादी के पास पहुँच रहे थे और वे स्वयं ही उसके आगमन को स्थगित करते जा रहे थे।

3

उस वेश्या ने भी जो कल एक आधे जानवर के समान थी और गन्दी गलियों में थकी हुई इस बात का इन्तज़ार करती रहती थी कि कोई आये और दो पैसे देकर उसके सूखे ठठरी के समान शरीर को ख़रीद ले, उस शब्द को सुना परन्तु मुस्कराते हुए परेशान-सी होकर उसने इसका उच्चारण करने का साहस किया। एक आदमी उसके पास आया, उनमें से एक आदमी जिन्होंने इससे पहले इस रास्ते पर क़दम नहीं रखा था और उससे इस प्रकार बोला जैसे कोई अपने भाई से बोलता है:

"कॉमरेड!" उसने कहा।

वह इस प्रकार मधुरता और लज्जापूर्वक हँसी जिससे अत्यधिक प्रसन्नता के कारण रो न उठे। उसके दुखी हृदय ने इससे पूर्व इतनी प्रसन्नता का अनुभव कभी नहीं किया था। आँसू, एक पवित्र और नवीन सुख के आँसू, उसकी उन

आँखों में चमकने लगे जो कल तक पथरायी हुई और भूखी निगाह से संसार को घूरा करती थीं। परित्यक्तों की, जिन्हें संसार के श्रमिकों की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया था, यह प्रसन्नता, नगर की सड़कों पर चारों ओर चमकने लगी और नगर के घरों की धुँधली आँखें इसे बढ़ते हुए द्वेष और क्रूरता से देखने लगी।

उस भिखारी ने भी जिसे कल तक बड़े आदमी, उससे पीछा छुड़ाने के लिए एक पैसा फेंक दिया करते थे और ऐसा करके यह समझते थे कि आत्मा को शान्ति मिलेगी, यह शब्द सुना। यह शब्द उसके लिए पहली भीख के समान था जिसने उसके ग़रीब, निर्धनता से नष्ट होते हुए हृदय को प्रसन्नता और कृतज्ञता से भर दिया था।

वह ताँगेवाला, एक छोटा सा भद्दा आदमी, जिसके ग्राहक उसकी पीठ में इसलिए घूँसे मारते थे कि जिससे उत्तेजित होकर वह अपने भूखे, टूटे शरीर वाले टट्टू को तेज़ चलाने के लिए हण्टर फटकारे। वह आदमी घूँसे खाने का आदी था। पत्थर की सड़क पर पहियों से उत्पन्न होने वाली खड़खड़ाहट की ध्वनि से जिसका दिमाग़ जड़ हो गया था उसने भी ख़ूब अच्छी तरह से मुस्कराते हुए एक रास्ता चलने वाले से कहा:

"ताँगे पर चढ़ना चाहते हो...कॉमरेड?"

यह कहकर, इस शब्द की ध्वनि से भयभीत होकर उसने घोड़े को तेज़ चलाने के लिए लगाम सम्हाली और उस राहगीर की तरफ़ देखा। वह अब भी अपने चौड़े, लाल चेहरे से मुस्कराहट दूर करने में असमर्थ था।

उस राहगीर ने प्रेमपूर्वक उसकी ओर देखा और सिर हिलाते हुए बोला:

"धन्यवाद, कॉमरेड! मुझे ज़्यादा दूर नहीं जाना है।"

अब भी मुस्कराते और प्रसन्नता से अपनी आँखें झपकाते वह ताँगेवाला अपनी सीट पर मुड़ा और सड़क पर खड़खड़ाहट का तेज़ शोर मचाते हुए चला गया।

फुटपाथों पर आदमी बड़े-बड़े झुण्डों में चल रहे थे और चिनगारी के समान वह महान शब्द, जो संसार को संगठित करने के लिए उत्पन्न हुआ था, उन लोगों में इधर से उधर घूम रहा था।

"कॉमरेड!"

एक पुलिस का आादमी – गलमुच्छेवाला, गम्भीर और महत्त्वपूर्ण, एक झुण्ड के पास आया, जो सड़क के किनारे व्याख्यान देने वाले वृद्ध मनुष्य के चारों ओर

इकट्ठा हो गया था। कुछ देर तक उसकी बातें सुनकर उसने नम्रतापूर्वक कहा।

"सड़क पर सभा करना क़ानून के ख़िलाफ़ है...तितर-बितर हो जाओ, महाशयो..."

और एक क्षण रुककर उसने अपनी आँखें नीची कीं और धीरे-से बोला:

"कॉमरेडो..."

उन लोगों के चेहरों पर, जो इस शब्द को अपने हृदय में संजोये हुए थे और जिन्होंने अपने रक्त और मांस से इसे और एकता की पुकार की तीव्र ध्वनि को बढ़ाया था – निर्माता का गर्व झलकने लगा। और यह स्पष्ट हो रहा था कि वह शक्ति, जिसे इन लोगों ने मुक्तहस्त होकर इस शब्द पर व्यय किया था, अविनाशी और अक्षय थी।

उन लोगों के ख़िलाफ़, भूरी वर्दी पहने हथियारबन्द आदमियों के अन्धे समूह एकत्रित होने लगे थे। वे चुपचाप एक-सी पंक्तियों में खड़े थे। अत्याचारियों का क्रोध उन विद्रोहियों पर जो न्याय के लिए लड़ रहे थे फट पड़ने को तैयार था।

उस नगर की टेढ़ी-मेढ़ी संकरी गलियों में अज्ञात निर्माताओं द्वारा बनायी हुई ठण्डी, ख़ामोश दीवारों के भीतर मनुष्य के भाईचारे की भावना फैल रही थी और पक रही थी।

"कॉमरेडो!"

जगह-जगह आग भड़क उठी जो एक ऐसी ज्वाला में फूट पड़ने को प्रस्तुत थी जो सारे संसार को भाईचारे की मज़बूत और उज्ज्वल भावना में बाँध देने वाली थी। वह सारी पृथ्वी को अपने में समेट लेगी और उसे सुखा डालेगी। द्वेष, घृणा और क्रूरता की भावनाओं को जलाकर राख बना देगी जो हमारे रूप को विकृत बनाती हैं। वह सारे हृदयों को पिघलाकर उन्हें एक हृदय में – केवल एक हृदय में ढाल देगा। सरल और अच्छे स्त्री-पुरुषों का हृदय परस्पर सम्बन्धित स्वतन्त्र काम करने वालों का एक सुन्दर स्नेहपूर्ण परिवार बन जायेगा।

उस निर्जीव नगर की सड़कों पर जिसे गुलामों ने बनाया था, नगर की उन गलियों में जहाँ क्रूरता का साम्राज्य रहा था, मानव में विश्वास तथा अपने ऊपर और संसार की सम्पूर्ण बुराइयों पर मानव की विजय की भावना बढ़ी और शक्तिशाली बनी।

और उस बेचैनी से भरे हुए नीरस अस्तित्व के कोलाहल में, एक दीप्तिमान, उज्ज्वल नक्षत्र के समान, भविष्य को स्पष्ट करने वाली उल्का के समान, वह हृदय को प्रभावित करने वाला सादा और सरल शब्द चमकने लगा: "कॉमरेड!"

कहानी : उसका प्रेमी

उन दिनों में मास्को में पढ़ता था। मेरे पड़ोस में एक ऐसी महिला रहती थी,जिसकी प्रतिष्ठा को वहां सन्दिग्ध माना जाना था। वह पोलैंड की रहने वाली थी और उसका नाम टेरेसा था। मर्दों की तरह लम्बा कद, गठीला डील-डौल,काली घनी भौंहे, जानवरों जैसी चमकती काली आंखें, भारी आवाज,कोचवान जैसी चाल, बेहद ताकतवर मांसपेशियां और मछुआरे की बीवी जैसा उसका रंग-ढंग, उसके व्यक्तित्व को मेरे लिए खौफनाक बनाते थे। मैं बिल्कुल ऊपर रहता था और उसकी बरसाती मेरे ठीक सामने थी। जब वह घर पर होती तो मैं कभी भी अपना दरवाजा खुला नहीं छोड़ता था। कभी-कभार हम सीढियों पर या आँगन में मिलते और वह ऐसे चालाक सनकीपने से मुस्कुराती कि मैं अपनी मुस्कुराहट छुपा लेता। अक्सर वह मुझे नशे में धुत मिलती और उसकी आंखों में उनींदापन,बालों में अस्त-व्यस्तता दिखाई देती और ख़ास तौर पर वीभत्स ठहाके लगाती रहती। ऐसे में वह मुझसे जरुर बात करती।

'और कैसे हो मि. स्टूडेन्ट' कहते ही उसकी वीभत्स हंसी उसके प्रति मेरी नफरत को और बढ़ा देती। मैंने उससे ऐसी खैफनाक मुलाकातें टालने के लिए कई बार यह कमरा छोडऩे का विचार किया, लेकिन मुझे अपना छोटा-सा आशियाना बहुत प्यारा लगता था। उसकी खिड़की से बाहर का दृश्य बहुत खूबसूरत लगता था और वहां काफी शांति थी, इसलिए मैंने इस कष्ट को सहन करना स्वीकार कर लिया।

और एक सुबह जब मैं अपने कमरे में बिस्तर पर लेटा क्लास से गैर-हाजिरी का बहाना तलाश कर रहा था, ठीक उसी समय दरवाजा खुला और टेरेसा की भारी आवाज ने मेरी चेतना को झकझोर दिया।

'तबीयत तो ठीक है मि. स्टूडेन्ट?'

'क्या चाहिए आपको?' मैंने पूछा और देखा कि उसके चेहरे पर कुछ असमंजस के भाव तैर गए हैं और साथ ही कुछ विनम्रता भी... मेरे लिए उसके

चेहरे की यह मुद्रा बिल्कुल अजनबी-सी थी।

'सर, मैं आपसे कुछ मदद मांगने आई हूं, निराश तो नहीं करेंगे?'

मैं चुपचाप पड़ा रहा और खुद से ही कहने लगा, 'हे दयानिधान करुणानिधान उठो!'

'मुझे घर पर एक चिट्ठी भेजनी है। बस इतना-सा निवेदन है।' उसने कहा। उसकी कोमल-कातर आवाज़ में जैसे जल्दी से यह काम कर देने की प्रार्थना थी।

'रक्षा करना भगवान', मैंने मन ही मन अपने ईश्वर से कहा और उठकर अपनी मेज तक आया। एक कागज उठाया और उससे कहा, 'इधर आकर बैठिए और बताइये क्या लिखना है?'

वह आई, बहुत ही सावधानी के साथ कुर्सी पर बैठी और मेरी तरफ अपराध-भाव से देखने लगी।

'अच्छा तो किसके नाम चिट्ठी लिखवाना चाहती हैं आप?'

'बोसेलाव काशपुत के नाम, कस्बा स्वीजियाना, बारसा रोड।'

'ठीक है, जल्दी से बताइये क्या लिखना है?'

'माई डियर बोल्स... मेरे प्रियतम...मेरे विश्वस्त प्रेमी। भगवान तुम्हारी रक्षा करे। हे सोने जैसे खरे दिल वाले, तुमने इतने दिनों से इस छोटी-सी दुखियारी बतख, टेरेसा को चिट्ठी क्यों नहीं लिखी?'

मेरी हंसी निकलते-निकलते रह गई। 'एक छोटी-सी दुखियारी बतख। पांच फुट से भी लम्बी, पत्थर की तरह सख्त और भारी चेहरा इतना काला कि बेचारी छोटी बतख जैसे जिन्दगी भर किसी चिमनी में रही हो और कभी नहाई ही नहीं हो। किसी तरह खुद की हंसी पर काबू पाकर मैंने पूछा, 'कौन है यह मि. बोलेस?'

'बोल्स, मि. स्टूडेंट', उसने इस तरह कहा मानो मैंने उसका नाम पुकारने में कोई बड़ी बेहूदगी कर दी हो।

'वह बोल्स है, मेरा नौजवान आदमी।'

'नौजवान आदमी।'

'आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है? मैं, एक लड़की, क्या मेरा नौजवान आदमी नहीं हो सकता?'

वह और एक लड़की? ठीक है।

'ओह, क्यों नहीं? इस दुनिया में सब कुछ संभव है और क्या यह नौजवान बहुत लंबे समय से आपका आदमी है?' मैंने पूछा।

'छह साल से।'

'ओह, हां, तो चलिए आपकी चिट्ठी लिखते हैं।' और मैंने चिट्ठी लिख दी।

लेकिन मैं आपको एक बात बिल्कुल साफ़ तौर पर बता दूं कि मैं चाहता तो इस पलाचार में अगर जानबूझकर भी बहुत-सी चीज़ें बदल देता, बशर्ते यहां टेरेसा के अलावा कोई और चाहे जैसी भी लड़की होती।'

'मैं तहेदिल से आपकी शुक्रगुजार हूं। उम्मीद करती हूं कि कभी मैं भी आपके काम आ सकूं।' टैरेसा ने बहुत सौजन्य और सद्भाव के साथ कहा।

'नहीं इसकी कोई जरुरत नहीं, शुक्रिया।'

'शायद आपकी कमीज़ और पतलूनों को मरम्मत की जरुरत हो, मैं कर दूंगी।'

मुझे लगा कि इस हथिनी जैसी महिला ने मुझे शर्मसार कर दिया और मैंने विनम्रतापूर्वक उससे कहा कि मुझे उसकी सेवाओं की कोई जरुरत नहीं है। सुनकर वह चली गई।

एक या दो सप्ताह गुज़रे होंगे कि एक दिन शाम के वक्त मैं खिड़की पर बैठा सीटी बजा रहा था और खुद से ही कहीं बहुत दूर जाने की सोच रहा था। मैं बिल्कुल बोर हो गया था। मैसम बड़ा खराब था और मैं बाहर नहीं जाना चाहता था। मैं अपने बारे में आत्म-विश्लेषण और चिंतन की प्रक्रिया में डूबा हुआ था। हालांकि यह भी निहायत ही बकवास काम था, लेकिन मुझे इसके अलावा कुछ और करने की सूझ ही नहीं रही थी। उसी समय दरवाज़ा खुला। हे भगवान तेरा शुक्रिया। कोई भीतर आया।

'हैलो मि. स्टूडेन्ट, कुछ खास काम तो नहीं कर रहे आप?'

यह टैरेसा थी, हुंह...।

'नहीं, क्या बात है?'

'मैं पूछ रही थी कि क्या आप मेरे लिए एक और चिट्ठी लिख देंगे?'

'अच्छा, मि. बोल्स को?'

'नहीं, इस बार उनकी तरफ से।'

'क्या... क्या मतलब?'

'ओह मैं भी बेवकूफ हूं। माफ करें, मेरी एक जान पहचान वाले हैं पुरुष मित्र। मेरी जैसी ही उनकी भी एक प्रेमिका है टेरेसा। क्या आप उस टेरेसा के लिए एक चिट्ठी लिख देंगे?'

मैंने देखा, वह तनाव में थी, उसकी अंगुलियां कांप रही थीं।... पहले तो मैं चकरा गया था, फिर मामला मेरी कुछ समझ में आया।

मैंने कहा, 'देखिए मोहतरमा, न तो कोई बोल्स है और न ही टेरेसा। आप अब तक मुझसे झूठ पर झूठ बोलती जा रही हैं। छल किए जा रही हैं। क्या आप मेरी जासूसी करने नहीं आ रही हैं? मुझे आपसे पहचान बढ़ाने में या आपकी जान-पहचान वालों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। समझीं आप?'

और अचानक वह बुरी तरह घबरा कर परेशान हो गई। वह कभी इस पांव पर तो कभी उस पांव पर खड़ी होकर अजीब ढंग से बड़बड़ाने लगी। लग रहा था जैसे वह कुछ कहना चाहती थी, लेकिन कह नहीं पा रही थी। मुझे लगा, मैंने उस पर सन्देह करके बहुत गलत किया है। यह तो शायद कोई और ही बात थी।

वह 'मि. स्टूडेन्ट' कहकर अचानक अपना सिर हिलाती हुई पलटी और दरवाजे से बाहर निकल कर अपने कमरे में चली गई। मैं अपने कमरे में दिमाग में उमड़ रहे अप्रीतिकर भावों के साथ जड़वत रह गया। एक भयानक आवाज के साथ उसका दरवाजा बन्द होने की आवाज आई। मुझे काफी दुख हुआ और लगा कि मुझे उसके पास जाकर सारा मामला सुलझा लेना चाहिए। उसे जाकर बुलाना चाहिए और वो जो चाहती है, उसके लिए लिख देना चाहिए।

मैं उसके कमरे में गया। वह घुटनों पर झुकी हाथों में सिर पकड़े बैठी थी। 'सुनिये'

अब देखिए मैं जब भी अपनी कहानी के इस बिंदु पर आता हूं तो हमेशा मेरी बहुत अजीब हालत हो जाती है और मैं बहुत मूर्खतापूर्ण महसूस करने लगता हूं। 'मेरी बात सुनेंगी आप?' मैंने कहा।

वह उठी, आंखें चमकाती हुईं मुझ तक आई और मेरे कंधों पर हाथ टिकाते हुए अपनी खरखरी आवाज में फुसफुसाती हुई बोली, 'देखिये, बात यह

है कि न तो सच में कोई बोल्स है और न ही टेरेसा। लेकिन इससे आपको क्या ? आपको तो एक कागज पर कुछ लिखने में ही तकलीफ होती है। कोई बोल्स नहीं और न ही टेरेसा, सिर्फ मैं हूं। और आपके पास ये जो दोनों हैं, इनसे आप जो कुछ अच्छा चाहें, कर सकते हैं।'

'माफ कीजिए।' मैंने कहा, 'यह सब क्या है? आप कहती हैं कोई बोल्स नहीं है?'

'हां।'

'और कोई टेरेसा भी नहीं?'

'हां, कोई और टैरेसा नही, बस मैं ही टेरेसा हूं।'

मैं कुछ भी नहीं समझ पाया। मैंने अपनी निगाहें उस पर टिका दीं और सोचने लगा कि दोनों में से पहले कौन आगे बढ़कर कोई हरकत करता है। लेकिन वही पहले मेज तक गई, कुछ तलाश किया और मेरे पास आकर शिकायती मुद्रा में उलाहने के साथ कहने लगी 'अगर आपको बोल्स के नाम चिट्ठी लिखने में तकलीफ हुई तो यह रहा आपका लिखा कागज। दूसरे लोग लिख देंगे मेरे लिए।'

मैंने देखा उसके हाथ में बोल्स के नाम मेरे हाथों लिखा हुआ पत्र था। ओफ्फो...।

'सुनिए मैडम, आखिर इस सबका क्या मतलब है? आप क्यों दूसरों के पास पत्र लिखवाने के लिए जायेंगी? यह तो पहले ही लिखा हुआ है और आपने इसे अभी तक भेजा भी नहीं?'

'कहां भेजती?'

'क्यों? मि. बोल्स को।'

'ऐसा कोई शख्स है ही नहीं।'

मैं कुछ नहीं समझ पाया। फिर उसने बताना शुरू किया।

'बात यह है कि ऐसा कोई इंसान है ही नहीं।' और फिर उसने अपने हाथ कुछ इस तरह फैलाते हुए कहा, जैसे उसे खुद ही यकीन नहीं कि ऐसा कोई इन्सान है ही नहीं।

'लेकिन मैं चाहती हूं कि वो हो ।... क्या मैं औरों की तरह इंसान नहीं हूं? हां, हां, मैं अच्छी तरह जानती हूं कि वह नहीं है कहीं भी... लेकिन किसी को भी

ऐसे शख्स को चिट्ठी लिखने में क्या और क्यों तकलीफ होती है?'

'माफ कीजिए- किसे?'

'मि. बोल्स को और किसे?'

'लेकिन वह तो है ही नहीं- उसका कोई अस्तित्व नहीं।'

'हे भगवान, क्या फर्क पड़ता है अगर वह नहीं है। उसका कोई अस्तित्व नहीं, लेकिन हो तो सकता है। मैं उसे लिखती हूं और इससे लगता है कि वो है और टेरेसा, जो मैं हूं, उसे वह जवाब देता है और मैं फिर उसे लिखती हूं।'

और आखिरकार मेरी कुछ समझ में आया। मेरे पास एक ऐसी इंसानी शख्सियत खड़ी थी, जिसे दुनिया में प्यार करने वाला कोई नहीं था और जिसने ख़ुद अपने लिए एक दोस्त ईजाद कर लिया था।

'देखिए, आपने बोल्स के नाम एक चिट्ठी लिखी। मैं इसे किसी के पास ले जाती और वह इसे पढ़कर सुनाता तो मुझे लगता कि बोल्स है। और मैंने आपसे टेरेसा के नाम पत्र लिखने के लिए कहा था, उसे लेकर मैं किसी के पास जाती और उसे सुनते हुए मुझे विश्वास हो जाता कि बोल्स जरुर है और जिन्दगी मेरे लिए थोड़ी सहज-सरल हो जाती।'

'हे ईश्वर, मुझे अपनी शरण में ले लो।' उसकी बातें सुनकर मैंने अपने आप से ही कहा।

उस दिन के बाद से मैं नियमित रुप से सप्ताह में दो बार उसके लिए चिट्ठियां लिखने लगा। बोल्स के नाम और बोल्स की तरफ से टेरेसा को। वह उन्हें सुनती और रोने लग जाती। काल्पनिक बोल्स के वास्तविक पत्रों से आंसुओं में डूब कर उसने मेरे कपड़ों की मरम्मत का जिम्मा ले लिया। लगभग तीन महीने के इस सिलसिले के बाद उन्होंने उसे जेल भेज दिया। अब तो वह निश्चित तौर पर मर चुकी होगी।

इतना कहकर मेरे परिचित ने सिगरेट की राख़ झाड़ते हुए अपनी बात समाप्त करते हुए कहा।

बहरहाल, इंसान जितनी कड़वी चीजें चख लेता है, जीवन में उसे मीठी चीजें चखने के बाद उनकी उतनी ही भूख बढ़ती जाती है। और हम अपनी नियति में लिपटे हुए लोग इस बात को कभी नहीं समझ सकते।

और फिर तमाम चीजें बेहद मूर्खतापूर्ण और क्रूर नज़र आने लगती हैं। जिन्हें हम वंचित वर्ग कहते हैं, वे कौन हैं आखिर... मैं जानना चाहता हूं। वे हैं हमारे जैसे ही एक ही मांस, मज्जा और रक्त से बने लोग... यह बात हमें युगों से बताई जा रही है। और हम इसे सच में बस सुनते आए हैं... और सिर्फ शैतान ही जानता है कि यह कितना घिनौना सच है?... क्या हम मानवतावाद के प्रवचनों से पूरी तरह दूर भाग चले हैं?... लेकिन वास्तविकता में हम सब भी बेहद गिरे हुए और पतित लोग हैं। और जितना मैं समझ पाया हूं उसके अनुसार हम आत्मकेंद्रीयता और अपनी ही श्रेष्ठता के भावबोध के रसातल में पहुंच चुके हैं। लेकिन बहुत हो चुका यह सब... यह सब पर्वतों जितना ही पुराना है और इतना पुराना कि अब तो इसके बारे में बात करने पर भी शर्म महसूस होती है। बहुत-बहुत पुरानी बीमारी है यह सच में...

:: अनुवाद : प्रेमचन्द गांधी ::

कहानी - छब्बीस आदमी और एक लड़की

हम छब्बीस थे छब्बीस जीती-जागती मशीनें; गीले तहखानों में बंद, जहां हम क्रेंडल और सुशका बनाने के लिए आटा गूंधते थे. हमारे तहखाने की खिड़की नमी के कारण हरे और कीचड़ भरी ईंटों के क्षेत्र में खुलती थी. खिड़की को बाहर से लोहे की सलाखों से रक्षित किया गया था. आटे की धूल से सने शीशों से धूप नहीं आ सकती थी. हमारे मालिक ने खिड़की में लोहे की सलाखें इसलिए लगवाई थीं कि हम बाहर के भिखारियों को या अपने उन साथियों को रोटी न दे सकें, जो बेकार थे और भूखों मर रहे थे. हमारा मालिक हमें कपटी कहता था और खाने में मांस की जगह जानवरों की सड़ी आंतें देता था. वह हमारे लिए भाप और मकड़ी के जालों से भरी, नीची एवं छत के तले और

धूल तथा गोरुई रोग से ग्रसित मोटी दीवारों के बीच, गला घोंटनेवाला बंद पत्थर का बक्सा था, जहां हम रखे गए थे.

हम प्रातः पांच बजे जागते थे और सोते समय हमारे साथियों द्वारा गूंधे गए आटे से क्रेंडल और सुशका बनाने के लिए, भोथरे और उदासीन, छह बजे तक अपनी मेजों पर बैठ जाते थे. सारा दिन- प्रातः से लेकर रात दस बजे तक- हममें से कुछ साथी मेजों पर गूंधे आटे को हाथों से गोल करते थे और बाकी दूसरे आटे को पानी में गूंधते थे. सारा दिन उस बरतन में धीमी और शोकपूर्ण आवाज में खौलता पानी गाता रहता, जिसमें क्रेंडल पकाते थे और नानबाई अपने बेलचे से सख्ती तथा जोर से भट्ठी को रगड़ता था, जब उबाले गए आटे को गरम ईंटों पर रखता था. सारा दिन अंगीठी की लकड़ियां जलती रहती थीं और ज्वाला का लाल प्रतिबिंब उस काले घर की दीवारों पर नाचता था, मानों हमारा मजाक उड़ा रहा हो. किसी परियों की कहानी के दैत्य के सिर की तरह, महाकाय भट्ठी का आकार भी भद्दा था. जीवित आग भरे अपने जबड़े को खोले, हम पर गरम सांसें छोड़ता और भट्ठी पर लगे दो रोशनदानों से अनंत रूप से हमारे काम को देखता, अपने आपको भूमि से ऊपर को धक्का देता हुआ प्रतीत होता था- ये दो रोशनदान आंखों की तरह थे- दैत्य की शांत और निर्दयी आंखें! वे हमेशा हमारी तरफ उसी काली नजर से देखतीं, मानों वे सनातन गुलामों को देखते-देखते थक गई हों और हमसे किसी मानव वस्तु की अपेक्षा

न करके बुद्धिमानी की ठंडी घृणा से हमारा तिरस्कार कर रही हों.

दिन-प्रतिदिन, आटे की धूल और अपने पैरों से लाए गए कीचड़ में, उस अत्यन्त गरम वातावरण में, हम गूंधे हुए आटे को अपनी पसीने से तर करते क्रेंडलों के लिए गोले बनाते थे. हम अपने काम से तीव्र घणा करते थे और अपने हाथ बनाए क्रेंडल कभी नहीं खाते थे. हम चरी से बनाए क्रेंडलों को मान्यता देते थे. लंबी मेज पर एक-दूसरे के सामने बैठते थे. लंबे समय तक मशीन की तरह हाथों और अंगुलियों को चलाते थे कि हमें अपनी गति को देखने की जरूरत नहीं पड़ती थी. हम एक-दूसरे को तब तक देखते रहते थे, जब तक हर कोई यह नहीं देख लेता था कि उसके साथी के चेहरे पर कितनी झुर्रियां थीं. हमारे पास बात करने के लिए कुछ नहीं था. बातचीत का हर विषय समाप्त हो चुका था और हम अधिक समय तक चुप रहते थे, जब तक एक-दूसरे को गाली नहीं देते थे. एक व्यक्ति हम एक को गाली दे सकता था, विशेषकर जब वह व्यक्ति उसका साथी हो, परन्तु ऐसा बहुत कम होता था. एक आदमी तुम्हें बुरा-भला कैसे कह सकता है जब वह स्वयं ही अधमरा हो, यदि वह स्वयं पत्थर हो, यदि उसकी भावनाओं को उसके परिश्रम ने कुचल दिया हो, परन्तु हमारे जैसे आदमियों के लिए मौन रहना अत्यन्त कष्टकर था. उनके लिए, जिन्होंने सब कुछ कह दिया हो, जो वे कह सकते थे- मौन केवल उनके लिए सादा और सरल है, लेकिन जिन्होंने अभी तक बोलना शुरू नहीं किया...परन्तु कभी-कभी हम गाते थे और हमारा गाना इस प्रकार शुरू होता था- काम करते-करते हममें से एक थके हुए घोड़े की तरह लंबी आह भरता, फिर नरम स्वर में गुनगुनाता था, जिसका मधुर किंतु शोकाकुल उद्देश्य हमेशा गायक के दिल को हलका कर देना था. हममें से एक गाता और बाकी चुप रहकर उसे सुनते. गाना कांपता और हमारे तहखाने की छत के नीचे मर जाता था; जैसे सर्दियों की गीली रात में आग. उसके साथ दूसरी आवाज जुड़ जाती और दोनों आवाजें, तब हमारे घनी भीड़ वाले गढ़े के मोटे वातावरण में नरम और शोकाकुल रूप से तैरने लगतीं. एकाएक कई आवाजें जुड़ जातीं और गाना लहरों की तरह उठता तथा ऊंचा और ऊंचा होता जाता, लगता कि पथरीली जेल की दीवारें हिल जाएंगी.

छब्बीस-के-छब्बीस आदमी अपनी शक्तिशाली आवाजों में गाकर नानबाई खाने को भर देते थे जब तक यह महसूस नहीं होता था कि तहखाना हमारे गाने के लिए छोटा पड़ रहा है. गाना पथरीली दीवारों से टकराता था, विलाप करता था और कराहता था. वह दिल को मधुर उत्तेजित पीड़ा से भर देता था, पुराने

घावों को खोलता था और निराशाओं को जाग्रत करता था. गाने वाले गहरी और भारी आह भरते. एक आदमी एकाएक अपना गाना बंद करके कुछ देर के लिए साथियों का गाना सुनने बैठ जाता था. फिर उस आवाज को पुनः सामान्य लहर मिल जाती अथवा कोई निराशा में चिल्लाता- 'आह!' और फिर आंखें बंद करके गाने लगता था. परिपूर्ण लहर संभवतः उसे कहीं दूर का रास्ता मालूम होती- खुली धूप से चमकता रास्ता, जिस पर वह स्वयं चल रहा था.

परन्तु भट्ठी में ज्वाला अभी तक झिलमिला रही थी. नानबाई अब तक अपने बेलचे से रगड़ रहा था. पानी अभी तक बरतनों में खौल रहा था और आग का प्रतिबंब अब भी दीवारों पर तिरस्कार से नाच रहा था. दूसरे आदमियों के शब्दों में हमने अपने भौथरे शोक को गाया- और गाया उन व्यक्तियों की व्यथा को, जो धूप से वंचित थे और जिनको गुलामों जैसी भारी निराशा थी.

तो पत्थरों से बने उस बड़े तहखाने में हम छब्बीस आदमी इस प्रकार रहते थे. हमारे ऊपर काम का बोझ इतना था मानो उस मकान की तीनों मंजिलों का सारा बोझ हमारे कंधों पर हो. गाने के अतिरिक्त हमारे पास और भी अच्छी चीज थी, ऐसी चीज, जिसको हम प्यार करते थे और जिसने धूप का स्थान ले लिया था- धूप, जिसकी कमी हमें थी. हमारे मकान की दूसरी मंजिल पर सुनहरी कशीदाकारी की दुकान थी और उसमें काम करने वाली लड़कियों के साथ एक टानिया भी थी- सोलह वर्ष की घरेलू सेविका. प्रतिदिन प्रातः वह अपनी चमकती आंखें और गुलाबी चेहरा लिये, दरवाजे में लगी खिड़की से झांकती और दुलार दिखाने वाली तथा ठनठनाती आवाज में हमें बुलाकर पूछती, ''कैदियों! क्या मेरे लिए कोई क्रेंडली है?"

हम सभी इस साफ, प्रसन्न और जानी-पहचानी आवाज पर मुड़ते और प्रसन्नतापूर्वक उस छोटे से मुसकराते सुकुमार चेहरे को देखते थे. हम शीशे से दबी छोटी नाक और गुलाबी होंठों के बीच छोटे एवं सफेद दांतों को चमकते देखना चाहते थे- गुलाबी होंठ, जो मुसकराहट से फैल जाते थे. हम एक-दूसरे पर गिरते हुए उसके लिए दरवाजा खोलने जाते थे. वह आंनदचित अंदर आती और हमारे सामने एप्रेन थामे और मुसकराते हुए खड़ी हो जाती थी. एप्रेन के लम्बे प्लेट, जो कंधों पर खिसक जाते थे, उसके सीने के आर-पार तक आते थे और हम काले, गंदे, भद्दे उसकी तरफ देखते थे- (भूमि से दहलीज कई सीढ़ियां ऊंची थीं) केवल उसके लिए रटे गए विशेष शब्दों में हम उसे शुभ प्रभात कहते थे. जब उससे बात करते तो हमारी आवाजें नरम हो जातीं और

मजाक भी आसानी से होते थे. जो कुछ भी हम उसके लिए करते, उनमें कुछ-न-कुछ विशेषता होती थी. नानबाई अपना बेलचा धकेलता और अत्यन्त भारी क्रेंडल, जो भी वह ढूंढ़ सकता था, निकालता और टानिया के एप्रेन में डाल देता था.

''ध्यान रखना कि मालिक तुम्हें पकड़ न ले!" हम हमेशा उसे चेताया करते थे. वह गंवारू हंसी हंसती और प्रसन्नता से कहती- ''अलविदा, कैदियों!" और चूहे की तरह भाग जाती थी.

यह सब कुछ होता था. जब वह चली जाती तो उसकी बात हम एक-दूसरे से करते. हम वही कहते जो पिछले दिन या उसके पिछले दिन कहा था; क्योंकि वह और हम तथा हमारे आसपास की चीजें वही होती थीं, जो पिछले या उससे पिछले दिन होती थीं. यह किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन और दुःखदायी होता है, जिसके इर्द-गिर्द कुछ भी परिवर्तन नहीं होता. यदि इसमें आत्मा को पूरी तरह नष्ट करने का प्रभाव नहीं होता तो जितना अधिक समय वह जीता है, उसके आसपास का वातावरण उतना ही दुःखदायी और थकान वाला हो जाता है. औरतों के बारे में बात करते हुए हमारे अशिष्ट और लज्जाहीन शब्द कभी-कभी हमें भी घृणित प्रतीत होते हैं. यह हो सकता है कि जिन औरतों को हम जानते थे, वे दूसरे प्रकार के शब्दों के योग्य न हों, परन्तु हमने कभी भी टानिया के बारे में बुरा नहीं कहा था. हममें से किसी आदमी का साहस नहीं होता था कि उसे हाथ से छुए. हमने कभी भी खुला मजाक उसके सामने नहीं किया था. संभवतः यह यह कारण था कि वह हमारे पास अधिक समय तक नहीं रुकती थी; टूटे तारे की तरह एक क्षण चमककर लुप्त हो जाती थी, या फिर वह इतनी छोटी, प्यारी और सुंदर थी कि अशिष्टतम व्यक्तियों तक के दिलों में अपने लिए आदर जाग्रत कर सकती थी. भले ही कठोर परिश्रम ने हमे आत्मशक्ति से वंचित कर दिया था, हम फिर भी पुरुष और पूजा के लिए कुछ-न-कुछ चाहते थे, टानिया से बढ़कर हमारे पास और कोई वस्तु नहीं थी. टानिया के अतिरिक्त और किसी ने भी हम तहखाने के निवासियों की ओर ध्यान नहीं दिया था, भले ही मकान में बीसियों व्यक्ति और रहते थे. सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि हम सभी उसको अपना मानते थे- एक प्राणी, जो हमारे क्रेंडलों पर जी रहा था. हमने उसको गरम-गरम क्रेंडल देना अपना कर्तव्य मान लिया था. क्रेंडल हमारे देवता के लिए दैनिक भेंट बन गई- लगभग धार्मिक रीति, जो हमारे संबंधों को दिन-प्रतिदिन और पास लाती गई. क्रेंडलों के साथ हम

उसे परामर्श भी देते थे; जैसे- उसे गरम कपड़े पहनने चाहिए, उसे सीढ़ियों पर दौड़कर चढ़ना नहीं चाहिए और न ही लकड़ी के भारी गट्ठर उठाने चाहिए. वह हमारे परामर्शों को सुनकर मुसकराती और हमारी बातों का जवाब हंसकर देती थी. कभी-कभी वह हमारे परामर्शों पर ध्यान नहीं देती थी, परन्तु इससे हमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था. हमें तो केवल इतना ही दिखाने की चिंता थी कि हम उसका ध्यान रखते हैं.

वह कोई-न-कोई प्रार्थना लेकर हमारे पास बारंबार आती थी; जैसे- तहखाने का भारी दरवाजा खोलना या कुछ लकड़ी चीरना; और हम गर्व से खुशी से वह सब कुछ करते थे जो वह कहती थी.

जब कोई उससे कहता कि मेरी एकमात्र कमीज की मरम्मत कर दो तो वह नाक सिकोड़कर तिरस्कार पूर्वक कहती- ''कैसा विचार है यह! जैसे मैं इसे कर सकती हूं."

हम उस साहसी लड़की पर हंसे और फिर कभी ऐसी मांग नहीं की. हम उसे प्यार करते थे. बस इतना कहना ही पर्याप्त है. एक आदमी अपना प्यार अन्य व्यक्ति पर प्रतिपादित करना चाहता है, भले ही वह कभी-कभी इसके प्यार को बिगाड़ देता है, दूषित कर देता है; भले ही इससे दूसरे का जीवन नष्ट हो जाए, क्योंकि वह प्रेमिका का आदर किए बिना उसे प्यार करता है. हम टानिया को प्यार किए बिना नहीं रह सकते थे, क्योंकि हमारे पास दूसरा कुछ करने के लिए था ही नहीं!

कभी-कभी हममें से एक हमारे इस व्यवहार की आलोचना करता था-

''हम लड़की को क्यों बिगाड़ें? आखिर उसमें कौन सी ऐसी बात है? हम उसके लिए काफी कष्ट उठाते हुए प्रतीत होते हैं."

जिस आदमी ने ऐसा कहने का साहस किया, उसको

धष्टतापूर्वक चुप करा दिया गया. हमें किसी से प्यार करना था और हमने किसी को प्यार के लिए ढूंढ़ लिया था. जिस प्राणी को हम छब्बीस लोग प्यार करते थे, वह हर एक के लिए भिन्न और पवित्र होना चाहिए; जो इसका उल्लंघन करते हैं, वे हमारे शत्रु हैं. जिस वस्तु को हम प्यार करते थे, संभवतः वह अच्छी नहीं थी, परन्तु हम छब्बीस थे, इसी कारण हमें ऐसी वस्तु चाहिए थी जो सबको प्यारी होती और जिसको सभी एक-सा आदर देते.

प्यार भी घणा से कम सताने वाला नहीं. संभवतः इसीलिए कुछ चतुर आदमी मानते हैं कि घणा प्यार की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है, परन्तु यदि वे ऐसा

मानते हैं तो हमारे पीछे क्यों भागते हैं?

क्रेंडली बेकरी के अतिरिक्त उसी मकान में हमारे मालिक की डबलरोटी की बेकरी भी थी, जिसको हमारे गड्ढे से एक दीवार जुदा करती थी. वहां रोटी बनाने वाले चार नानबाई थे, परन्तु वे यह सोचकर कि उनका काम हमारे काम से श्रेष्ठ है, हमारी अवहेलना करते थे. वे कभी भी हमसे मिलने नहीं आते थे और जब भी हम सेहन में मिलते, वे हमारा मजाक उड़ाते थे, इसलिए उनसे नहीं मिलते थे. कहीं हम मिल्क-रोल न चुरा लें, इसलिए हमारे मालिक ने हमें मना कर दिया था. हम रोटी बनाने वालों को पसंद नहीं करते थे, क्योंकि हम उनसे ईर्ष्या करते थे. उनका काम हमारे काम से आसान था. उनको हमसे अधिक पगार मिलती थी और उनका खान-पान भी अच्छा था. उनका कमरा हमारे कमरे से बड़ा था और उसमें रोशनी की पर्याप्त व्यवस्था थी. वे सभी हृष्ट-पुष्ट और साफ-सुथरे व्यक्ति थे, जबकि हम दुःखी एवं त्रस्त जंतु थे. हममें से तीन साथी रोगग्रस्त थे- एक को चर्मरोग था, दूसरा गठिए के कारण पूर्णतया बेढंगा था. खाली समय और छुट्टियों में रोटी बनाने वाले चुस्त, छोटे-छोटे और आवाज करने वाले जूते पहनते थे. कुछ के पास हवा से बजने वाले हाथ के बाजे होते थे और वे पार्क में घूमने जाते थे, जबकि हम अपने गंदे चिथड़े और फटे जूते पहनते थे और पुलिस वाले हमें पार्क में जाने से रोकते थे. अतः कोई आश्चर्य नहीं कि हम रोटी बनाने वालों को पसंद नहीं करते थे.

एक दिन हमने सुना कि डबलरोटी बनाने वालों में से एक ने बहुत पी ली थी. मालिक ने उसे निकाल दिया और दूसरे को उसकी जगह काम पर रख लिया. उसकी प्रसिद्धि सिपाही के रूप में थी. वह साटन की वास्कट और सुनहरी घड़ी-चेन पहने घूमता था. हम इस अजूबे को देखने के लिए उत्सुक थे और सेहन में एक-दूसरे के बाद इस आशा से भागते रहे कि उसकी एक झलक मिल जाए.

वह स्वयं हमारे पास आया. उसने एक ठोकर मारकर दरवाजा खोला और दहलीज पर खड़े होकर मुसकराते हुए हमसे कहा, ''परमात्मा आपके साथ हो, शुभ प्रभात, साथियों!"

दरवाजे पर गहरे बादल की तरह आती हुई ठंडी हवा उसकी टांगों से खेल रही थी. वह दहलीज पर खड़ा हमें देख रहा था और बल दी गईं उसकी साफ मूंछों के नीचे उसके पीले दांत चमक रहे थे. वह वास्तव में नीले रंग की अजीब वास्कट पहने हुए था, जिस पर फूलों की चमकदार कशीदाकारी की हुई थी. उसके बटन लाल पत्थर के थे और चेन भी वहां थी.

वह सिपाही सुंदर था- लंबा, तगड़ा, गुलाबी गाल और आंखों में स्पष्ट दयालु आकृति. वह कलफ लगी टोपी पहने हुए था और उसके साफ एप्रेन के नीचे पॉलिश किए हुए चमकदार जूतों की नोक झांक रही थी.

जब हमारे अपने नानबाई ने उससे दरवाजा बंद करने के लिए आदरपूर्वक प्रार्थना की, तब उसने उसे धीरे से बंद कर दिया और फिर मालिक के बारे में प्रश्न करने लगा. एक-दूसरे से होड़ लेते हुए हमने उसे बताया कि हमारा मालिक ऊनी बनियान की तरह है- दुष्ट, दुराचारी अर्थात् सब कुछ. वास्तव में, मालिक की बाबत जो कुछ भी कहने योग्य होता है, उसको यहां कहना

असंभव है.

अपनी मूंछों पर ताव देते हुए सिपाही सुनता रहा और अपनी बड़ी एवं कोमल आंखों से हमारी तरफ देखता रहा.

''क्या यहां बहुत लड़कियां हैं?" उसने एकाएक पूछा.

हममे से कुछ इस पर हंसने लगे; जबकि दूसरों ने मुंह बनाकर उसे बताया कि कुल मिलाकर नौ लड़कियां थीं.

''क्या तुम अपने अवसरों का लाभ उठाते हो?" सिपाही ने एक आंख झपकाकर पूछा.

हम पुनः हंस दिए- नरम और व्याकुल हंसी. हममें से कई ने चाहा होगा कि सिपाही को विश्वास दिला दें कि हम भी उतने ही चतुर हैं जितना कि वह, परन्तु हममें से कोई भी ऐसा नहीं करता और न ही कोई जानता था कि यह कैसे किया जाए. कुछ ने तो यह कहते हुए नरमी से स्वीकार भी कर लिया-

''हम इसे पसंद नहीं करते."

''हां, यह वस्तुतः तुम्हारे लिए कठिन भी होगा." सिपाही ने ऊपर-नीचे देखते हुए विश्वास के साथ कहा, ''यह तुम्हारी श्रेणी में नहीं है, तुम्हारी कोई प्रतिष्ठा नहीं है- शक्ल-सूरत भी नहीं, यहां तक कि तुम्हारा कोई अस्तित्व ही नहीं है. औरत आदमी की आकृति का विशेष ध्यान रखती है. उसका शरीर अच्छा होना चाहिए और कपड़े भी अच्छी तरह पहने हों; फिर औरत आदमी की शक्ति की प्रशंसा करती है. उसका इस प्रकार का बाजू होना चाहिए, देखा!"

सिपाही ने अपना दायां हाथ जेब से निकाला और कोहनी तक नंगा करके हमें दिखाया. यह सफेद शक्तिशाली बाजू था, जिस पर चमकते हुए सुनहरे बाल थे.

''टांग, छाती और हर अंग पुष्ट होना चाहिए और फिर अच्छा बनने के लिए

कपड़े भी अच्छी तरह पहने हुए होने चाहिए. मुझे ही देख लो, सारी औरतें मुझसे प्यार करती हैं. उनको बुलाने के लिए मुझे अंगुली उठानी नहीं पड़ती और एक समय में पांच अपने आपको मेरे सिर पर गिरा देती हैं."

वह आटे के बोरे पर बैठ गया और हमें सुनाने लगा कि किस तरह औरतें उससे प्यार करती थीं और किस वीरता से वह उनसे व्यवहार करता था. अंततः वह चला गया और जब दरवाजा चीं करके बंद हुआ तो हम सिपाही और उसकी कहानियों को सोचते देर तक मौन बैठे रहे; एकाएक हम सभी बोलने लगे और यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि हम सभी उसमें रुचि लेने लगे थे. कितना सीधा आदमी था. वह आया और हमसे बातचीत की. किसी ने भी आकर हमसे इस प्रकार मित्रतापूर्वक बात नहीं की थी. हमने उसकी बात की और बात की कशीदाकारी करने वाली लड़कियों पर उसकी भावी विजय दर्ज की. वे लड़कियां बाहर निकलतीं तो हमसे आंख बचाकर चली जाती थीं या सीधी निकल जाती थीं; जैसे हम वहां थे ही नहीं. हमने कभी भी उनकी प्रशंसा करने का साहस नहीं किया, भले ही दरवाजे के बाहर या जब सर्दियों में अजीब कोट और टोपी पहने हमारी खिड़की के सामने से जाती थीं और गर्मियों में कई रंगों के फूल लगे टोप और हाथों में छोटे छाते होते थे. फिर भी हम आपस में इन लड़कियों के बारे में इस ढंग से बातें करते थे कि यदि वे सुन लेतीं तो मारे शरम और घबराहट के पागल हो जातीं.

''मैं आशा करता हूं कि वह हमारी टानिया को गुमराह नहीं करेगा!" अचानक नानबाई ने चिंतित होते हुए कहा.

उसके शब्दों को सुनकर हममें से कोई नहीं बोला. टानिया के बारे में हम भूल गए थे. सिपाही ने उसे हमसे छिपा लिया था; जैसा कि उसके अपने सुंदर शरीर के बारे में हो. फिर झगड़ा शुरू हो गया. कुछ साथियों का कहना था कि टानिया अपने आप इतना नहीं गिरेगी, दूसरे कहते कि वह सिपाही को रोक नहीं सकेगी और एक तीसरे वर्ग का विचार था कि यदि सिपाही ने टानिया को तंग करना शुरू किया तो उसकी पसलियां तोड़ देंगे. अंत में हम इस निर्णय पर पहुंचे कि टानिया और सिपाही की ध्यानपूर्वक चौकसी की जाए और लड़की को उसके प्रति सचेत कर दिया जाए. इस निर्णय ने झगड़े को समाप्त कर दिया.

एक महीना व्यतीत हो गया. सिपाही ने डबलरोटी बनाई, कशीदाकारी करने वाली लड़कियों के साथ घूमा, हमसे मिलने आया, परन्तु कभी भी लड़कियों पर अपनी विजय की बात नहीं की, वह केवल अपनी मूंछों को बल देता और

होंठों को चाटता था. टानिया हमारे पास हर प्रातः 'छोटे क्रेंडलों' के लिए आती थी और हमारे साथ उसी तरह मधुर, प्रसन्न और मित्रवत् रहती. हमने उससे सिपाही की बाबत बात करने का प्रयास किया. वह उसे 'रंगीन चश्मा चढ़ा बछड़ा' कहती थी तथा और भी कई नामों से बुलाती थी. इससे हमारा डर दूर हो गया.

यह देखकर कि कशीदाकारी करने वाली लड़कियां उसके पीछे कैसे दौड़ती थीं, हमें टानिया पर गर्व था. सिपाही के प्रति टानिया के व्यवहार ने हमारा सिर ऊंचा कर दिया था और हम, जो उसके इस व्यवहार के लिए जिम्मेदार थे, ने सिपाही के साथ अपने

संबंधों को घणा की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया तथा टानिया को और अधिक प्यार करने लगे; बल्कि और अधिक प्रसन्नता से. अच्छे स्वभाव के साथ प्रातः काल उसका अभिनंदन करने लगे.

एक दिन सिपाही खूब शराब पीकर हमारे पास आया और बैठकर हंसने लगा. जब हमने पूछा कि उसकी हंसी का कारण क्या है तो कहने लगा-

''मेरे लिए दो लड़कियां आपस में लड़ने लगीं. वे एक-दूसरी पर कैसे झपटीं... हा, हा...एक ने दूसरी को बालों से पकड़कर रास्ते में पटक दिया और उसके ऊपर बैठ गई...हा, हा, हा! उन्होंने एक-दूसरे को खरोंचा और फाड़ दिया... तुम मर गए होते! वे ठीक ढंग से क्यों नहीं लड़ सकतीं? वे हमेशा खरोंचती और खींचती क्यों हैं?"

वह बेंच पर बैठ गया- पुष्ट, साफ और प्रसन्न. वह वहां बैठा और हंसा. हम चुप थे और उस समय उसे पसंद नहीं कर रहे थे.

''विश्वास पाने के लिए औरतें मेरे पीछे किस तरह भागती हैं! यह वस्तुतः खिलवाड़ है, मुझे केवल आंख झपकाना होता है और वे आ जाती हैं- दुष्ट!"

उसने चमकते बालों वाले अपने हाथ ऊपर उठाए और अपने घुटनों पर दे मारे. उसने हमारी तरफ ऐसे आश्चर्यजनक हाव-भाव से देखा जैसे वह स्वयं अपनी उस सफलता की प्रसन्नता पर हैरान हो, जो उसे औरतों से मिली थी. उसके मोटे गुलाबी गाल संतुष्टि से चमक रहे थे और वह अपने होंठों को चाटता रहा.

हमारे नानबाई ने बेलचे को क्रोध से भट्ठी में रगड़ा और एकाएक उपहास करते हुए बोला, ''छोटे पौधे को उखाड़ने में ज्यादा कुछ नहीं करना पड़ता, परन्तु जरा देवदार का बड़ा वक्ष काटने का प्रयास करो तो जानें."

''यह मुझे कह रहे हो?" सिपाही ने पूछा.

''हां, तुम्हें."

''तुम्हारा मतलब क्या है?"

''कुछ नहीं, यह मुंह से निकल गया."

''परन्तु जरा रुको. किसके बारे में कहते हो? कौन-सा देवदार?"

हमारे नानबाई ने उत्तर नहीं दिया और अपना बेलचा शीघ्रता से चलाता रहा. वह उबले हुए क्रेंडलों को अंदर रखता और पके हुए क्रेंडलों को बाहर निकालता तथा जोर से फर्श पर फेंकता था, जहां लड़के उनको रस्सी से आपस में बांधने में व्यस्त थे. ऐसा प्रतीत होता था कि वह सिपाही और उसके साथ हुई बातचीत को भूल गया था. किसी तरह सिपाही एकाएक बेचैन हो गया. वह उठा और भट्ठी के पास गया. दस्ते को नानबाई बेग से हवा में घुमा रहा था. वह (सिपाही) अपने आपको बेलचे की चोट से कठिनाई से बचा पाया.

''परन्तु तुम्हें अपना मतलब बताना होगा क्योंकि इससे मुझे चोट पहुंची है. कोई भी अकेली लड़की मेरा प्रतिकार नहीं कर सकती, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं. तुम इतनी अपमानजनक बातें करते हो!"

उसे वास्तव में चोट लगी थी. हो सकता था कि उसके पास केवल औरतों को बहकाने के अतिरिक्त और कोई ऐसा काम न हो जिस पर वह गर्व कर सके. संभवतः उसमें इसी बात के लिए जीवित रहने की क्षमता हो, केवल एक ही वस्तु, जिसके कारण वह अपने आपको आदमी समझता था. कुछ आदमी ऐसे होते हैं जो जीवन में सर्वोत्तम और उच्चतम की आत्मा या शरीर का एक प्रकार का रोग समझते हैं और जिसको साथ लेकर अपना सारा जीवन व्यतीत करते हैं; अपने साथियों से इसकी शिकायत करते हैं और शिकायत से उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं. उनका यही एकमात्र ढंग है, जिससे वे अपने साथियों की सहानुभूति प्राप्त करते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं. उनके इस रोग को दूर करने के लिए उपचार किया जाए तो वे नाराज हो जाते हैं, क्योंकि उनसे वह चीज ले ली जाती है जिन पर उनका जीवन आधारित है और इस प्रकार वे खाली-से हो जाते हैं. कभी-कभी एक आदमी का जीवन इतना खाली हो जाता है कि वह बुराई को अनैच्छिक महत्त्व देने लग जाता है, उसे ही अपना लेता है और कहता है कि आदमी खालीपन में ही बुरा बनता है.

सिपाही क्रोधित हुआ और पुनः ऊंची आवाज में नानबाई से मांग की-

''तुम्हें बताना होगा कि तुम्हारा क्या मतलब है?"

''बताऊं क्या?'' नानबाई जल्दी से मुड़ा.

''ठीक है, बताओ.''

''क्या तुम टानिया का जानते हो?''

''हां, तो इससे क्या?''

''ठीक है, उस पर प्रयत्न करो. बस, इतना ही.''

''मैं?''

''हां, तुम.''

''फूह, यह तो आंखें झपकाने की तरह आसान काम है.''

''देखेंगे हम.''

''तुम देखोगे? हा, हा, हा!''

''वह तुम्हें वापस भेज देगी.''

''मुझे एक महीना दो.''

''तुम कितने घमंडी हो, सिपाही!''

''तुम मुझे दो सप्ताह दो! मैं तुम्हें दिखा दूंगा; किसी-न-किसी तरह से; यह टानिया है कौन? फूह!''

''एक तरफ हो जाओ, मेरा हाथ रोक रहे हो?''

''दो सप्ताह...बस, हो गया समझो. तुम...''

''एक तरफ हो जाओ, मैं कह रहा हूं.''

हमारे नानबाई को एकाएक तीव्र कोप का दौरा पड़ा और उसने बेलचा हवा में घुमाया. सिपाही विस्मित होकर शीघ्र ही उससे जरा दूर हट गया. उसने क्षण भर के लिए चुप होकर हमें देखा और फिर शांति से ईर्ष्यापूर्वक कहा, ''बहुत अच्छा!'' तत्पश्चात् वह चला गया.

किसी ने नानबाई को पुकारा-

''यह गंदा काम है, जो तुमने शुरू किया है, पागल!''

''तुम अपना काम करो!'' नानबाई ने गुस्से में उत्तर दिया.

हमने महसूस किया कि सिपाही को बात चुभ गई थी और कि टानिया को भय की धमकी दी गई थी. इसके होते हुए भी हम आनंद से, जलते हुए कौतूहल से यह जानने के लिए जकड़े गए कि क्या होगा! क्या टानिया सिपाही का प्रतिकार करेगी? और सभी भरोसे से बोले, ''टानिया जरूर प्रतिकार करेगी. टानिया को लेने के लिए केवल खाली हाथों से कुछ और ज्यादा की जरूरत होगी.''

हमारे अंदर और देवी की शक्ति को परखने की तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई.

हमने एक-दूसरे को मनाने की भरसक कोशिश की कि हमारी देवी इस अग्निपरीक्षा में अवश्य अपराजित सिद्ध होगी. अब हमें अनुभव हुआ कि हमने सिपाही को पर्याप्त रूप से नहीं उकसाया था. हमें डर था कि संभवतः वह इस झगड़े को भूल जाएगा और निश्चय किया कि उसके अहंकार को और आघात पहुंचाई जाए. उस दिन विशेषकर हमारा मन खिंचा-खिंचा और उद्विग्न हो गया. हम सारा दिन एक दूसरे से वाद-विवाद करते रहे. ऐसा प्रतीत होता था कि हमारे मस्तिष्क स्पष्ट हो गए हों और हमारे पास करने के लिए अधिक-से-अधिक बातें हों. ऐसा लगता था कि हम पिशाच से कोई खेल-खेल रहे थे और टानिया हमारे लिए दांव थी. जब हमने डबलरोटी बनाने वालों से सुना कि सिपाही ने टानिया से मेल-मिलाप शुरू कर दिया है तो हमारे अंदर पीड़ायुक्त मीठी सनसनी दौड़ गई और हमें जीवन इतना रुचिकर लगा कि हमें यह भी पता नहीं चला कि हमारी सामान्य उत्तेजना का लाभ उठाकर हमारे मालिक ने गूंधे आटे के चौदह और पेड़े कब हमारे दिन के काम में जोड़ दिए. सारे दिन टानिया के नाम ने हमारे होंठों को नहीं छोड़ा और प्रति सुबह हमने अजीब अधीरता से उसकी प्रतीक्षा की. कभी-कभी ऐसा लगता था कि वह सीधी हमारे कमरे में आना चाहती थी- और वह पुरानी टानिया न होकर हमें कोई अजीब और नई लगती थी.

लेकिन हमने अपने नए झगड़े के बारे में उसको नहीं बताया. हमने उससे कोई प्रश्न नहीं पूछा और पहले की तरह ही उससे दयालुता और गंभीरता से व्यवहार किया, परन्तु उसके बारे में हमारी सोच में कुछ नई और अजीब चीज आ गई थी; और यह नई चीज थी- मर्मभेदी हैरानी-तेज और ठंडी, लोहे के चाकू की तरह.

''समय हो गया, साथियों!" एक प्रातः काल हमारे नानबाई ने अपने काम को रोकते हुए घोषणा की.

उसके याद कराए बिना हम जानते थे, फिर भी हम सबने अपना-अपना काम शुरू कर दिया.

''उसको अच्छी तरह से देखो, वह शीघ्र ही आ रही है!" हमारे नानबाई ने कहना जारी रखा. तभी किसी ने शोकपूर्ण आवाज में कहा, ''मानो तुम उसे अपनी आंखों से देख रहे हो."

और एक बार फिर हमने शोर-शराबे वाली बात शुरू कर दी. आज हमें जानना था कि अंततः वह बरतन कितना शुद्ध है जिसमें हमने अपनी सारी

अच्छाई उड़ेल दी थी. आज हमने पहली बार महसूस किया कि वस्तुतः हम एक बड़ा खेल खेल रहे थे और शुद्धता की यह परीक्षा हमें अपनी देवी से सर्वथा वंचित करके ही समाप्त होगी. तुम सुन चुके थे कि सारे पखवाड़े सिपाही किस प्रकार लगातार टानिया का पीछा करता रहा था; परन्तु हममें से किसी ने भी उससे पूछने के लिए नहीं सोचा था कि उसके प्रति उसका व्यवहार कैसा है; वह हर प्रातः काल क्रेंडल लेने के लिए आती रही और हमारे लिए पहले की तरह थी.

आज के दिन भी हमने उसकी आवाज शीघ्र सुनी-

''कैदियों, मैं आ गई हूं.''

हमने दरवाजा खोल दिया. जब वह अंदर आई तो अपनी सामान्य रीति के विरुद्ध हमने चुप रहकर उसका अभिनंदन किया. हमारी सबकी आंखें उस पर गड़ी थीं. हम नहीं जानते थे कि उससे क्या कहें या क्या पूछें. हम काली, मौन भीड़ के रूप में उसके सामने खड़े थे. वह इस अनजाने स्वागत से स्पष्टतया हैरान हुई. हमने उसे एकाएक पीला पड़ते देखा; वह अशांत हो गई. अपना स्थान बदलते हुए उसने उदास स्वर में पूछा, ''तुम इस तरह क्यों हो?''

''और तुम?'' नानबाई ने बिना आंखें हटाए गंभीरता से पूछा.

''मेरे साथ क्या हुआ?''

''कुछ नहीं.''

''तो ठीक है, जल्दी करो और क्रेंडल दो.''

पहले कभी भी उसने हमारे साथ जल्दबाजी नहीं की थी.

''तुम्हारे पास काफी समय है!'' बिना अपने स्थान से हिले या अपनी आंखें हटाए नानबाई ने कहा.

वह एकाएक मुड़ी और दरवाजे से गायब हो गई.

नानबाई ने अपना बेलचा संभाला और शांत भाव से बोला; जैसे वह भट्ठी से बात कर रहा हो.

''मेरा अनुमान है, यह हो गया है! यह दुराचारी सिपाही, दुष्ट व्यक्ति... !''

बकरियों के झुंड की तरह, एक-दूसरे को धकेलते, बिना काम किए हम मेज पर चुपचाप बैठ गए. जल्दी ही एक ने कहना शुरू किया, ''यह असंभव है.''

''चुप रहो!'' नानबाई चिल्लाया.

हम जानते थे कि वह सामान्य बुद्धि वाला है और हमसे चतुर है. हमने उसके चिल्लाने को सिपाही की विजय का चिह्न समझा. हम दुःखी और अशांत थे.

खाने के समय बारह बजे सिपाही अंदर आया. वह सामान्य रूप से साफ-सुथरा और अच्छी पोशाक पहने हुए था. उसने सामान्य ढंग से हमें देखा, जिसने हमें कष्ट पहुंचाया.

''ठीक है, मेरे भद्र पुरुषों, तुम देखना चाहोगे कि एक सिपाही क्या कर सकता है? रास्ते में जाओ और छिद्र से झांको...समझते हो क्या?"

हम एक-दूसरे के ऊपर गिरते गए और अपने चेहरे उस दीवार के छिद्र पर जमा दिए जो बाहरी दालान में जाती थी. हमें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी. जल्दी ही तेज कदमों के साथ और चिंतित चेहरा लिये पिघली हुई बर्फ और मिट्टी से बनी पोखरी को लांघकर सेहन में से होती टानिया आई. वह तहखाने के दरवाजे में लुप्त हो गई. उसके तुरन्त बाद धीरे-धीरे गुनगुनाता हुआ सिपाही आया और उसका पीछा किया. उसके हाथ उसकी जेबों में थे और मूंछे कांप रही थीं.

वर्षा हो रही थी. हमने बूंदों को पोखरियों में गिरते और गिरकर गोल चक्र बनाते देखा.

यह नमी वाला, भूरा, भोथरा और उदासीन दिन था. छतों पर अभी भी बर्फ जमी हुई थी और भूमि पर कीचड़ के काले टुकड़े पड़े थे. छतों की बर्फ भी नम, भूरी और गंदी थी. वर्षा एक ही आवाज में धीरे-धीरे हो रही थी. प्रतीक्षा ठंडी और थकाने वाली थी.

तहखाने से पहले निकलने वाला सिपाही था. वह सेहन के साथ-साथ धीरे-धीरे चला. उसकी मूंछें कांप रही थीं. और उसके हाथ जेबों में थे जैसे वे हमेशा देखे जाते थे.

फिर टानिया बाहर निकली. उसकी आंखें मारे खुशी के चमक रही थीं और उसके होंठ मुसकराहट से फैल गए थे. वह लड़खड़ाते कदमों से इधर-उधर झूमकर ऐसे चली जैसे नींद में चल रही हो.

यह हमारी सहनशक्ति से बाहर था. हम तुरन्त दरवाजे से सेहन में आए और उस पर बुरी तरह से फुंफकारना और चिल्लाना शुरू कर दिया.

जब उसने हमें देखा तो चलने लग गई और फिर इस तरह से रुकी जैसे उस पर बिजली गिर पड़ी हो. उसके पांव के नीचे कीचड़ था. हमने उसे घेर लिया और बिना रुके क्रोध से अपने गंदे और निर्लज्ज शब्दों में गालियां देने लगे.

हमने इसकी बाबत अधिक शोर नहीं मचाया, क्योंकि वह हमसे भाग नहीं सकती थी और हमें भी जल्दी नहीं थी. हमने केवल उसे घेरकर उसकी दिल

खोलकर हंसी उड़ाई. मैं नहीं कह सकता कि हमने उसे पीटा क्यों नहीं! वह अपना सिर

इधर-उधर हिलाती और अपमान को सहती हमारे बीच खड़ी रही. हम अपने गंदे और विषैले शब्दों में उसे गालियां देते रहे.

उसके गालों का रंग उड़ गया, उसकी नीली आंखें, जो क्षण भर पहले प्रसन्न थीं, फैलकर खुल गईं. उसकी सांस जल्दी-जल्दी और तेज चलने लगी तथा होंठ कांपने लगे.

उसे घेरकर हमने इस प्रकार दण्ड दिया जैसे उसने हमें लूट लिया हो. जो भी हममें अच्छाई थी, हम उस पर लुटा चुके थे, भले ही वह सब एक भिखारी की रोटी से अधिक नहीं था; फिर भी हम छब्बीस थे और वह अकेली थी, इसलिए भी हमने उसके दोष को देखते हुए अधिक यातना के बारे में नहीं सोचा था. जब वह आंखें फाड़े घूर रही थी और सूखे पत्ते की तरह हिल रही थी तो हमने उसे बुरी तरह से अपमानित किया. हम उस पर हंसे, गरजे और गुर्राए. कहीं से और लोग भी हमारे साथ मिल गए. एक आदमी ने टानिया की कमीज के बाजू को पकड़कर खींचा.

एकाएक उसकी आंखें चमकीं. उसने धीरे से अपने बाजू ऊपर उठाए, बालों को संवारा और फिर धीरे तथा शांत भाव से सीधे हमारे चेहरों को देखते हुए बोली, ''तुम अभागे कैदी.''

और सीधी हमारी ओर आई, मानों हम उसे घेरे खड़े न हों. किसी ने भी उसका रास्ता नहीं रोका, क्योंकि उसको जाने देने के लिए हम एक तरफ हट गए थे.

बिना अपना सिर मोड़े हमारे बीच से जाती हुई वह अवर्णनीय घणा से ऊंची आवाज में बोली, ''तुम जंगली जानवर हो...पथ्वी की गंदगी!''

और वह चली गई.

हम भूरे और बिना धूप के आकाश के तले वर्षा और कीचड़ में सेहत में ही रह गए.

जल्दी ही हम अपने पत्थरों के गड्ढे में लौट आए. सूर्य पहले की तरह खिड़की से कभी नहीं झांका और टानिया फिर कभी हमारे पास नहीं आई.

कविता - तूफानी पितरेल पक्षी का गीत

यह विख्यात कविता गोर्की ने 1905 की पहली रूसी क्रान्ति के दौरान क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की अपार ताकत और साहसिक युगपरिवर्तनकारी भूमिका से परिचित होने के बाद उद्वेलित होकर लिखी थी जो पूँजीवादी दुनिया की अमानवीयता को सर्वहारा वर्ग द्वारा दी गई चुनौती का अमर दस्तावेज बन गई। अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर पूरी मानवता की मुक्ति और उत्कर्ष के लिए पूँजीवादी विश्व के जालिम मालिकों के विरूद्ध तफानी रक्तरंजित संघर्ष की घोषणा करने वाले शौर्यवान और साहसी सर्वहारा को गोर्की ने इस कविता में बादलों और समुद्र के बीच गर्वीली उड़ानें भरते निर्भीक पितरेल पक्षी के रूप में देखा है जो भयानक तूफान का चुनौतीपूर्ण आहावन कर रहा है। समाज के कायर, बुजदिल बुद्धिजीवियों तथा अन्य डरपोक मध्यमवर्गीय जमातों को गोर्की ने तूफान की आशंका से भयाक्रान्त गंगाचिल्लियों, ग्रेब और पेंगुइन पक्षियों के रूप में देखा है। जिस क्रान्तिकारी तूफानी परिवर्तन का आना निश्चित है, ऐतिहासिक नियति है और जिसके बिना मानव समाज और मानवीय मूल्यों की मुक्ति और उत्कर्ष असम्भव है, उसके भय से अपनी मान्दों में दुबकने वाले समाज के ग्रेब, पेंगुइन और गंगाविल्लियों के समानान्तर पितरेल सर्वहारा वर्ग के साहस, जीवन दृष्टि और भावनाओं-मूल्यों को जितने सुन्दर बिम्बों-रूपकों में बान्धकर गोर्की ने यहां प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। – सम्पादक, आह्वान

समुद्र की रूपहली सतह के ऊपर
हवा के झोंकों से
तूफान के बादल जमा हो रहे हैं और
बादलों तथा समुद्र के बीच
तूफानी पितरेल चक्कर लगा रहा है
गौरव और गरिमा के साथ,
अन्धकार को चीरकर
कौंध जाने वाली विद्युत रेखा की भान्ति।
कभी वह इतना नीचे उतर आता है

कि लहरें उसके पंखों को दुलराती हैं,
तो कभी तीर की भान्ति बादलों को चीरता
और अपना भयानक चीत्कार करता हुआ
ऊंचे उठ जाता है,
और बादल उसके साहसपूर्ण चीत्कार में
आनन्दातिरेक की झलक देख रहे हैं।
उसके चीत्कार में तूफान से
टकराने की एक हूक ध्वनित होती है!
उसमें ध्वनित है
उसका आवेग, प्रज्ज्वलित क्षोभ और
विजय में उसका अडिग विश्वास।
गंगाचिल्लियां भय से बिलख रही हैं
पानी की सतह पर
तीर की तरह उड़ते हुए,
जैसे अपने भय को छिपाने के लिए समुद्र की
स्याह गहराइयों में खुशी से समा जायेंगी।
ग्रेब पक्षी भी बिलख रहे हैं।
संघर्ष के संज्ञाहीन चरम आह्लाह को
वे क्या जानें?
बिजली की तड़प उनकी जान सोख लेती है।
बुद्धू पेंगुइन
चट्टानों की दरारों में दुबक रहे हैं,
जबकि अकेला तूफानी पितरेल ही
समुद्र के ऊपर
रूपहले झाग उगलती
फनफनाती लहरों के ऊपर
गर्व से मंडरा रहा है!
तूफान के बादल
समुद्र की सतह पर घिरते आ रहे हैं
बिजली कड़कती है।
अब समुद्र की लहरें

हवा के झोंको के विरूद्ध
भयानक युद्ध करती हैं,
हवा के झोंके अपनी सनक में उन्हें
लौह-आलिंगन में जकड़ उस समूची
मरकत राशि को चट्टानों पर दे मारते हैं
और वह चूर-चूर हो जाती है।
तूफानी पितरेल पक्षी चक्कर काट रहा है,
चीत्कार कर रहा है
अन्धकार चीरती विद्युत रेखा की भान्ति,
तीर की तरह
तूफान के बादलों को चीरता हुआ
तेज धार की भान्ति पानी को काटता हुआ।
दानव की भान्ति,
तूफान के काले दानव की तरह
निरन्तर हंसता, निरन्तर सुबकता
वह बढा जा रहा है-वह हंसता है
तूफानी बादलों पर और सुबकता है
अपने आनन्दातिरेक से!
बिजली की तड़क में चतुर दानव
पस्ती के मन्द स्वर सुनता है।
उसका विश्वास है कि बादल
सूरज की सत्ता मिटा नहीं सकते,
कि तूफान के बादल सूरज की सत्ता को
कदापि, कदापि नहीं मिटा सकेंगे।
समुद्र गरजता है... बिजली तड़कती है
समुद्र के व्यापक विस्तार के ऊपर
तूफान के बादलों में
काली-नीली बिजली कौंधती है,
लहरें उछलकर विद्युत अग्निवाणों को
दबोचती और ठण्डा कर देती हैं,
और उनके सर्पिल प्रतिबिम्ब,

हांफते और बुझते
समुद्र की गहराइयों में समा जाते हैं।
तूफान! शीघ्र ही तूफान टूट पड़ेगा!
फिर भी तूफानी पितरेल पक्षी गर्व के साथ
बिजली के कौंधों के बीच गरजते-चिंघाड़ते
समुद्र के ऊपर मंडरा रहा है
और उसके चीत्कार में
चरम आह्लाद के प्रतिध्वनि है-
विजय की भविष्यवाणी की भान्ति....
आए तूफान,
अपनी पूरी सनक के साथ आए।

(यह अनुवाद 'युयुत्सा', मई-जून '68 के अंक से साभार)

अतीत की कड़वी यादें, भविष्य के सुनहरे सपने और भय व उम्मीद की वो रात "ऐसा होता है सच्चाई का असर"

मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'माँ' का अंश

एक रात खाना खाने के बाद पावेल ने खिड़की पर परदा डाला, दीवार पर टीन का लैम्प टाँगा और कोने में बैठकर पढ़ने लगा। माँ बर्तन धोकर रसोई से निकली और धीरे-धीरे उसके पास गयी। पावेल ने सिर उठाकर प्रश्नसूचक दृष्टि से माँ की ओर देखा।

"कुछ नहीं, पावेल, मैं तो ऐसे ही आ गयी थी," वह झटपट बोली और जल्दी से फ़िर रसोई में चली गयी। घबराहट के कारण उसकी भवें फ़ड़क रही थीं। पर थोड़ी देर तक अपने विचारों से संघर्ष करने के बाद वह हाथ धोकर फ़िर पावेल के पास गयी।

"मैं तुमसे पूछना चाहती थी कि तुम हर वक्त यह क्या पढ़ते रहते हो?" उसने धीरे से पूछा।

पावेल ने किताब बन्द कर दी।

"अम्मा, बैठ जाओ।"

माँ जल्दी से सीधी तनकर बैठ गयी। वह कोई बहुत ही महत्वपूर्ण बात सुनने को तैयार थी।

पावेल माँ की तरफ़ देखे बिना बहुत धीमे और न जाने क्यों कठोर स्वर में बोला:

"मैं गैरकानूनी किताबें पढ़ता हूँ। ये गैरकानूनी इसलिए हैं कि इनमें मजदूरों के बारे में सच्ची बातें लिखी हैं। ये चोरी से छापी जाती हैं और अगर मेरे पास पकड़ी गयीं तो मुझे जेल में बन्द कर दिया जायेगा... जेल में इसलिए कि मैं सच्चाई मालूम करना चाहता हूँ, समझी?"

सहसा माँ को घुटन महसूस होने लगी। बहुत गौर से उसने अपने बेटे को देखा और उसे वह पराया-सा लगा। उसकी आवाज भी पहले जैसी नहीं थी- अब वह ज्यादा गहरी, ज्यादा गम्भीर थी, उसमें ज्यादा गूँज थी। वह अपनी

बारीक मूँछों के नरम बालों को ऐंठने लगा और आँखें झुकाकर अजीब ढंग से कोने की तरफ़ ताकने लगा। माँ उसके बारे में चिन्तित हो उठी, और उसे उस पर तरस भी आ रहा था।

"पावेल, किसलिए तुम ऐसा करते हो?" माँ ने पूछा।

उसने सिर उठाकर माँ की तरफ़ देखा।

"क्योंकि मैं सच्चाई जानना चाहता हूँ" उसने बड़े शान्त भाव से उत्तर दिया।

उसका स्वर कोमल पर दृढ़ था और उसकी आँखो में एक चमक थी। माँ ने समझ लिया कि उसके बेटे ने जन्म भर के लिए अपने आपको किसी गुप्त और भयानक काम के लिए अर्पित कर दिया है। वह परिस्थितियों को अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लेने और किसी आपत्ति के बिना सब कुछ सह लेने की आदी हो चुकी थी। इसलिए वह धीरे-धीरे सिसकने लगी, पीड़ा और व्यथा के बोझ से उसका हृदय इतनी बुरी तरह दबा हुआ था कि वह कुछ भी कह न पायी।

"रोओ नहीं, माँ," पावेल ने कोमल और प्यार-भरे स्वर में कहा और माँ को ऐसा लगा मानो वह उससे विदा ले रहा हो। "जरा सोचो तो, कैसा जीवन है हम लोगों का! तुम चालीस बरस की हुईं, कुछ भी सुख देखा है तुमने अपने जीवन में? पिता हमेशा तुम्हें मारते थे ... अब मैं इस बात को समझने लगा हूँ कि वह अपने तमाम दुःख-दर्दों, अपने जीवन के सभी कटु अनुभवों का बदला तुमसे लेते थे। कोई चीज लगातार उनके सीने पर बोझ की तरह रखी रहती थी पर वह नहीं जानते थे कि वह चीज क्या थी। तीस बरस तक उन्होंने यहाँ खून-पसीना एक किया... जब वह यहाँ काम करने लगे थे, तब इस फ़ैक्टरी की सिर्फ़ दो इमारतें थीं और अब सात हैं।"

माँ बड़ी उत्सुकता के साथ किन्तु धड़कते दिल से उसकी बातें सुन रही थी। उसके बेटे की आँखों में बड़ी प्यारी चमक थी। मेज के कगर से अपना सीना सटाकर वह आगे झुका और माँ के आँसुओं से भीगे हुए चेहरे के पास होकर उसने सच्चाई के बारे में पहला भाषण दिया जिसका उसे अभी ज्ञान हुआ था। अपनी युवावस्था के पूरे जोश के साथ, उस विद्यार्थी के पूरे उत्साह के साथ जो अपने ज्ञान पर गर्व करता है, उसमें पूरी आस्था रखता है, वह उन चीजों की चर्चा कर रहा था जो उसके दिमाग में साफ़ थीं। वह अपनी माँ को समझाने के उद्देश्य से इतना नहीं, जितना अपने आपको परखने के लिए बोल रहा था। बीच में शब्दों के अभाव के कारण वह रुका और तब उस व्यथित चेहरे की ओर

उसका ध्यान गया, जिस पर आँसुओं से धुँधलायी हुई दयालु आँखें धीमे-धीमे चमक रही थीं। वे भय और विस्मय के साथ उसे घूर रही थीं। उसे अपनी माँ पर तरस आया। वह फ़िर से बोलने लगा, मगर अब माँ और उसके जीवन के बारे में।

"तुम्हें कौन-सा सुख मिला है?" उसने पूछा। "कौन-सी मधुर स्मृतियाँ हैं तुम्हारे जीवन में?"

माँ ने सुना और बड़ी वेदना से अपना सिर हिला दिया। उसे एक विचित्र-सी नयी अनुभूति हो रही थी जिसमें हर्ष भी था और व्यथा भी, जो उसके टीसते हृदय को सहला रही थी। अपने जीवन के बारे में ऐसी बातें उसने पहली बार सुनी थीं और इन शब्दों ने एक बार फ़िर वही अस्पष्ट विचार जागृत कर दिये थे जिन्हें वह बहुत समय पहले भूल चुकी थी, इन बातों ने जीवन के प्रति असन्तोष की मरती हुई भावना में दुबारा जान डाल दी थी-उसकी युवावस्था के भूले हुए विचारों तथा भावनाओं को फ़िर सजीव कर दिया था। अपनी युवावस्था में उसने अपनी सहेलियों के साथ जीवन के बारे में बातें की थीं, उसने हर चीज के बारे में विस्तार के साथ बातें की थीं, पर उसकी सब सहेलियाँ-और वह खुद भी-केवल दुखों का रोना रोकर ही रह जाती थीं। कभी किसी ने यह स्पष्ट नहीं किया था कि उनके जीवन की कठिनाइयों का कारण क्या है। परन्तु अब उसका बेटा उसके सामने बैठा था और उसकी आँखें, उसका चेहरा और उसके शब्द जो भी व्यक्त कर रहे थे वह सभी कुछ माँ के हृदय को छू रहा था(उसका हृदय अपने इस बेटे के लिए गर्व से भर उठा, जो अपनी माँ के जीवन को इतनी अच्छी तरह समझता था, जो उसके दुःख-दर्द का जिक्र कर रहा था, उस पर तरस खा रहा था।

माँओं पर कौन तरस खाता है।

वह इस बात को जानती थी। उसका बेटा औरतों के जीवन के बारे में जो कुछ कह रहा था एक चिर-परिचित कटु सत्य था और उसकी बातों ने उन मिश्रित भावनाओं को जन्म दिया जिनकी असाधारण कोमलता ने माँ के हृदय को द्रवित कर दिया।

"तो तुम करना क्या चाहते हो?" माँ ने उसकी बात काटकर पूछा।

"पहले खुद पढ़ूँगा और फ़िर दूसरों को पढ़ाऊँगा। हम मजदूरों को पढ़ना चाहिए। हमें इस बात का पता लगाना चाहिए और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारी जिन्दगी में इतनी मुश्किलें क्यों हैं।"

माँ को यह देखकर ख़ुशी हुई कि उसके बेटे की हमेशा गम्भीर और कठोर रहने वाली नीली आँखों में इस समय कोमलता और मृदुलता चमक रही थी। यद्यपि माँ के गालों की झुर्रियों में अभी तक आँसुओं की बूँदें काँप रही थीं, पर उसके होंठों पर एक शान्त मुस्कराहट दौड़ गयी। उसके हृदय में एक द्वन्द्व मचा हुआ था। एक तरफ़ तो उसे अपने बेटे पर गर्व था कि वह जीवन की कटुताओं को इतनी अच्छी तरह समझता है और दूसरी तरफ़ उसे इस बात की चेतना भी थी कि अभी वह बिल्कुल जवान है, वह जैसी बातें कर रहा है वैसी कोई दूसरा नहीं करता और उसने केवल अपने बलबूते पर ही एक ऐसे जीवन के विरुद्ध संघर्ष करने का बीड़ा उठाया है जिसे बाकी सभी लोग, जिनमें वह ख़ुद भी शामिल थी, अनिवार्य मानकर स्वीकार करते हैं। उसकी इच्छा हुई कि अपने बेटे से कहे, "मगर, मेरे लाल, तू अकेला क्या कर लेगा?"

पर वह ऐसा करने से झिझक गयी, क्योंकि मुग्ध होकर वह बेटे को जी भर देख लेना चाहती थी। उस बेटे को, जो सहसा ऐसे समझदार पर कुछ-कुछ अजनबी व्यक्ति के रूप में उसके सामने प्रकट हुआ था।

पावेल ने अपनी माँ के होंठों पर मुस्कराहट, उसके चेहरे पर चिन्तन का भाव, उसकी आँखों में प्यार देखा और उसे ऐसा लगा कि वह माँ को अपने सत्य का भान कराने में सफ़ल हो गया है। अपनी वाणी की शक्ति में युवोचित गर्व ने उसका आत्म-विश्वास बढ़ा दिया। वह बड़े जोश से बोल रहा था, कभी मुस्कराता, कभी उसकी त्योरियाँ चढ़ जातीं और कभी उसका स्वर घृणा से भर उठता। उसके शब्दों में गूँजती कठोरता को सुनकर माँ को डर लगने लगता और वह सिर झुलाते हुए धीरे से पूछती

"पावेल, क्या ऐसा ही है?"

और वह दृढ़तापूर्वक उत्तर देता, "हाँ।" और वह उन लोगों के बारे में बताता जो जनता की भलाई के लिए उसमें सच्चाई के बीच बोते थे तथा इसी कारण जीवन के शत्रु हिंसक पशुओं की तरह उनके पीछे पड़ जाते थे, उन्हें जेलों में ठूँस देते थे, निर्वासित कर देते थे...

"मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ!" उसने बड़े जोश के साथ कहा। "वे धरती के सच्चे लाल हैं!"

ऐसे लोगों के विचार से ही वह काँप गयी और एक बार फ़िर उसकी इच्छा अपने बेटे से पूछने की हुई कि क्या ऐसा ही है, पर उसे साहस नहीं हुआ। दम साधकर वह उससे उन लोगों के बारे में किस्से सुनती रही जिनकी बातें तो वह

नहीं समझती थी पर जिन्होंने उसके बेटे को इतनी खतरनाक बातें कहना और सोचना सिखा दिया था। आखिरकार उसने अपने बेटे से कहा:

"सबेरा होने को आया। अब तुम थोड़ी देर सो लो।"

"हाँ, अभी," उसने कहा और फ़िर उसकी तरफ़ झुककर बोला, "मेरी बातें समझ गयीं न?"

"हाँ," उसने आह भरकर उत्तर दिया। एक बार फ़िर आँसुओं की धारा बह चली और सहसा वह जोर से कह उठी, "तबाह हो जाओगे तुम!"

पावेल उठा, उसने कमरे का चक्कर लगाया और फ़िर बोला:

"अच्छा, तो अब तुम जान गयीं कि मैं क्या करता हूँ और कहाँ जाता हूँ," पावेल ने कहा, "मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया है। और अम्मा, अगर तुम मुझे प्यार करती हो, तो तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी राह में बाधा न बनना।"

"ओह, मेरे लाल!" माँ ने रोते हुए कहा। "शायद... शायद अगर तुम मुझसे न बताते तो अच्छा होता।"

पावेल ने माँ का हाथ अपने हाथों में लेकर दबाया।

उसने जितने प्यार के साथ "अम्मा" कहा था और जिस नये तथा विचित्र ढंग से उसने आज पहली बार उसका हाथ दबाया था, उससे माँ का हृदय भर आया।

"मैं बाधा नहीं बनूँगी," उसने भाव-विह्वल होकर कहा। "मगर अपने को बचाये रखना, बचाये रखना!"

वह नहीं जानती थी कि उसे किस चीज से अपने को बचाना चाहिए, इसलिए उसने दुःखी होते हुए इतना जोड़ दिया:

"तुम दिन-ब-दिन दुबले होते जा रहे हो..."

वह अपने बेटे के लम्बे-चौड़े बलिष्ठ शरीर पर एक प्यार-भरी नजर दौड़ाते हुए जल्दी-जल्दी और धीमी आवाज में बोली:

"तुम जो ठीक समझो करो-मैं तुम्हारी राह में बाधा नहीं बनूँगी। बस, इतनी ही प्रार्थना करती हूँ-इस बात का ध्यान रखना कि किससे बात कर रहे हो। तुम्हें लोगों के मामले में सतर्क रहना चाहिए। लोग एक-दूसरे से नफ़रत करते हैं। वे लालची हैं, एक-दूसरे से जलते हैं, जान-बूझकर दूसरों को नुकसान पहुँचाना चाहते हैं। जैसे ही तुम उन्हें उनकी वास्तविकता बताओगे, भला-बुरा कहोगे, वे जल-भुन जायेंगे और तुम्हें मिटा देंगे।"

पावेल दरवाजे पर खड़ा हुआ उसके वे व्यथा-भरे शब्द सुनता रहा और जब

वह अपनी बात खत्म कर चुकी तो मुस्कराकर बोला:

"तुम ठीक कहती हो-लोग बुरे हैं। लेकिन जैसे ही मुझे यह मालूम हुआ कि इस दुनिया में सच्चाई नाम की भी एक चीज है तो लोग भले मालूम होने लगे।"

वह फ़िर मुस्कराया और कहता गया:

"कारण मैं नहीं जानता, पर बचपन में मैं सबसे डरता था। ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, सबसे नफ़रत करने लगा, कुछ से उनकी नीचता के लिए और कुछ से बस यों ही! लेकिन अब हर चीज बदली हुई मालूम होती है। शायद मुझे लोगों पर तरस आता है? समझ नहीं पाता, पर जब मुझे इस बात का आभास हुआ कि अपनी पशुता के लिये हमेशा खुद लोग ही दोषी नहीं होते थे तो मेरा हृदय कोमल हो उठा..."

वह बोलते-बोलते रुक गया मानो अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुन रहा हो और फ़िर उसने बड़े शान्त स्वर में विचारशीलता से कहा:

"ऐसा होता है सच्चाई का असर।"

"हे भगवान! खतरनाक परिवर्तन हो गया है तुममें," माँ ने कनखियों से उसे देखते हुए आह भरकर कहा।

जब वह सो गया, तो माँ अपने बिस्तर से उठकर दबे पाँव उसके पास गयी। पावेल सीधा लेटा हुआ था और सफ़ेद तकिये की पृष्ठभूमि पर उसके सांवले चेहरे की गम्भीर तथा कठोर रूप-रेखा स्पष्ट उभरी हुई थी। नंगे पैर और रात की पोशाक पहने हुए माँ सीने पर दोनों हाथ रखे उसके पास खड़ी थी-मूक होंठ हिल रहे थे और उसके गालों पर आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें ढलक रही थीं।

फ़िर पहले की तरह ही उनका जीवन बीतने लगा, दोनों चुप-चुप रहते, एक-दूसरे से दूर, फ़िर भी बहुत निकट।

कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के लिए इंसानों को कुचलने के जितने साधन हैं, हम उसके हर रूप के खिलाफ लड़ेंगे

मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'माँ' का अंश

मज़दूरों के अपने लेखक मक्सिम गोर्की का उपन्यास 'मां' मज़दूर वर्ग को नायक बनाकर लिखा गया पहला महान उपन्यास है। लेनिन ने इसको 'मज़दूरों के लिए एक जरूरी रचना' बताया था। हमारे देश के भी हर जागरूक मज़दूर को इसे पढ़ना चाहिए। यहां हम इस उपन्यास के नायक पावेल व्लासोव द्वारा अदालत में दिये गये बयान को छाप रहे हैं।

"हम समाजवादी हैं। इसका मतलब है कि हम निजी सम्पत्ति के ख़िलाफ हैं" निजी सम्पत्ति की पद्धति समाज को छिन्न–भिन्न कर देती है, लोगों को एक–दूसरे का दुश्मन बना देती है, लोगों के परस्पर हितों में एक ऐसा द्वेष पैदा कर देती है जिसे मिटाया नहीं जा सकता, इस द्वेष को छुपाने या न्याय–संगत ठहराने के लिए वह झूठ का सहारा लेती है और झूठ, मक्कारी और घृणा से हर आदमी की आत्मा को दूषित कर देती है। हमारा विश्वास है कि वह समाज, जो इंसान को केवल कुछ दूसरे इंसानों को धनवान बनाने का साधन समझता है, अमानुषिक है और हमारे हितों के विरुद्ध है। हम ऐसे समाज की झूठ और मक्कारी से भरी हुई नैतिक पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकते। व्यक्ति के प्रति उसके रवैये में जो बेहयाई और क्रूरता है उसकी हम निन्दा करते हैं। इस समाज ने व्यक्ति पर जो शारीरिक तथा नैतिक दासता थोप रखी है, हम उसके हर रूप के ख़िलाफ लड़ना चाहते हैं और लड़ेंगे कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के हित में इंसानों को कुचलने के जितने साधन हैं हम उन सबके ख़िलाफ लड़ेंगे। हम मजदूर हैं; हम वे लोग हैं जिनकी मेहनत से बच्चों के खिलौनों से लेकर बड़ी–बड़ी मशीनों तक दुनिया की हर चीज तैयार होती है; फिर भी हमें ही अपनी मानवोचित प्रतिष्ठा की रक्षा करने के अधिकार से वंचित रखा जाता है। कोई भी अपने निजी स्वार्थ के लिए हमारा शोषण कर सकता है। इस समय

हम कम से कम इतनी आजादी हासिल कर लेना चाहते हैं कि आगे चलकर हम सारी सत्ता अपने हाथों में ले सकें। हमारे नारे बहुत सीधे–सीधे है: निजी सम्पत्ति का नाश हो-उत्पादन के सारे साधन जनता की सम्पत्ति हों-सत्ता जनता के हाथ में हो –हर आदमी को काम करना चाहिए। अब आप समझ गये होंगे कि हम विद्रोही नहीं हैं।''

पावेल धीरे से मुस्कराया और धीरे–धीरे अपने बालों में उँगलियाँ फेरने लगा। उसकी नीली आँखों की चमक पहले से बहुत बढ़ गयी थी।

"मैं तुमसे कहता है कि बस मतलब भर की बात कहो।'' बूढ़े ने जोर से स्पष्ट स्वर में कहा और पावेल की ओर मुड़कर देखा। माँ की कल्पना में यह बात आयी कि उस जज की निस्तेज बाँयी आँख में लोलुपता और कुत्सा की चमक थी। तीनों जज उसके बेटे को देख रहे थे, उनकी नजरें उसके चेहरे पर जमी हुई थीं, ऐसा मालूम होता था कि वे अपनी पैनी नजरों से उसकी शक्ति चूस ले रहे हैं; वे उसके ख़ून के प्यासे लग रहे थे, मानो इससे उनके शक्तिहीन शरीर में फिर से जान आ जायेगी। परन्तु पावेल अपना लम्बा–चौड़ा बलिष्ठ शरीर लिए साहस के भाव से सीधा तनकर खड़ा था और अपना हाथ उठाकर कह रहा था:

"हम क्रान्तिकारी हैं और उस समय तक क्रान्तिकारी रहेंगे जब तक इस दुनिया में यह हालत रहेगी कि कुछ लोग सिर्फ हुक़्म देते हैं और कुछ लोग सिर्फ़ काम करते हैं। हम उस समाज के ख़िलाफ हैं जिनके हितों की रक्षा करने की आप जज लोगों को आज्ञा दी गयी है। हम उसके कट्टर दुश्मन हैं और आपके भी और जब तक इस लड़ाई में हमारी जीत न हो जाय, हमारी और आपकी कोई सुलह मुमकिन नहीं है। और हम मजदूरों की जीत यकीनी है! आपके मालिक उतने ताकतवर नहीं हैं जितना कि वे अपने आपको समझते हैं। यही सम्पत्ति जिसे बटोरने और जिसकी रक्षा करने के लिए वे अपने एक इशारे पर लाखों लोगों की जान कुर्बान कर देते हैं, वही शक्ति जिसकी बदौलत वे हमारे ऊपर शासन करते हैं, उनके बीच आपसी झगड़ों का कारण बन जाती है और उन्हें शारीरिक तथा नैतिक रूप से नष्ट कर देती हैं। सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए उन्हें बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ती है। असल बात तो यह है कि आप सब लोग, जो हमारे मालिक बनते हैं हमसे ज़्यादा गुलाम हैं। हमारा तो सिर्फ़ शरीर गुलाम है, लेकिन आपकी आत्मायें गुलाम हैं । आपके कंधे पर आपकी आदतों और पूर्व–धारणाओं का जो जुआ रखा है उसे आप उतारकर फेंक नहीं सकते। लेकिन हमारी आत्मा पर कोई बंधन नहीं है। आप हमें जो

जहर पिलाते रहते हैं वह उन जहरमार दवाओं से कहीं कमजोर होता है जो आप हमारे दिमागों में अपनी मर्जी के ख़िलाफ उँड़ेलते रहते हैं। हमारी चेतना दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है और सबसे अच्छे लोग, वे सभी लोग जिनकी आत्मायें शुद्ध हैं हमारी और खिंचकर आ रहे हैंय इनमें आपके वर्ग के लोग भी हैं। आप ही देखिये-आपके पास कोई ऐसा आदमी नहीं है जो आपके वर्ग के सिद्धान्तों की रक्षा कर सके; आपके वे सब तर्क खोखले हो चुके हैं जो आपको इतिहास के न्याय के घातक प्रहार से बचा सकें, आपमें नये विचारों को जन्म देने की क्षमता नहीं रह गयी है, आपकी आत्मायें निर्जन हो चुकी हैं। हमारे विचार बढ़ रहे हैं, अधिक शक्तिशाली होते जा रहे हैं, वे जन–साधारण में प्रेरणा फूँक रहे हैं और उन्हें स्वतंत्रता के संग्राम के लिए संगठित कर रहे हैं। यह जानकर कि मजदूर वर्ग की भूमिका कितनी महान है, सारी दुनिया के मजदूर एक महान शक्ति के रूप में संगठित हो रहे हैं-नया जीवन लाने की जो प्रक्रिया चल रही है उसके मुकाबले में आपके पास क्रूरता और बेहयाई के अलावा और कुछ नहीं है। परन्तु आपकी बेहयाई भोंडी है और आपकी क्रूरता से हमारा क्रोध और बढ़ता है। जो हाथ आज हमारा गला घोंटने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं वही कल साथियों की तरह हमारे हाथ थाम लेने को आगे बढ़ेंगे। आपकी शक्ति धन बढ़ाते रहने की मशीनी शक्ति है, उसने आपको ऐसे दलों में बाँट दिया है जो एक–दूसरे को खा जाना चाहते हैं। हमारी शक्ति सारी मेहनतक़श जनता की एकता की निरन्तर बढ़ती हुई चेतना की जीवन–शक्ति में है। आप लोग जो कुछ करते हैं वह पापियों का काम है, क्योंकि वह लोगों को गुलाम बना देता है। आप लोगों के मिथ्या प्रचार और लोभ ने पिशाचों और राक्षसों की अलग एक दुनिया बना दी है जिसका काम लोगों को डराना–धमकाना है। हमारा काम जनता को इन पिशाचों से मुक्त कराना है। आप लोगों ने मनुष्य को जीवन से अलग करके नष्ट कर दिया है; समाजवाद आपके हाथों टुकड़े–टुकड़े की गयी दुनिया को जोड़कर एक महान रूप देता है और यह होकर रहेगा।"

पावेल रुका और उसने एक बार फिर ज़्यादा जोर देकर पर धीमे स्वर में कहा :

"यह होकर रहेगा।"

सच्चाई को ख़ून की नदियों में भी नहीं डुबोया जा सकता

मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'माँ' का अंश

जासूस ने एक गार्ड को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा और आँखों से माँ की तरफ़ इशारा किया। गार्ड ने उसे देखा और वापस चला गया। इतने में दूसरा गार्ड आया और उसकी बात सुनकर उसकी भवें तन गयीं। यह गार्ड एक बूढ़ा आदमी था – लम्बा कद, सफ़ेद बाल, दाढ़ी बढ़ी हुई उसने जासूस की तरफ़ देखकर सिर हिलाया और उस बेंच की तरफ़ बढ़ा जिस पर माँ बैठी हुई थी। जासूस कहीं ग़ायब हो गया।

गार्ड बड़े इत्मीनान से आगे बढ़ रहा था और त्योरियाँ चढ़ाये माँ को घूर रहा था। माँ बेंच पर सिमटकर बैठ गयी।

"बस, कहीं मुझे मारें न!" माँ ने सोचा।

गार्ड माँ के सामने आकर रुक गया और एक क्षण तक कुछ नहीं बोला।

"क्या देख रही हो?" उसने आख़िरकार पूछा।

"कुछ भी नहीं," माँ ने उत्तर दिया।

"अच्छा यह बात है, चोर कहीं की! इस उमर में यह सब करते शरम नहीं आती!"

उसके शब्द माँ के गालों पर तमाचों की तरह लगे – एक... दो; उनमें कुत्सा का जो घृणित भाव था वह माँ के लिए इतना कष्टदायक था कि जैसे उसने किसी तेज़ चीज़ से माँ के गाल चीर दिये हों या उसकी आँखें बाहर निकाल ली हों...

"मैं? मैं चोर नहीं हूँ, तुम ख़ुद झूठे हो!" उसने पूरी आवाज़ से चिल्लाकर कहा और उसके क्रोध के तूफ़ान में हर चीज़ उलट-पुलट होने लगी। उसने सूटकेस को एक झटका दिया और वह खुल गया।

"सुनो! सुनो! सब लोग सुनो!" उसने चिल्लाकर कहा और उछलकर पर्चों की एक गड्डी अपने सिर के ऊपर हिलाने लगी। उसके कान में जो गूँज उठ रही थी उसके बीच उसे चारों तरफ़ से भागकर आते हुए लोगों की बातें साफ़

सुनायी दे रही थीं।

"क्या हुआ?"

"वह वहाँ – जासूस..."

"क्या बात है?"

"कहते हैं कि यह चोर है..."

"देखने में तो बड़ी शरीफ़ औरत मालूम होती है! छिः छिः!"

"मैं चोर नहीं हूँ!" माँ ने चिल्लाकर कहा; लोगों की भीड़ अपने चारों तरफ़ एकत्रित देखकर उसकी भावनाओं का प्रबल वेग थम गया था।

"कल राजनीतिक कैदियों पर एक मुक़दमा चलाया गया था और उनमें मेरा बेटा पावेल व्लासोव भी था। उसने अदालत में एक भाषण दिया था – यह वही भाषण है! मैं इसे लोगों के पास ले जा रही हूँ ताकि वे इस पढ़कर सच्चाई का पता लगा सकें..."

किसी ने बड़ी सावधानी से उसके हाथ से एक पर्चा ले लिया। माँ ने गड्डी हवा में उछालकर भीड़ की तरफ़ फेंक दी।

"तुम्हें इसका मजा चखा दिया जायेगा!" किसी ने भयभीत स्वर में कहा।

माँ ने देखा कि लोग झपटकर पर्चे लेते हैं और अपने कोट में तथा जेबों में छुपा लेते हैं। यह देखकर उसमें नयी शक्ति आ गयी। वह अधिक शान्त भाव से और ज़्यादा जोश के साथ बोलने लगी; उसके हृदय में गर्व और उल्लास का जो सागर ठाठें मार रहा था उसका उसे आभास था। बोलते-बोलते वह सूटकेस में से पर्चे निकालकर दाहिने बायें उछालती जा रही थी और लोग बड़ी उत्सुकता से हाथ बढ़ाकर इन पर्चों को पकड़ लेते थे।

"जानते हो मेरे बेटे और उसके साथियों पर मुक़दमा क्यों चलाया गया? मैं तुम्हें बताती हूँ, तुम एक माँ के हृदय और उसके सफ़ेद बालों का यकीन करो – उन लोगों पर मुक़दमा सिर्फ़ इसलिए चलाया गया कि वे लोगों को सच बातें बताते थे! और कल मुझे मालूम हुआ कि इस सच्चाई से... कोई भी इंकार नहीं कर सकता – कोई भी नहीं!

भीड़ बढ़ती गयी, सब लोग चुप थे और इस औरत के चारों तरफ़ सप्राण शरीरों को घेरा खड़ा था।

"ग़रीबी, भूख और बीमारी – लोगों को अपनी मेहनत के बदले यही मिलता है! हर चीज़ हमारे ख़िलाफ़ है – ज़िन्दगी-भर हम रोज़ अपनी रत्ती-रत्ती शक्ति अपने काम में खपा देते हैं, हमेशा गन्दे रहते हैं, हमेशा बेवक़ूफ़ बनाये

जाते हैं और दूसरे हमारी मेहनत का सारा फ़ायदा उठाते हैं और ऐश करते हैं, वे हमें जंजीर में बँधे हुए कुत्तों की तरह जाहिल रखते हैं – हम कुछ भी नहीं जानते, वे हमें डराकर रखते हैं – हम हर चीज़ से डरते हैं! हमारी ज़िन्दगी एक लम्बी अँधेरी रात की तरह है!"

"ठीक बात है!" किसी ने दबी जबान में समर्थन किया।

"बन्द कर दो इसका मुँह!"

भीड़ के पीछे माँ ने उस जासूस और दो राजनीतिक पुलिसवालों को देखा और वह जल्दी-जल्दी बचे हुए पर्चे बाँटने लगी। लेकिन जब उसका हाथ सूटकेस के पास पहुँचा, तो किसी दूसरे के हाथ से छू गया।

"ले लो, और ले लो!" उसने झुके-झुके कहा।

"चलो, हटो यहाँ से!" राजनीतिक पुलिसवालों ने लोगों को ढँकेलते हुए कहा। लोगों ने अनमने भाव से पुलिसवालों को रास्ता दिया; वे पुलिसवालों को दीवार बनाकर पीछे रोके हुए थे; शायद वे जानबूझकर ऐसा नहीं कर रहे थे। लोगों के हृदय में न जाने क्यों इस बड़ी-बड़ी आँखों और उदार चेहरे तथा सफ़ेद बालोंवाली औरत के प्रति इतना अदम्य आकर्षण था। जीवन में वे सबसे अलग-थलग रहते थे, एक-दूसरे से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, पर यहाँ वे सब एक हो गये थे; वे बड़े प्रभावित होकर इन जोश-भरे शब्दों को सुन रहे थे; जीवन के अन्यायों से पीड़ित होकर शायद उनमें से अनेक लोगों के हृदय बहुत दिनों से इन्हीं शब्दों की खोज में थे। जो लोग माँ के सबसे निकट थे वे चुपचाप खड़े थे; वे बड़ी उत्सुकता से उसकी आँखों में आँखें डालकर ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे और वह उनकी साँसों की गर्मी चेहरे पर अनुभव कर रही थी।

"खिसक जा यहाँ से, बुढ़िया!"

"वे अभी तुझे पकड़ लेंगे!–"

"कितनी हिम्मत है इसमें!"

"चलो यहाँ से! जाओ अपना काम देखो!" राजनीतिक पुलिसवालों ने भीड़ को ठेलते हुए चिल्लाकर कहा। माँ के सामने जो लोग थे वे एक बार कुछ डगमगाये और फिर एक-दूसरे से सटकर खड़े हो गये।

माँ को आभास हुआ कि वे उसकी बात को समझने और उस पर विश्वास करने को तैयार थे और वह जल्दी-जल्दी उन्हें वे सब बातें बता देना चाहती थी जो वह जानती थी, वे सारे विचार उन तक पहुँचा देना चाहती थी जिनकी शक्ति का उसने अनुभव किया था। इन विचारों ने उसके हृदय की गहराई से

निकलकर एक गीत का रूप धारण कर लिया था, पर माँ यह अनुभव करके बहुत झुब्ध हुई कि वह इस गीत को गा नहीं सकती थी – उसका गला रुँध गया था और स्वर भर्रा गया था।

"मेरे बेटे के शब्द एक ऐसे ईमानदार मज़दूर के शब्द हैं जिसने अपनी आत्मा को बेचा नहीं है! ईमानदारी के शब्दों को आप उनकी निर्भीकता से पहचान सकते हैं!"

किसी नौजवान की दो आँखें भय और हर्षातिरेक से उसके चेहरे पर जमी हुई थीं।

किसी ने उसके सीने पर एक घूँसा मारा और वह बेंच पर गिर पड़ी। राजनीतिक पुलिसवालों के हाथ भीड़ के ऊपर ज़ोर से चलते हुए दिखायी दे रहे थे, वे लोगों के कन्धे और गर्दनें पकड़कर उन्हें ढँकेल रहे थे; उनकी टोपियाँ उतारकर मुसाफिरख़ाने के दूसरे सिरे पर फेंक रहे थे। माँ की आँखों के आगे धरती घूम गयी, पर उसने अपनी कमज़ोरी पर काबू पाकर अपनी बची-खुची आवाज़ से चिल्लाकर कहा:

"लोगो, एक होकर ज़बरदस्त शक्ति बन जाओ!"

एक पुलिसवाले ने अपने मोटे-मोटे बड़े से हाथ से उसकी गर्दन पकड़कर उसे ज़ोर से झंझोड़ा।

"बन्द कर अपनी जबान!"

माँ का सिर दीवार से टकराया। एक क्षण के लिए उसके हृदय में भय का दम घोंट देनेवाला धुआँ भर गया, पर शीघ्र ही उसमें फिर साहस पैदा हुआ यह धुआँ छँट गया।

"चल यहाँ से!" पुलिसवाले ने कहा।

"किसी बात से डरना नहीं! तुम्हारी ज़िन्दगी जैसी अब है उससे बदतर और क्या हो सकती है..."

"चुप रह, मैंने कह दिया!" पुलिसवाले ने उसकी बाँह पकड़कर उसे ज़ोर से धक्का दिया। दूसरे पुलिसवाले ने उसकी दूसरी बाँह पकड़ ली और दोनों उसे साथ लेकर चले।

"उसे कटुता से बदतर और क्या हो सकता है जो दिन-रात तुम्हारे हृदय को खाये जा रही है और तुम्हारी आत्मा को खोखला किये दे रही है!"

जासूस माँ के आगे-आगे भाग रहा था और मुट्ठी तान-तानकर उसे धमका रहा था।

"चुप रह, कुतिया!" उसने चिल्लाकर कहा।

माँ की आँखें चमकने लगीं और क्रोध से फैल गयीं; उसके होंठ काँपने लगे।

"पुनर्जीवित आत्मा को तो नहीं मार सकते!" उसने चिल्लाकर कहा और अपने पाँव पत्थर के चिकने फ़र्श पर जमा दिये।

"कुतिया कहीं की!"

जासूस ने उसके मुँह पर एक थप्पड़ मारा।

"इसकी यही सजा है, इस चुड़ैल बुढ़िया की!" किसी ने जलकर कहा।

एक क्षण के लिए माँ की आँखों के आगे अँधेरा छा गया; उसके सामने लाल और काले धब्बे से नाचने लगे और उसका मुँह रक्त के नमकीन स्वाद से भर गया।

लोगों के छोटे-छोटे वाक्य सुनकर उसे फिर होश आया:

"ख़बरदार, जो उसे हाथ लगाया!"

"आओ, चलो यार!"

"बदमाश कहीं का!"

"एक दे ज़ोर का!"

"वे हमारी चेतना को तो ख़ून से नहीं उँड़ेल सकते!"

वे माँ की पीठ और गर्दन पर घूँसे बरसा रहे थे, उसके कन्धों और सिर पर मार रहे थे; हर चीज़ चीख़-पुकार, क्रन्दन और सीटियों की आवाज़ों का एक झंझावात बनकर उसकी आँखों के सामने नाच रही थी और बिजली की तरह कौंध रही थी। उसके कान में एक ज़ोर का घुटा हुआ धमाका हुआ; उसका गला रुँध गया; उसका दम घुटने लगा और उसके पाँवों तले कमरे का फ़र्श धँसने लगा; उसकी टाँगें जवाब देने लगीं; वह तेज़ छुरी के घाव जैसी चुभती हुई पीड़ा से तिलमिला उठी, उसका शरीर बोझल हो गया और वह निढाल होकर झूमने लगी। पर उसकी आँखों में अब भी वही चमक थी। उसकी आँखें बाक़ी सब लोगों की आँखों को देख रही थीं; उन सब आँखों में उसी साहसमय ज्योति की आग्नेय चमक थी जिसे वह भली-भाँति जानती थी और जिसे वह बहुत प्यार करती थी।

पुलिसवालों ने उसे एक दरवाज़े के अन्दर ढँकेल दिया।

उसने झटका देकर अपनी एक बाँह छुड़ा ली और दरवाज़े की चौखट पकड़ ली।

"सच्चाई को तो ख़ून की नदियों में भी नहीं डुबोया जा सकता..."

पुलिसवालों ने उसके हाथ पर ज़ोर से मारा।

"अरे बेवक़ूफ़ो, तुम जितना अत्याचार करोगे, हमारी नफ़रत उतनी ही बढ़ेगी! और एक दिन यह सब तुम्हारे सिर पर पहाड़ बनकर टूट पड़ेगा!"

एक पुलिसवाला उसकी गर्दन पकड़कर ज़ोर से उसका गला घोंटने लगा।

"कमबख्तो..." माँ ने साँस लेने को प्रयत्न करते हुए कहा।

किसी ने इसके उत्तर में ज़ोर से सिसकी भरी।

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

www.janchetnabooks.org

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर-घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी-सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी-सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर-घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम - शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला-सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन-संघर्ष-सृजन-प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		70.00
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		20.00
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
23. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
24. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव 30.00
25. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
26. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
27. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
28. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00
29. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 30.00
30. **Mother**/*Maxim Gorky* 250.00
31. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

3. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) ...
6. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 10.00
7. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** ...

अन्तोन चेख़व

8. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
10. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
11. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
12. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
13. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
14. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
15. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
16. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
    (भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
    (ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
2. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
3. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) 160.00
4. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
   (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
   (ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 150.00
6. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
7. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
8. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
9. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00

10. **इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय ...
11. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश ...
12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems) 60.00
13. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00
14. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे 60.00
15. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00
16. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00
17. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00
18. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश 50.00
19. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00
20. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 125.00
21. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 60.00
22. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 200.00
23. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00
24. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00
25. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
26. **यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज 60.00
27. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...
28. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर 60.00
29. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00
30. **देखते न देखते**/मलय 65.00
31. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00
32. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00
33. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
34. **तो**/शैलेय 75.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00

3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी (पेपरबैक) 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/
   गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम 25.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फोन: 9936650658, 8853093555
वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com
वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह

जनचेतना

_मुख्य केन्द्र_ : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

फ़ोन : 0522-4108495

_अन्य केन्द्र_ :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड,
  गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ
  शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन,
  लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : info@janchetnabooks.org

वेबसाइट : www.janchetnabooks.org

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये Instamojo के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप Amazon और Flipkart से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरणः

ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI

Acc. No. 0762002109003796

Bank: Punjab National Bank

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल